विप्लव पुस्तक माला—४

दादा-कॉमरेड

यशपाल

विप्लव कार्यालय, लखनऊ.

अप्रैल १९४४] दूसरा संस्करण [मूल्य २।)

समर्पण

"आओ ! बैठकर सोचें, इस उलझन से कोई राह !"

यशपाल

दो शब्द

"दादा-कॉमरेड" उपन्यास के रूप में प्रस्तुत है। उपन्यास का रूप होने से यह साहित्य के क्षेत्र में आ जाता है। इससे पूर्व "पिंजरे की उड़ान" और "न्याय का संघर्ष" पेश कर साहित्य के किसी कोने में स्थान पाने की आशा की थी। आशा से कुछ अधिक ही सफलता मिली, उसके लिये पाठकों को धन्यवाद !

मेरी पुस्तक "मार्क्सवाद" विप्लव और विप्लवी-ट्रैक्ट के रूप में अपनाये हुए कार्य का अंग था। परन्तु "दादा-कॉमरेड" में "कार्य" से कुछ अधिक है। वह है, अपनी रचना की वृत्ति को अवसर देने की इच्छा या कला के मार्ग पर प्रयत्न।

कला की भावना से जो प्रयत्न मैंने "पिंजरे की उड़ान" के रूप में किया था, उसकी क़द्र उत्साहवर्धक ज़रूर हुई परन्तु साहित्य और कला के प्रेमियों को एक शिकायत मेरे प्रति है कि मैं कला को गौण और प्रचार को प्रमुख स्थान देता । अपने प्रति दिये गये इस फ़ैसले के विरुद्ध मुझे अपील नहीं करनी। संतोष है, अपना अभिप्राय स्पष्ट कर पाया हूँ।

कला को कला के निर्लिप्त क्षेत्र में ही सीमित न रख मैं उसे भावों या विचारों का वाहक बनाने की चेष्टा क्यों करता हूँ?..........क्योंकि जीवन में मेरी साध केवल जीवन यापन ही नहीं बल्कि जीवन की पूर्णता है। इसी प्रकार कला से सम्बन्ध जोड़कर भी मैं कला को केवल कला के लिये नहीं समझ सकता। कला का उद्देश्य है—जीवन में पूर्णता का यत्न। बजाय इसके कि कला का यत्न बहककर हवा में पैंतरे बदल श्रान्त हो जाय, क्या यह अधिक अच्छा नहीं कि वह विकास और नवीन कला के लिये आधार प्रस्तुत करे?

पुस्तक प्रकाशित होने से पूर्व ही दादा-कॉमरेड के कुछ अंश पढ़ मित्रों ने परामर्श दिया—तुम्हारा यह प्रथम उपन्यास है और वास्तव में इस योग्य है कि इसकी भूमिका किसी प्रमुख साहित्यिक द्वारा लिखी जाय! इस सद्इच्छा और परामर्श के लिये साहित्यिक मित्रों का आभारी हूँ। यह भी जानता हूँ कि जो विवेचना साहित्यिक मित्र कर सकेंगे, और जो लाभ उनकी लेखनी द्वारा परिचय पाने से हो सकता है, वह स्वयम् मेरे अपने शब्दों से न होगा। परन्तु जो बात मैं कहना चाहता हूँ, वह बात तो वे न कहेंगे! इस पुस्तक के बारे में अपने साधारण अभ्यास के विरुद्ध मुझे सफ़ाई देनी है। साहित्यिक दृष्टि से दादा-कॉमरेड को क्या कुछ सफलता हुई, यह बात मेरे कहने की नहीं। यह आलोचक और साहित्यिक बतायेंगे। साहित्यिक के आवरण में जिन विचारों को दादा-कॉमरेड के रूप में पेश कर रहा हूँ, उन्हीं के विषय में यह सफाई है।

हमारे समाज की वर्त्तमान आचार सम्बन्धी साधारण धारणा से यह विचार भयानक और विद्रोही जान पड़ेंगे। ठीक उसी प्रकार, जैसे गैलीलियो की बात कि पृथ्वी गोल है और वह घूमती है, तत्कालीन धारणा का विद्रोह थी। दादा-कॉमरेड में रॉबर्ट के विचार और शैल का आचरण समाज में मौजूद संकट और अन्तर-द्वन्द के लिये "उपचार" के नुसख़े का दावा नहीं कर सकते। वह तो "निदान" का प्रयत्न मात्र है। उद्देश्य है—समाज की मौजूदा परिस्थिति में और क्रमागत आचार और नैतिक धारणा में वैषम्य और विरोध की ओर संकेत करना।

मौजूदा परिस्थितियों और प्राचीन नैतिक और आचार सम्बन्धी धारणा में क़दम-क़दम पर विरोध खटकता है, इससे तो इनकार किया नहीं जा सकता। प्रश्न यह है कि अनुभव होनेवाले विरोधों और उसके कारणों की उपेक्षा कर इस प्रवृत्ति का दमन कर दिया जाय, या आचार धारणा को सुरक्षित रखने के लिये परिस्थितियों में आ गये परिवर्तनों

को मिटाकर हम फिर से ऋषियुग में लौट जायँ ; या फिर समाज के आचार और नैतिक धारणा में नई परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तन करें ?

संसार में जो आज अनेक वादों—पूँजीवाद, नाज़ीवाद, गांधीवाद, समाजवाद का संघर्ष चल रहा है, उस सबकी नींव में परिस्थितियों, व्यवस्था और धारणाओं में सामंजस्य ढूँढ़ने का प्रयत्न है। इन वादों के संघर्ष का परिणाम ही मनुष्य की नयी सभ्यता का आधार होगा। मनुष्य होने के नाते हम इस संघर्ष की उपेक्षा नहीं कर सकते। वास्तविकता की दृष्टि से इस संघर्ष के परिणाम की हमारी चिन्ता परमार्थ की भावना नहीं, स्वयम् अपने और समाज के जीवन की चिन्ता है। हमें यह सोचना ही पड़ेगा कि मनुष्य समाज की आयु बढ़ने के परिणाम स्वरूप जब बचपन की झँगुलिया उसके बदन को दबाने लगे, तब उसके लिये नया कपड़ा लेना बेहतर होगा या शरीर को दबाकर, पुरानी सीमाओं में ही रखना ! दादा-कॉमरेड में इसी प्रश्न पर विचार करने की प्रेरणा है।

आवरण के कुछ प्रेमियों को शैल के व्यवहार में नग्नता दिखाई देगी। इस प्रकार का चरित्र पेश करना वे आदर्श की दृष्टि से घृणित समझेंगे। हो सकता है, शैल उनकी सहानुभूति न पासके। परन्तु यह शैल है कौन ? दादा-कॉमरेड की शैल स्वयम् कुछ न होकर घृणा से नाक-भौं सिकोड़ने वालों की अतृप्त परन्तु जागरूक, सक्रिय प्रवृत्ति ही है। समाज में मनुष्य की यह प्रवृत्ति 'काम' किये जा रही है। इस देश और संसार की बढ़ती हुई जन संख्या इस बात का अकाट्य प्रमाण है। उस प्रवृत्ति को घृणित समझ, उसे तृप्त करने की चेष्टा करके भी, उसकी निन्दा करते जाना ही आज का परम्परागत और नैतिकता है।

आचार और नैतिकता का प्रयोजन यदि मनुष्य को व्यवस्था और विकास की ओर ले जाना है तो मानना पड़ेगा कि यह उद्देश्य हमारी वर्तमान नैतिक और आचार सम्बन्धी धारणा से पूरा नहीं हो रहा। मनुष्य की यह वृत्ति उसे वासना के अंगारों पर सेक-सेक कर·झुलसाये,

उसे सदा अपराधी होने की भावना से क्लेशित करती रहे, इसका क्या कोई उपाय मनुष्य नहीं कर सकता ?

प्रकृति की दूसरी शक्तियों की भाँति मनुष्य की सृजन वृत्ति भी एक शक्ति है। प्रकृति की दुर्दमनीय शक्तियों, जल-वायु और बिजली को मनुष्य ने अपने उपयोग के लिये वश में कर लिया है तो क्या अपनी सृजन शक्ति को वह स्वाभाविक मार्ग दे अपने जीवन के आनन्द के स्रोत को संकट का कारण होने से नहीं बचा सकता ? प्रश्न है केवल परिस्थितियों के अनुसार नैतिक धारणा का मार्ग बदलने का !

औरों की बात क्या, आशंका है, स्वयम् क्रांतिकारियों की भावना को ही दादा-कॉमरेड से कुछ चोट पहुँचने की। शायद वे समझें कि क्रांतिकारियों की महत्ता को कम करने का यत्न किया गया है। परन्तु मेरा विचार ऐसा नहीं ! इस बात से याद हो आती है तुर्गनेव के उपन्यास 'ओत्से-सिनी' (पिता-पुत्र) की। ओत्से-सिनी के प्रकाशित होने पर तुर्गनेव को सबसे अधिक गालियाँ क्रांतिकारियों से ही मिलीं परन्तु दस वर्ष बाद यही पुस्तक क्रांतिकारी भावना की प्रतिनिधि समझी जाने लगी ! क्रांति का स्थान व्यक्ति नहीं भावना है। और क्रांतिकारी भावना नहीं, व्यक्ति है ! क्रान्ति का ध्येय व्यक्ति के प्रति अनुरक्ति से नहीं भावना के प्रति निष्ठा से पूर्ण होता है।

किसी न किसी को धन्यवाद भी देना ही चाहिये। इसलिये सबसे पहले डाक्टर प्रकाशपाल को ही धन्यवाद देता हूँ। रात-दिन लगातार काम करने के कारण पिछले सितम्बर में स्वास्थ्य ख़राब होजाने पर विप्लवी-ट्रैक्ट के प्रबन्ध का पूरा बोझ अपने सिर ले उन्होंने मुझे चार मास के लिये मंसूरी भेज दिया। मंसूरी की नीरवता ने दादा-कॉमरेड और 'वो दुनिया' लिखने का अवसर दिया। शीघ्र ही 'वो दुनिया' भी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करने का विचार है। कृतज्ञता के नाते मैं अपने मंसूरी के मेज़बान का भी ऋणी हूँ जहाँ बैठकर पुस्तक लिखी और

उस पर अनेक घण्टे विवाद किया ! पुस्तक के विचारों से पूर्णतः सह-मत न होकर भी पुस्तक प्रकाशित करने की ही राय उन्होंने दी, ताकि विचारों का संघर्ष सामने आये !

मई दिवस–१९४१ यशपाल

दूसरा संस्करण

दादा-कॉमरेड का प्रथम संस्करण प्रकाशित होते समय जो दुविधा मनमें थी, अब नहीं है। निन्दा और स्तुति दोनों ही यथेष्ट होती हैं। परिणाम में लिखने की प्रेरणा मिलती है। अपना श्रम सार्थक जान पड़ता है। तब से सात नई पुस्तकें लिख चुका हूँ और सुविधानुसार और भी लिखने का विचार है।

यदि इस उपन्यास को आज लिखूं तो अनेक परिवर्तन उपयोगी जान पड़ेंगे। वह न कर, पूर्व रूप में ही नया संस्करण छप रहा है। उत्तरोत्तर विकास का क्रम स्पष्ट रहे इसके लिये यही उचित है।

केवल भाषा की भूलें सुधारदी गई हैं।

अप्रैल–१९४४ यशपाल

दुविधा की रात

यशोदा के पति अमरनाथ बिस्तर में लेटे अख़बार देखते हुए नींद की प्रतीक्षा कर रहे थे। नौकर भी सोने चला गया था। नीचे रसोई-घर से कुछ खटके की आवाज़ आई। झुँझलाकर यशोदा ने सोचा—"बिशन नालायक जरूर कुछ नंगा उघाड़ा छोड़ गया होगा........" अनिच्छा और आलस्य होने पर भी उठना पड़ा। ज़ीना उतर रसोई में गई। चाटने के प्रयत्न में जिस बर्तन को बिल्ली खटका रही थी, उसमें पानी डाला। लेटने के लिये फिर ऊपर जाने से पहले उसने बैठक की साँकल को भी एक बेर देख लेना उचित समझा। नौकर का क्या भरोसा? बिजली का बटन दबा, उजाला कर उसने देखा, बैठक के किवाड़ों की साँकल और चिटखनी दोनों लगी हैं।

बिजली बुझा देने के लिये यशोदा ने बटन पर दुबारा हाथ रखा ही था कि बाहर, मकान की कुर्सी की सीढ़ी पर, दो चुस्त क़दमो की आहट और साथ ही किवाड़ पर थाप सुनाई दी। आने वाले को दरवाज़े और खिड़की के काँच से रोशनी दिखाई दे ही गई थी। खोले बिना चारा न था। अलसाए से खिन्न-स्वर में यशोदा ने पूछा—"कौन है?"

उत्तर में फिर थाप सुनाई दी—कुछ अधिकारपूर्ण सी। आगे बढ़ चिटखनी और साँकल खोली ही थी कि किवाड़ धक्के से खुल गये और एक आदमी ने शीघ्रता से भीतर घुस किवाड़ बन्द कर कहा—"मुआफ़ कीजिये..........."

अपरिचित व्यक्ति को यों बलपूर्वक भीतर आते देख यशोदा के मुख से भय और विस्मय से 'कौन?' निकला ही चाहता था कि उस

व्यक्ति ने अपने कोट के दाँये जेब से पिस्तौल निकाल, उसके मुख के सामने कर, दबे हुए परन्तु ज़ोरदार ढंग से कहा—"चुप ! नहीं तो गोली मार दूँगा ।"

भय की पुकार गले में ही रुक यशोदा के शरीर में कँपकपी आगई । वह अवाक खड़ी थी । आगन्तुक ने बायें हाथ से किवाड़ की साँकल लगादी परन्तु दायें हाथ से वह पिस्तौल यशोदा के मुख के सामने थामे रहा । उसकी सतर्क आँखें भी उसी ओर थीं ।

भीतर के दरवाज़े की ओर संकेत कर आगन्तुक बोला—"चलिये ! हाँ, बिजली बुझा दीजिये ।" यशोदा काँपती हुई भीतर के कमरे की ओर चली । कमरे में पहुँच आगन्तुक ने कहा—"रोशनी कर लीजिये ।" काँपते हुए हाथों से, अभ्यस्त स्थान टटोलकर यशोदा ने बिजली जगा दी।

आगन्तुक अब भी पिस्तौल यशोदा की ओर किये था परन्तु उसके मुख के भाव और स्वर में कुछ कोमलता और दीनता आगई । वह बोला—"मैं आपका कुछ बिगाड़ने नहीं आया हूँ । मैं आपको कष्ट न देता परन्तु कोई चारा न था । केवल कुछ घण्टे आप मुझे यहाँ बैठा रहने दीजिये । एक हिन्दुस्तानी के नाते मैं आपसे इतनी प्रार्थना कर रहा हूँ ।"

उस व्यक्ति के व्यवहार से यशोदा का भय कुछ कम हुआ । उसने देखा—आगन्तुक की साँस अब भी तेज़ चल रही है । वह भागकर आया जाना पड़ता था । उसके माथे पर पसीने की महीन, घनी बूदें झलक रही थीं । उसकी आयु अधिक नहीं थी । वह भयानक मनुष्य भी न जान पड़ रहा था । उसके सिर पर पगड़ी थी, मुख पर कम उम्र की हलकी-हलकी दाढ़ी-मूँछ आ रही थी । दोनों हाथों की उँगलियों को आपस में दबाते हुए भयभीत और धीमे स्वर में यशोदा ने पूछा—"आप कौन हैं ?"

तीव्र दृष्टि यशोदा के मुख पर डालते हुए उसने उत्तर दिया—"क्रान्तिकारी पार्टी के लोगों का नाम आपने सुना होगा............हम

लोग जेल में थे। आज हमें दूसरे मुकद्दमे के लिये अमृतसर ले जाया जा रहा रहा था। हमारे साथियों ने पुलिस पर आक्रमण कर हमें छुड़ा लिया। कोई जगह न होने से रोशनी देख मैं यहाँ आगया हूँ। यदि मैं योंही भटकता फिरूँ तो जरूर पकड़ लिया जाऊँगा। आप जानती हैं, मुझे कम-से-कम बीस बरस जेल में रखा जायगा और अब तो शायद फाँसी हो जाय ! सुबह सूरज निकलने मे पहले ही मैं चला जाऊँगा। देखिये, मैंने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं। केवल देश की स्वतंत्रता के लिये हम लोग यत्न कर रहे थे।"

यशोदा कुछ कह न सकी। उसकी घबराहट अभी दूर न हो पाई थी। उचित-अनुचित, कर्तव्य-अकर्तव्य वह कुछ न समझ सकी। उसे केवल समझ आया—मौत से भागता हुआ एक व्यक्ति जान बचाने के लिये उसके पैरों के पास आ पड़ा है। भय के अचानक धक्के से जो मूढ़ता उसके मस्तिष्क पर छा गई थी, उसका धुन्द शनैः-शनैः साफ़ होने लगा। हाथो की उँगलियाँ उसी तरह दबाये वह उस नवयुवक की ओर देख रही थी। जिस व्यक्ति से वह इतना डर गई थी, वही गिड़-गिड़ाकर उससे प्राणों की भिक्षा माँग रहा था। अपनी निष्पलक आँखों के सामने उसे दिखाई दिया—बहुत से लोग, तलवार-बंदूक लिये उस नवयुवक को मार डालने के लिये चले आ रहे हैं। वह उसके पैरों में, उसके आँचल में दुबक कर जान बचाना चाहता है।—अब भी वह कुछ न बोल सकी। केवल निस्तब्ध उस शरणागत की ओर देखती रही। वह पिस्तौल जो कुछ देर पहले उसके माथे की ओर तना हुआ था, अब युवक के हाथ में नीचे लटक रहा था। यशोदा को चुप देख नवयुवक एक क़दम समीप आ धीमे स्वर मे बोला—"मैं यहीं बैठा रहूँगा।"

यशोदा ने एक साँस ले उसकी ओर ध्यान से देखा, मानों वह कुछ समझ नहीं सकी। युवक ने यशोदा को विश्वास दिलाने के लिये फिर

कहा—"मैं यहीं बैठा रहूँगा। आपका कुछ नुक़सान न होगा। आप आराम कीजिये !"

काँपते हुए स्वर में यशोदा बोली—"उनसे पूछ लूँ ?"

युवक ने आर्द्र स्वर में स्वीकार किया—"अच्छा !" परन्तु फिर रुककर बोला—"अब तो मैं आ ही गया हूँ। वे शायद घबरायें। चुप-चाप रहने दीजिये। खटका न होना ही अच्छा है। ज़रासी बात से कुछ का कुछ हो जा सकता है। मैं सुबह तक चला जाऊँगा। उस समय आप उन्हें सब कुछ समझा सकेंगी। इसमें कुछ भी हर्ज़ न होगा। आप आराम कीजिये।"

आधा मिनट तक यशोदा फिर सोचती रही। वह ठीक ही कह रहा था—वह आ तो गया ही था। अब उसे निकाला कैसे जाय ? चुप के सिवा और कोई राह नहीं थी। कुछ सेकण्ड वह अपनी धोती समेटे, आँखें नीची किये खड़ी रही फिर लाचारी और स्वीकृति के भाव से सिर हिला ज़ीने की ओर चल दी। ज़ीने पर उसके पैर रखते ही नीचे कमरे में बिजली बुझ गई। अंधेरे में ज़ीना चढ़ते उसके पैर काँप रहे थे, दिल धड़क रहा था परन्तु उस सब पर निश्चय का एक भाव था—अब यह सहना ही होगा।

अमरनाथ अब भी अख़बार देख रहे थे। कमरे में आहट पा, उन्होंने अख़बार पर से दृष्टि उठाये बिना पूछा—"आगई ?" एक क्षीण सी 'हूँ' कर यशोदा अपने पलँग पर लेट गई। हृदय की उत्तेजना के कारण उसे गरमी अनुभव हो रही थी। उसके मुँदे हुए नेत्रो के सामने वही दृश्य फिर दिखाई देने लगा—अनेक लोग भाला-तलवार और बन्दूकें लिये उस नवयुवक को मार डालने के लिये झपट रहे हैं। वह हाँफता हुआ आकर यशोदा के पैरों में, उसके अंचल में छिप गया है। उसके हृदय में एक प्रबल आवेग सा उठ रहा था, जिसके बाहर निकलने की कोई राह न थी। वह उसके मस्तिष्क और शरीर को विक्षुब्ध किये दे रहा था।

बिजली के टेबल लैम्प के नीचे लगी घड़ी की ओर देख अमरनाथ बोले—"........साढ़े दस !"

अपनी बेचैनी को छिपाने के लिये यशोदा ने करवट बदल ली। पति ने कुछ शङ्कित से स्वर में पूछा—"क्यों क्या है ?"

"नहीं कुछ नहीं........ऐसे ही, सीढ़ियाँ चढ़ने से किसी समय हो जाता है।"—यशोदा ने उत्तर दे चेहरे पर हाथ रख लिया। यशोदा को कभी-कभी "दिल डूबने" का सा दौरा हो जाता था। इसी ख़्याल मे पति ने फिर एक बेर पूछा—"कुछ घबराहट तो नहीं मालूम होती ?"

"नहीं, ऐसे ही रोशनी आँखो में लग रही है।"

टेबल लैम्प का बटन दबा अमरनाथ लेट गये। कुछ ही मिनट में उनका सम और गम्भीर श्वास शांत निद्रा का परिचय देने लगा। यशोदा ने बेचैनी से फिर करवट बदली। वह अँधेरे में आँखे खोले पड़ी थी। निद्रागत पति के समश्वास के साथ घड़ी की टिक-टिक और अपने हृदय की धड़कन उसे सुनाई दे रही थी। बीच-बीच में सशस्त्र लोगों के उस नवयुवक पर झपटने, सहसा घर के किवाड़ों के खुलने और पिस्तौल के सामने आजाने का दृश्य उसकी आँखों के सामने आजाता और फिर पति के श्वास, घड़ी की टिक-टिक और उसके हृदय की गति के शब्द को दबाकर उस युवक की वे बातें सुनाई देने लगतीं।........आरम्भ में उसका पिस्तौल दिखाना........उसका डरावना भयानक रूप और फिर उसकी वह त्राण माँगती कातर आँखें ! वह सोचने लगी, नीचे कमरे के अँधेरे में वह किसी कुर्सी पर बैठा अब भी भय से काँप रहा होगा।

उसे अनुभव हुआ, बहुत देर से प्यास लगी है; परन्तु जल पीने का ध्यान नहीं आया। धीमे से उठ, उसने लोटे से गिलास में पानी लिया। गिलास ओठो तक लेजाने से पहले ही ख़्याल आया—वह प्यासा होगा; भागकर कैसे हाँफता हुआ आया था ? ज़रूर बहुत प्यासा होगा।

गिलास भरकर अँधेरे में ही बिना आहट किये, बहुत धीमे-धीमे

वह ज़ीने से नीचे उतरी। कमरे में पहुँच उसने बिजली का बटन दबाया। उसने देखा, नवयुवक बड़ी सतर्कता से उस दरवाज़े की ओर पिस्तौल किये घूर रहा था जिस ओर से यशोदा के आने की आहट मिली थी। प्रकाश होजाने पर उसने पिस्तौल नीचे कर लिया। बिना कुछ कहे यशोदा ने जल का गिलास उसकी ओर बढ़ा दिया। कृतज्ञता से यशोदा की ओर देख वह गिलास को एक ही साँस में पी गया।

दबे स्वर में 'धन्यवाद' दे समीप पड़ी छोटी तिपाई पर वह गिलास रखने जा रहा था। यशोदा को हाथ बढ़ाते देख उसने संकोच से गिलास उसके हाथ में दे दिया। गिलास ले यशोदा कमरे से बाहर गई। कुछ ही सैकण्ड में और जल ला उसने गिलास फिर उसके सामने कर दिया। अबकी युवक की आँखों में कृतज्ञता का भाव और भी गहरा था। आधा जल पी उसने गिलास तिपाई पर रख दिया।

यशोदा को ख़्याल आया—इसे भूख भी होगी, कम-से-कम रात में ठण्ड तो लगेगी ही और क्या सारी रात कुर्सी पर बैठकर बिताई जा सकती है ? परन्तु वह क्या करे ? छिप-छिप कर चोरी से सब इंतजाम वह कैसे कर सकती है.........? ज़ीने का कोना पकड़े खड़ी वह कुछ देर सोचती रही, फिर ख़्याल आया—यदि उनकी नींद खुल जाय या माँजी चौंक पड़ें ? बेबसी की गहरी साँस को दबा वह फिर शनैः-शनैः ज़ीना चढ़ लेटने के लिये चली गई। कुछ मिनट लेटने के बाद उसे याद आया, जल तो मैंने पिया ही नहीं। जल पीते ही अनुभव होनेवाली ठण्ड की सिहरन से, नीचे कुर्सी पर भूखे बैठे, सर्दी में काँपते हुए युवक के ख़्याल ने उसे बेचैन कर दिया। उससे रहा न गया। फिर दुबारा अंधेरे में बिना आहट के क़दम रखती हुई वह असबाब रखने के कमरे में गई। नीचे बिछाने के लिये कुछ मोटा कपड़ा, एक कम्बल और तकिये के बोझ को उठाये वह बहुत सँभल-सँभल कर ज़ीना उतरने लगी।

कमरे की बिजली इस बीच में फिर बुझ चुकी थी। यशोदा के

दोनों हाथ बोझ सँभाले थे। कुछ एक क्षण वह निरुपाय खड़ी थी कि युवक ने टटोल कर बिजली जला दी। उसे इतना बोझ यों उठाये देख युवक संकोच और अति कृतज्ञता के स्वर में बोला—"इसकी तो कोई ज़रूरत नहीं थी, आपने यों ही कष्ट किया।"

बिस्तर के कपड़े एक कुर्सी पर रख वह फिर लौट गई। चार-पाँच मिनट बाद एक तश्तरी में खाने के लिये कुछ ले जब वह लौटी तो युवक दीवार के साथ लगे सोफ़े के सहारे बहुत छोटा-सा बिस्तर लगा चुका था। तश्तरी तिपाई पर रख, लौटते हुए घूमकर उसने धीमे स्वर में पूछा—"किसी और चीज़ की ज़रूरत होगी?"

यशोदा के व्यवहार से युवक का साहस बढ़ चुक था। समीप आ, अपने कपड़ों की ओर संकेत कर उसने कहा—"इन्हीं कपड़ों में मेरा कल बाहर जाना ठीक न होगा; पहचान लिया जाऊँगा। आप मुझे एक धोती या इस तरह का कोई कपड़ा और एक कोट या कोई चीज़ ओढ़ने के लिये और चार-पाँच रुपये सुबह बाहर जाने से पहले दे सकें तो बड़ी सहायता होगी। हो सका तो आपकी चीज़ें लौटा देने की भी कोशिश करूँगा।"

कुछ सोच यशोदा बोली—"वे सुबह छः बजे के करीब उठ जाते हैं। नौकर भी सफ़ाई करने नीचे आयेगा। मांजी तो और भी पहले उठ जाती हैं। वे नहाने नीचे आयेंगी।"

अपनी दोनों बाहें सीने पर समेटते हुए युवक ने चिन्ता से कहा—"छः बजे से पहले तो सड़कों पर बिलकुल सुनसान होगी, भीड़ में ज़रा अच्छा रहता............हाँ, आपके नौकर के कपड़े मिल जायँ, तो ज़्यादा अच्छा रहे।

यशोदा फिर अँधेरे ज़ीने से चढ़ अपने बिस्तर पर पहुँची, घड़ी में अभी बारह भी नहीं बजे थे। उसकी घबराहट अब पहले से कम हो गई थी। घबराहट की जगह लेली थी आशंका ने। प्राणों पर आक्रमण

के भय का स्थान अब ले लिया था परिणाम के भय ने जो हृदय की गति की अपेक्षा मस्तिष्क की क्रिया पर अधिक बोझ डालता है। नींद कहीं कोसों पास न थी। विचार उठता था, एक नौजवान कितना भला लड़का, घरबार से बिछुड़ा हुआ, उसके प्राण संकट में !........लोग उसे पकड़ सारी उम्र क़ैद कर देना चाहते हैं, उसे मार डालना चाहते हैं।....वह प्राण बचाकर भाग रहा है। उसका हौसला भी कितना है ? देश के लिये वह घरबार छोड़ जान ख़तरे में डाल रहा है। उसकी आँखों के सामने कांग्रेस के जुलूसों का दृश्य दिखाई देने लगा। सैकड़ों-हज़ारों लोग अनेक नारे लगाते, झण्डे उठाये चलते हुए दिखाई देने लगे। शहर में महात्मा गांधी के आने पर छत से उसने वह जुलूस देखा था। और भी कई जुलूस उसने देखे हैं। 'भारत माता की जय' ! 'हिन्दोस्तान जिन्दाबाद' ! 'बन्देमातरम' ! के नारे सुन उसके शरीर में रोमांच हो आता था।

उसके पति अमरनाथ कांग्रेस में भाग लेते थे। अपने मोहल्ले की कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी थे। चुनाव में ख़ूब दिलचस्पी लेते। उसके घर में स्वामी दयानन्द, तिलक और गांधीजी की बड़ी-बड़ी तसवीरें लटक रहीं थीं, गांधी जी के प्रति उसे बहुत श्रद्धा और भक्ति थी। वह जानती थी कांग्रेस और गांधीजी देश में हिन्दुस्तानियों का राज चाहते हैं। बड़े-बड़े जुलूस और सभाएँ देख उसके मन में एक उत्साह सा भर आता था। यह भी वह जानती थी कि सरकार और पुलिस इन बातों से नाराज़ होती है। स्वराज्य माँगने के लिये जुलूस और सभा करने पर लाठियाँ और गोलियाँ चलती हैं, लोगों को जेल में बंद कर दिया जाता है। ऐसी ख़बरों से उसे भय और दुःख होता। उसने यह भी सुना था कि देश की स्वतंत्रता के लिये लड़ने वाले और लोग भी हैं जो बम और गोली चलाते हैं। सरकार उन्हें पकड़ जेलों में बन्द कर देती है या फाँसी लगा देती है। यह बड़े भयानक और निडर होते हैं।

जंगलों में छिपे रहते हैं और सरकार से लड़ते रहते हैं। इन लोगों में से किसी के पुलिस द्वारा पकड़ लिये जाने पर या इन लोगों के किसी उपद्रव का समाचार मिलने पर ही उनका चर्चा होता था। अनेक विचित्र और भयानक बातें उन लोगों की बाबत सुनी जाती थीं। इस नवयुवक में कोई भी वैसी विचित्र या भयानक बात उसे दिखाई न पड़ी हाथ में पिस्तौल होने पर भी वह निस्सहाय हो प्राण-रक्षा की भीख माँग रहा था। यशोदा का अपना लड़का उदय जिस प्रकार निस्सहाय है, दादी और माँ की सहायता की ज़रूरत जिस प्रकार उसके लड़के को रहती है, ठीक वैसा ही; परन्तु उससे कई बरस बड़ा यह लड़का है। उसका अपना लड़का दादी की बगल में सुरक्षित सोया हुआ है परन्तु किसी दूसरी माँ का लड़का मौत के विकराल दाँतों से निकल भागने की चेष्टा में उसके आँचल में आ पड़ा है।

"........सुबह छः बजे से पहले तो सड़कें सूनी सी रहती हैं।" नवयुवक की वह बेबसी उसके कानों में गूँज गई। पर वह क्या करे? नीचे सड़क पर किसी आने-जाने वाले के पैरो की आहट सुन उसका कलेजा धक-धक करने लगता। कभी अधिक आदमियों के पैरों की आहट आने से उसे और भी भय जान पड़ता।

उसके पलँग की दाईं ओर की खिड़की से नीचे कुछ दूर पर सड़क का भाग दिखाई देता था। बिजली के खम्भों की रोशनी में आने-जाने वाले व्यक्ति वहाँ से दिखाई पड़ते थे। वह उसी ओर टक लगाये थी। सड़क पर कई पैरों की आहट पा उसने देखा, वर्दी पहिने और कंधे पर बंदूक रक्खे पुलिस के कई सिपाही हाथों में बिजली की बड़ी-बड़ी बत्तियाँ लिये चले आ रहे थे। हाथ की बत्तियों की रोशनी वह सड़क किनारे के अंधेरे स्थानों और मकानों पर डालते जाते थे। यशोदा के हृदय की गति का वेग बढ़ गया। ज्यों-ज्यों उनके कदमों की आहट समीप आती जाती; उसके हृदय की धड़कन का शब्द बढ़ता जाता।

उसे जान पड़ा, उसके घर के किवाड़ों पर ज़ोर-ज़ोर की चोटें पड़ रही हैं। उसकी आँखें मुँद गईं, साँस रुक गई और सिर में चक्कर आगया····कुछ भी सुनाई पड़ना और अनुभव होना बन्द हो गया।

चेतना लौटने पर पुलिस के पैरों की आहट दूर चली गई थी। जान पड़ा, जो पंजा उसका गला दबोच उसका श्वास रोक रहा था, वह हट गया। गहरी साँस खींच उसने अपना सिर हिलाया और चेतना अनुभव करने की चेष्टा की। घड़ी की ओर देखा। एक बजने को था। ख़्याल आया, नीचे नवयुवक ने कुछ कपड़े और रुपये माँगे थे;········परन्तु 'सुबह छः बजे से पहले तो सड़कें सूनी होती हैं।' ख़्याल आया····पति को उठा इस संकट में सलाह ले। वह अकेली क्या कर सकती है? करवट ले उसने पति की बाँह पर हाथ रक्खा पर उसी समय ध्यान आया, यदि चौंक कर ज़ोर से बोल उठें या बात सुन एकदम घबरा जायँ?········हृदय से उठे आवेग को गले में ही रोककर उसने हाथ पीछे खींच लिया।

छत की कड़ियों की ओर देखती हुई वह सोचती रही। वह क्या करे?··········कुछ समझ में न आता था। आँखें मूँद वह बार-बार भगवान को पुकार रही थी। संकट में वही एकमात्र सहायक हैं। अत्यन्त अनुनय से उसने भगवान की रक्षा में और नवयुवक और अपने आपको समर्पित कर दिया। शनैः-शनैः उसे विश्वास होने लगा, भगवान उन दोनों की रक्षा कर रहे हैं। वह उन्हीं को याद कर रही थी। उसे फिर अपने ओंठ और तालू सूखते जान पड़े। जल पीने के लिये उठकर उसने देखा, अढ़ाई बज चुके थे।

वह फिर बिस्तर से उठी। शरीर निढाल हुआ जा रहा था; परन्तु संकट की अवस्था और नीचे बैठे युवक की बात के ख़्याल से उसने शरीर को वश में किया। वह फिर असबाब रखने के कमरे में गई। बहुत सावधानी से बक्स खोला। ज़रा सी आहट से ही साथ के कमरे

माँजी के जाग पड़ने का भय था। एक मर्दानी धोती, एक कमीज़
ौर एक कोट उसने निकाल लिया। फिर अपने कमरे में लौट, अपनी
ास आलमारी बहुत सावधानी से खोली। एक छोटी सी डिबिया
ोलकर देखा—आठ रुपये थे और कुछ नोट। उसने दस का एक
ाट और आठों रुपये उठा लिये। ज़ीना उतर वह नीचे कमरे में
ंची। युवक ने उठ बिजली का बटन दबाया। कम्बल ओढ़े बैठा
ह रात गुज़ार रहा था। कपड़े और रुपये मेज़ पर रख यशोदा गिलास
ठा और जल लाने जा रही थी।

उसे सम्बोधन कर युवक ने कहा—"सुबह तड़के जाने के लिये नौकरों
कपड़े मिल जाते तो अधिक अच्छा होता। स्वीकृति सूचक सिर झुका
शोदा चली गई और कुछ देर में इधर-उधर से ढूँढ नौकर के मैले-कुचैले,
ढंगे कपड़े और जल का गिलास ला उसने तिपाई पर रख दिया।

संतोष से युवक ने कहा—"यह ठीक है। मैं पौने छः बजे चला
ाऊँगा।" एक गहरी साँस ले यशोदा लौट रही थी। रुककर उसने
छा—"अब को डर तो नहीं?"

"क्या कहा जा सकता है परन्तु इन कपड़ो से बड़ी सहायता
मलेगी। इसके साथ ही कोई टोकरी या फालतू कनस्तर हो तो बहुत
च्छा हो। पर एक बात का ख़्याल आप रखियेगा, मुझे यहाँ रखने
ी चर्चा भूलकर भी किसी से न कीजिये? चाहे कोई कितना ही अपना
यों न हो? इससे आप मुसीबत में पड़ जायँगी। भागे हुए क़ैदी या
रार क्रान्तिकारियो को शरण देना सरकारी क़ानून के अनुसार जुर्म
। उसके लिये पाँच-सात बरस की क़ैद हो जाती है। मैं इस बात का
याल रखूँगा कि मुझे यहाँ से निकलते कोई देख न पाये! परन्तु यदि
फिर पकड़ा जाऊँ और आपसे पूछा जाय तो आप साफ़ इनकार कर
ीजिये। तीन बजने को होंगे, 'छः' से पहले ही मैं चला जाऊँगा।
ाकट झेल मेरे प्रति आपने जो सहानुभूति दिखाई है, उसके लिये मैं तो

आपका जन्म भर कृतज्ञ रहूँगा ही, इसके इलावा हमारे दल के साथी और हमारे दल से सहानुभूति रखनेवाले सभी लोग आपके कृतज्ञ होंगे। हाँ, जाने के बाद जो कपड़े मैं यहाँ छोड़ जाऊँ, उन्हें तुरन्त जलवा दीजिये!"

रात के सन्नाटे में बैठक की दीवारगीर घड़ी ने टन-टन करके तीन बजा दिये। युवक कृतज्ञता के भाव से सिर झुकाये खड़ा था। उसे और कुछ नहीं कहना है, यह समझ यशोदा चलने लगी। उसकी ओर देख युवक बोला—'पौने छः बजे आप नीचे आ किवाड़ बन्द कर लीजियेगा।'

लौटकर यशोदा बिस्तर पर लेट गई। अंधकार में छत की ओर लगी उसकी आँखों के सामने फिर वही कांग्रेस के जुलूसों के दृश्य, युवक का पिस्तौल सामने कर देना, उसकी वह कातर प्राण-भिक्षा सब अनेक बेर सामने आने लगा। पति के करवट बदलने या किसी अंग के हिलने की आहट से वह उस ओर देख लेती, कभी घड़ी की ओर। कभी उसे अनुभव होता कि घड़ी की सुइयाँ बहुत धीमे चल रही हैं और कभी जान पड़ता कि सुई पन्द्रह बीस मिनट सहसा कूद गई।

पड़ोस में किसी के गाने का क्षीण स्वर सुनाई देने लगा। उसने घड़ी की ओर देखा दोनों सुइयाँ चार पर इकट्ठी हो रही थीं। कहीं दूर से मुर्गों की अस्पष्ट बाँग सुनाई दे रही थी। कहीं पड़ोस से पानी के नल की तेज़ धार खाली बाल्टी में गिरने का शब्द सुनाई दिया। माँ जी के कमरे से खाँसने-खँखारने की अवाज़ आने लगी। इसके बाद उनके धीरे-धीरे गुन-गुनाने का शब्द सुनाई दिया—"उठ जागरे मुसाफ़िर भोर भई......." माँ जी अपनी भक्ति का गीत सुबह बहुत धीमे स्वर में गाती हैं और ममता से धीरे-धीरे उदय की पीठ सहलाती जाती हैं। माँ जी का यह गीत उदय के लिये मीठी नींद लाने के लिये लोरी है परन्तु जान बचाने के लिये सचमुच ही उठकर चल देने का संदेश है।

घड़ी में पाँच भी बज चुके थे। यशोदा को जान पड़ा कि उसकी सहानुभूति और दया का पात्र मेहमान अब बहुत जल्दी चला जायगा।

वह कुछ देर और क्यों न ठहरे ? संकट और भय से वह सदा के लिये क्यों न मुक्त हो जाय ? घड़ी की सुइयाँ अब उसे बहुत तेज़ी से आगे बढ़ती जान पड़ रही थीं। खिड़की से दिखाई पड़ने वाले आकाश के भाग में ऊषा की प्रथम आभा छा गई थी परन्तु यशोदा को जान पड़ता था—अभी तो पौ फटने में देर है, अभी तो सड़कें सुनसान हैं। नीचे सड़क पर कमेटी के मेहतरों की आवाज़ और वृक्षों पर कौओं का स्वर भी सुनाई देने लगा। पौने छः बहुत जल्दी बज गये। दो ही तीन मिनट शेष थे। वह नीचे जाने के लिये उठ बैठी। उसके खड़े होते ही सड़क मे अख़बार वाले की पुकार सुनाई दी:—"बमकेस का क़ैदी भाग गया—आज की ताज़ी ख़बर।" एक धक्के से वह फिर पलंग पर गिर पड़ी परन्तु तुरन्त ही सँभल कर नीचे पहुँची।

युवक, नौकर के मैले-कुचैले कपड़े पहने एक फटा मैला सा कपड़ा कानों पर बाँधे, उसकी प्रतीक्षा में बैठा था। उसे देखते ही वह उठ खड़ा हुआ। "मैं कुछ कह नहीं सकता, आपने जो दया दिखाई है,.... आपका कल्याण हो!"—द्रवित स्वर में वह बोला परन्तु उसकी जिह्वा से पहले उसकी दृष्टि ने बहुत कुछ कह दिया। किवाड़ खोल, खाली कनस्तर बगल में दबाये वह फुर्ती से सड़क पर उतर गया।

उसे यों जाते देख यशोदा का हृदय मुँह को आने लगा, ठीक उसी तरह जैसे उदय के छत की मुड़ेर पर झुकने से वह काँप उठती। किवाड़ों की साँकल लगा, खिड़की के काँच से सड़क पर जहाँ तक दृष्टि जा सकती थी, यशोदा देखती रही। वह युवक सर्दी से सिकुड़ता, बगल का कनस्तर बजाता, बेपरवाही से चला जा रहा था। जब कुछ दिखाई न दिया तब भी वह अपनी पथराई आँखें इसी ओर लगाये रही। सड़क पर दूसरे लोगों को आते-जाते देख उसे याद आया—बैठक से वह सब सामान उसे तुरंत दूर कर देना है।

२

नये ढंग की लड़की

मध्यम श्रेणी अनिश्चित स्थिति के लोगों की एक अद्भुत पचमेल खिचड़ी है। कुछ लोग मोटरों और शानदार बँगलों का व्यवहार कर विनय से अपने आपको इस श्रेणी का अंग बताते हैं। दूसरे लोग मज़दूरों की सी असहाय स्थिति में रहकर भी केवल सफ़ेदपोश और शिक्षित होने के बल पर इस श्रेणी का अंग होने का दावा करते हैं। देश की राजनीति और समाज-सुधार की चिन्ता जितनी इस श्रेणी में रहती है, उतनी न तो अपने विस्तृत स्वार्थों की चिन्ता में व्यस्त रहने वाली ऊँची श्रेणियों को और न रोटी के टुकड़े की चिन्ता से कभी मुक्ति न पानेवाली निम्न श्रेणियों को ही। अमरनाथ बाबू इस श्रेणी के निर्विवाद अंग थे। समाज और देश के प्रति अपने सम्बन्ध को अनुभव करने के लिये वे प्रतिदिन चार पैसे का समाचार पत्र स्नान से पूर्व, रात की खुमारी उतारते हुए देख डालते।

अमरनाथ के पड़ोसी गिरधारीलाल बैंक मे मामूली क्लार्क थे। समाचार जानने के लिये चार पैसे निछावर करने की अपेक्षा गिरधारीलाल प्रातः मुख में दातुन और गोद में अढ़ाई बरस के बच्चे को लिये, बच्चे की मा को घर बुहारने की सहूलियत देने के विचार से अमरनाथ बाबू के यहाँ आकर पूछ लेते—"क्या खबर है आज ?"

इसमें दोनों का ही लाभ था। गिरधारीलाल अख़बार पढ़ लेते। अमरनाथ को विवाद में गिरधारीलाल को मात दे और अपनी नीतिज्ञता

प्रकट कर सकने का अवसर मिल जाता। गिरधारीलाल, चाहे विचारों की उग्रता के कारण हो या अपनी परिस्थितियों के प्रति असंतोष के कारण, घोर वामपक्षी थे। अमरनाथ बाबू थे कांग्रेस की अहिंसात्मक नीति—अर्थात गाधीवाद के समर्थक आये दिन की घटनाओं को ले इन दोनों में बहस चला करती, यशोदा के लिये यह केवल पति के मनोविनोद का साधन था। पति को उत्साह से ऊँचे स्वर में बोलते और हा-हा कर हसते देख उसे संतोष होता था। परन्तु उसदिन वह ध्यान से सुन रही थी। डकैती और कत्ल के अपराधी क्रान्तिकारी अभियुक्त के पुलिस की हिरासत से भागकर प्राण बचा लेने की ख़बर में अमरनाथ भी प्रसन्न थे। भागने के प्रयत्न में गोली खाकर मारे जानेवाले क्रान्तिकारी से उन्हे सहानुभूति भी थी परन्तु गिरधारीलाल के इस ताने को "यह है असली राह, और सब तो केवल पाखण्ड और बेईमानी है" वे सह न सके।

बहस में गरम हो उन्होंने कहा—"पच्चीस बरस में इन क्रान्ति-कारियो ने कर ही क्या लिया? जो जागृति देश में गांधी जी ने दस वर्ष में फैलादी, उसे यह क्रान्तिकारी एक सदी में भी फैला नहीं सकते थे। सरकार के मुक़ाबिले में इनके दस-पाँच बम और पिस्तौल करही क्या सकते हैं.......अरे हाँ, जिस सरकार की शस्त्र शक्ति का अन्त नहीं, इन फुलझड़ियो से उसका क्या बिगड़ सकता है? पतंगों की तरह जल मरना हो तो दूसरी बात है।"

उदय को नहलाते और कपड़े पहनाते यशोदा यह सब सुन रही थी। अख़बार की ख़बर का प्रभाव उदय पर भी कम न हुआ था। बार-बार हाथ की लकड़ी पटक वह कह रहा था—"भाबी, मै बन्दूक लेकर जाऊँ आ।" कभी वह भागे हुये डाकू को पकड़ने जाना चाहता, कभी डाकू का पीछा करनेवालो से लड़ने। यशोदा उसे समझा रही थी—अच्छा जाना, कपड़े तो पहन ले। बहस को ध्यान से सुन सकने के लिये वह बच्चे को चुपकरा देना चाहती थी परन्त वह सनता न था. पति की बात

का कोई समुचित उत्तर गिरधारीलाल को दे सकते न देख उसे भला मालूम न हुआ। कुछ खीझकर गिरधारीलाल ने कहा—"तो तुम कांग्रेसियों का तीन मास जेल काट शहादत की माला पहिर लेना इन लोगों के फाँसी चढ़जाने से भी बड़ी हिम्मत है?"

यशोदा के कान उधर ही थे, सुनकर कुछ सन्तोष हुआ। अमरनाथ इस ताने पर हँस न सके, न अभ्यास के अनुसार ऊँचे स्वर में उत्तर ही दे सके। परन्तु पराजय स्वीकार कर लेना भी उनके लिये कठिन था। अपने आपको रोकने में असमर्थ पा, उन्होंने कह दिया—"हिम्मत तो चोर डाकुओं में भी कम नहीं होती!"

माथे पर हाथ मार विस्मय प्रकट कर गिरधारीलाल बोले—"धन्य है, आप इन लोगों को चोर डाकू समझते हैं?" इस बीच में अमरनाथ आपे में आचुके थे; बोले—"यह हमने कब कहा?....लेकिन इस बात से तो आप इनकार नहीं कर सकते कि इन लोगों के काम कांग्रेस के सत्याग्रह आन्दोलन की राह में रुकावट डालते हैं। गांधी जी कई दफ़े कह चुके हैं कि एक दफ़े उन्हें पूर्ण अवसर दिया जाय। क्या यह लोग देश के उन सब बड़े-बड़े नेताओं से भी अधिक बुद्धिमान हैं—अधिक बड़े?"—कुछ देर इसी प्रकार बहस चलती रही।

गिरधारीलाल चिढ़कर उत्तर देने से बचने के लिये कुचली हुई दातुन मुँह में डाल, बच्चे को गोद में ले चलने का उपक्रम करने लगे। अपनी सहानुभूति उनके प्रति प्रकट करने के लिये यशोदा ने खिड़की से पुकारकर कहा—"भइया ठहरो, लल्लू को उदय के साथ दूध पीलेने दो, ज़रा यहीं खेलेगा। तुम भी नाश्ता करके जाना!"

स्नान से पहले नाश्ता करने के निमंत्रण का व्यावहारिक अर्थ कुछ न था परन्तु इससे गिरधारीलाल के तर्क में निरुत्तर होजाने का मलाल मिट गया। यशोदा बातूनी अधिक नहीं है, परन्तु स्वभाव की अच्छी है, यह सभी जानते हैं। अमरनाथ भी अपनी कठोरता से झेंप रहे थे।

यशोदा की इस मौक़े की सूझ से प्रसन्न हो उन्होंने भी समर्थन किया—"हाँ गिरधारी, आज नाश्ता यहीं कर लो न !" बच्चे को गोद में लेते हुए दातुन से भरे मुख मे विकृत स्वर में गिरधारीलाल ने सुलह के इस संकेत को स्वीकार करते हुए कहा—"बौट डेर हो जायगी·······" और चले गये।

स्नान के पश्चात् बाहर जाने के कपड़े पहन जिस समय अमरनाथ यह सोच रहे थे कि किस परिचित के ज़रिये बीमे के किस नए असामी से उन्हें मिलना है, नाश्ते की तश्तरी उनके सामने रखते हुए यशोदा ने प्यार के उलाहने से कहा—"तुम भी क्या;·······खामखाह गिरधारी लाल को डाँट दिया करते हो !"

विजय-गौरव से पत्नी की ओर आँख उठा अमरनाथ ने उत्तर दिया—"वह गधा भी तो क्रान्तिकारी बनता है।" यशोदा का मन चाह रहा था, पूछे—तुम्हें इन क्रान्तिकारियों से कोई सहानुभूति नहीं ? परन्तु ऐसी नई बात, जो उसने कभी नहीं पूछी और जिसकी तह में रात का इतना बड़ा रहस्य छिपा था, उसके ओठों तक आकर ही रह गई। बड़ी-बड़ी आँखें पति की ओर उठाकर उसने कहा—"बेचारा जान बचाकर भाग गया है····पकड़ा जायगा तो उसका क्या होगा ?"

दूध का गिलास समाप्त कर हाथ पोंछते हुए अमरनाथ ने उत्तर दिया—"यह लोग एक दफ़े भाग गये तो पकड़े नहीं जाते। इनके बड़े-बड़े इंतज़ाम हैं। जाने कैसे तहख़ानों और किन जंगलों में यह लोग रहते हैं ?" यशोदा एक साँस ले चुप हो गई। उसके पति से अधिक प्रामाणिक बात और कौन कह सकता था ! उसके पति के निकट वह क्रान्तिकारी बहुत भला न सही परन्तु उसकी जान तो सुरक्षित है।

यशोदा नित्य अख़बार पढ़ने लगी। जिस समाचार को जानने के लिये वह विशेष उत्सुक थी उसे न पाने पर वह कितनी ही दूसरी बातें पढ़ डालती। पढ़ने का उसका अभ्यास विवाह के बाद से प्रायः छूट

चुका था। सास कभी भगवद्‌गीता या कोई दूसरी पुस्तक पढ़ाकर सुनतीं परन्तु बहुत कम। घर का काम ही कभी समाप्त न होता। आर्यपुत्री पाठशाला से मिडिल पास कर लेने के बाद उसकी पढ़ाई का उपयोग रह गया था केवल मायके से आये पत्र पढ़ उत्तर लिख देना, या कभी उपन्यास श्री प्रेमचन्द या शरत् बाबू का मिल जाय तो पढ़ डालना। पढ़ने के प्रति या अक्षरों के झरोखे की राह विस्तृत संसार से परिचय बनाये रखने के लिये कोई व्यग्रता उसके मन में न थी। मानो वह दिल बहलावे का एक काम है, जिसे फालतू समय मिलने पर कर लेने में कोई हर्ज़ नहीं। उसका संसार परिमित था, अमरनाथ बाबू के शरीर और उनके घर की व्यवस्था बनाये रखने में। अपने जन्म के बाद से उदय उसकी चिन्ता और विचार का केन्द्र बन गया। हिन्दुस्तानी स्त्री का जीवन इससे परे और है ही क्या? परन्तु इधर अख़बार रोज़ पढ़ना शुरू करने पर वह भी एक आवश्यक चीज़ जान पड़ने लगी। अपने चारों ओर के संसार से वह एक सम्बन्ध अनुभव करने लगी।

उस घटना को प्रायः एक मास बीत चुका था।

तीसरे पहर एक जवान लड़की उसके घर पहुँची। यशोदा स्वयम् भी पुराने ढंग की स्त्री न थी परन्तु यह लड़की थी बिलकुल ही नये ढंग की। पहले ही दर्शन में उसके प्रति यशोदा को कौतूहल और आकर्षण दोनों अनुभव हुए। लड़की की साड़ी खद्दर की थी परन्तु पहनाव बिलकुल नये ढंग का। जम्पर की बाहें कंधे पर ही समाप्त हो गई थीं। हाथ में एक बड़ा-सा बटुआ था जैसा योरुपियन स्त्रियाँ रखती हैं। आरम्भ में दो एक बात करने के बाद लड़की ने पूछा—"आप कांग्रेस की मेम्बर हैं?"

यशोदा ने इनक़ार से सिर हिलाकर कहा—"वो हैं।"

"वाह! आप क्यों कांग्रेस की मेम्बर नहीं बनतीं? क्या सब काम करने का ठेका पुरुषों ने ही ले रखा है? देखिये, आप जैसी पढ़ी-लिखी

स्त्रियों को ही तो कुछ करना चाहिए !"—कहते हुए लड़की ने अपने बटुए से रसीद की कापी निकाली और उसके साथ ही दूसरी दो पुस्तकें। रसीद की कापी खोलते हुए उसने कहा—"कांग्रेस की मेम्बर आप ज़रूर बनिये !"

यशोदा जानती थी—कई स्त्रियाँ कांग्रेस में काम करती है, जुलूसों और सभाओं में जाती हैं। उसका कुछ परिचय न था। कभी परिचय की कोई आवश्यकता भी अनुभव नहीं हुई। इनके प्रति एक सहानुभूति मन में लिये वह चुप थी। सामने पड़ी दोनों पुस्तकों की ओर उसने देखा—एक पुस्तक थी "संसार की स्त्रियाँ" और दूसरी "बन्दी जीवन"। यशोदा ने कहा—"घर के काम से ही फुर्सत नहीं मिलती।" कुछ उग्रता से लड़की ने उत्तर दिया—"वाह आप घर में ही कैद रहेंगी तो फ़ुर्सत मिलेगी कहाँ से ? चूल्हे-चौके और बच्चों के सिवा अपनी भी तो कोई जिन्दगी होनी चाहिये !" लड़की की बातें और उसकी सजीवता यशोदा को भली मालूम हो रही थी। बिना आना-कानी किये ही चवन्नी दे उसने कांग्रेस-मेम्बरी की रसीद ले ली। यशोदा को चुप देख लड़की ने कहा—"आप यों बिलकुल घर में ही क्यों बन्द रहती हैं ? ज़रा मिला-जुला कीजिये। स्त्रियों में कुछ काम कीजिये, आज सोमवार है.......शुक्रवार को आपको फुर्सत होगी ? उस दिन आप हमारे घर आइये। कुछ स्त्रियों से आपका परिचय हो जायगा।.......इसी समय आकर मैं आपको ले जाऊँगी।"

किसी के यहाँ आने-जाने का प्रश्न स्त्रियों के लिये पुरुषों के समान सीधा नहीं होता। इस विषय में वे काफ़ी जिम्मेवारी अनुभव करती हैं। इस अपरिचित जवान लड़की के निमंत्रण की बात से यशोदा ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखने लगी। उसके साफ़ गंदमी कुछ लम्बे चेहरे पर कौमार्य की कोमलता और अनुभवहीनता मौजूद थी परन्तु उसके हाव-भाव और बोलने के ढंग में एक आत्मीयता सूचक आग्रह था। उसकी

बड़ी-बड़ी आँखों में आत्मविश्वास झलक रहा था। उसके रूप में तड़प पैदा कर देनेवाला सौन्दर्य नहीं परन्तु स्मृति में स्थिर रह जाने वाला आकर्षण था। निसंकोच का अर्थ कहाँ निर्भय और कहाँ निर्लज्जता हो जाता है, इसे पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक समझती हैं। पुरुष प्रायः तर्क करता है परन्तु स्त्री अनुभूति द्वारा परिणाम पर पहुँच जाती है। यशोदा को कुछ पूछने की आवश्यकता अनुभव न हुई। लड़की ने स्वयम ही अपना परिचय दिया :—

"मेरा नाम शैलबाला है। हमारा मकान निस्बत रोड पर है। मैं एम० ए० में पढ़ती हूँ। पिताजी का नाम—शायद आपने सुना होगा—लाला ध्यानचन्द जी! मैं चाहती हूँ—हम स्त्रियाँ भी कुछ करें।" दोनो पुस्तकों की ओर संकेत कर उसने पूछा—"आप इन्हे पढ़ेंगी?" यशोदा के सिर झुकाकर अनुमति प्रकट करने पर शैलबाला अपना बटुआ सँभाल चलने को तैयार हुई। जैसे काम-काजी आदमी की तरह वह अपना काम समाप्त कर चुकी, अब उसे चलना चाहिये।

उस आधे घण्टे में मुख से बिना विशेष कुछ कहे ही यशोदा को उस जवान लड़की के प्रति एक आत्मीयता अनुभव होने लगी। मानो मायके की कोई पुरानी सहेली, जिसकी वह चिरकाल से प्रतीक्षा कर रही, आई हो। शैलबाला को हाथ से पकड़ यशोदा ऊपर ले गई और बड़े आग्रह से कुछ खाने के लिये अनुरोध किया।

यशोदा शैलबाला को नीचे दरवाज़े तक छोड़ने के लिये गई। उसी समय अमरनाथ बाबू बाहर से लौट आये। शैलबाला के स्वयम मोटर चलाकर चले जाने तक यशोदा ममता से उसी की ओर देखती रही। उसके चले जाने पर, अमरनाथ ने पूछा—"यह यहाँ कैसे?"

"शैल है!"—यशोदा ने उत्तर दिया। मानो शैलबाला का उसके यहाँ आना नई बात न थी, पति ने उसे पहचाना क्यों नहीं? अमरनाथ ने फिर भी कहा—"हाँ, पर तुम उसे कैसे जानती हो?"

संतोष के भाव से सिर का आँचल सँभालते हुए यशोदा ने कहा—"बड़ी भली है, ऊपर चलो न!" यशोदा ऊपर चली गई।

उन दोनों पुस्तकों को यशोदा ने एकांत में विशेष ध्यान से पढ़ा। पति से उनके बारे में उसने कोई जिक्र नहीं किया। पति से छिपाकर कुछ करने का विचार न था, केवल यह समझ कर कि वह उसकी अपनी ही बात है; वैसे ही जैसे नारी जीवन की दिनचर्या में अनेक बातें ऐसी रहती हैं, जिनका पति या दूसरे पुरुषों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

इन पुस्तकों को पढ़ एक नई भावना उसके मन में उठने लगी। गति की एक इच्छा और उत्साह मन में अनुभव होने लगा परन्तु उसके लिये मार्ग न था। बोलती वह पहले भी बहुत कम थी। सिलाई-बुनाई या घर का कोई काम-काज करते समय यदि वह कभी कुछ सोचती तो घर के शिथिल बोझ की बाबत ही। अब उसकी अनुभूति दूसरी थी। उस बोझ की बात भूल, वह गति का आकर्षण अनुभव करने लगी। उसकी दृष्टि अब अमरनाथ बाबू, उदय, रसोई और असबाब की कोठरी में ही सीमित न रही। उसे दिखाई देने लगा—घर की चारदिवारी के बाहर भी एक संसार है, जहाँ शैल रहती है। वहाँ कितने ही जरूरी काम हैं। व्यग्रता से वह शैलबाला की प्रतीक्षा कर रही थी। वही उसकी एकमात्र अंतरंग थी, जो उसकी बात जानती थी। और उसके अप्रकट जीवन में, गहरी छाया में था वह युवक; अंधेरी कोठरी में रात बिता, नौकर के कपड़े पहन, खाली कनस्तर बजाते हुए सड़क पर चला जानेवाला।

शुक्रवार के दिन जब शैलबाला उसे अपने साथ गाड़ी में बैठा खुद गाड़ी चलाती हुई अपने घर ले जा रही थी, यशोदा को अनुभव हुआ—वह नये संसार की ओर जा रही है; जैसे विवाह के बाद सुसराल के लिये बिदा होते समय हुआ था। उस समय घटना और अवसर की तीव्रता से उसकी संज्ञा और चेतना बहुत कुछ जड़ हो गई थी; आज वह

पर्याप्त सचेत थी। संतोष का एक शिथिल रोमांच उसे अनुभव हो रहा था। वह एक सूक्ष्म जगत की ओर जा रही थी। शैलबाला के मकान पर पहुँच कर भी मकान के आकार और ठाट-बाट की ओर उसकी दृष्टि न गई। वह देख रही थी केवल शैलबाला की निःसंकोच स्फूर्ति को।

ड्राइङ्गरूम में एक नौजवान प्रतीक्षा कर रहा था। शैलबाला ने वे दोनो पुस्तकें यशोदा से ले उस नौजवान को दे दीं और कमरे के एक कोने की ओर नौजवान को ले जा धीमे स्वर में कुछ कह दिया और फिर यशोदा को सम्बोधन कर भीतर के दरवाज़े की ओर चलने के लिये कहा। एक बरामदे से होकर वह उसे भीतर दूसरे कमरे में ले गई। यहाँ आराम कुर्सी पर बैठा दूसरा नौजवान, सामने एक छोटी तिपाई पर बहुत से कागज़ रख, जल्दी-जल्दी कुछ लिख रहा था। इन लोगों के पैरों की आहट पा, अपना क़लम रोक उसने तीव्र दृष्टि से दरवाज़े की ओर देखा और सहसा मुँह का सिगरेट हाथ में ले खड़े हो उसने कहा—"आइये!" समीप की दूसरी आराम कुर्सी को खींच उसने यशोदा को बैठने के लिये संकेत किया।

कभी किसी पर पुरुष के समीप यों बैठने का अवसर यशोदा के लिये नहीं आया परन्तु उस ओर यशोदा का ध्यान न गया। वह विस्मय से देख रही थी—"क्या वही नहीं?"

यशोदा पहचान न सकी परन्तु सन्देह था। उसके सिर पर केश थे और चेहरे पर हलकी दाढ़ी मूँछ। यह नौजवान बिलकुल साहब, सूट, कॉलर, नेकटाई से दुरुस्त था, यशोदा की ओर ध्यान न दे शैलबाला के कंधे पर हाथ रख युवक ने कहा—सुनो! और उसे बाहर बरामदे में लेजा, आधे मिनट बाद वह लौट आया। अबकी दफ़े तिपाई पर बिखरे हुए कगज़ों को समेटते हुए मुसकरा कर विनीत स्वर में युवक ने पूछा—"आप कैसी हैं?" यशोदा को सन्देह न रहा। संतोष का निश्वास ले, उसने उत्तर में प्रश्न किया—"अब तो कोई डर नहीं न?"

"डर तो सदा ही है। जब उसे स्वयम् निमन्त्रण देते हैं तो फिर उसकी शिकायत क्या ?............हाँ, पर उस रात जैसा नहीं! वह डर नहीं.......वह तो मौत थी.......आपने शरण दे बचा लिया।"—युवक ने मुस्कराकर उत्तर दिया। यशोदा का हृदय उसकी बात से पिघल गया। उस रात का दृश्य उसकी स्मृति में फिर गया। वह चुपचाप फर्श की ओर देखती रही।

युवक ने फिर पूछा—"उस रोज़ की बात आपने घर में कही थी?" यशोदा के सिर हिला इनक़ार कर देने पर उसने कहा—"ज़रूरत भी क्या है, न कहिये। पति परमेश्वर ज़रूर है परन्तु और भी बीसियों परमेश्वर हैं। प्रत्येक को अपने-अपने स्थान पर रहने देना ही ठीक है। यहाँ शैल या किसी दूसरे व्यक्ति को यह मालूम नहीं कि उस रात मैंने आपके यहाँ शरण ली थी। बताने की ज़रूरत भी नहीं। आपका नाम या पता भी केवल शैल ही जानती है। आज आप को अपनी इच्छा से मैंने यहाँ बुला भेजा है। आगे आपकी इच्छा पर निर्भर रहेगा। हमें आप की सहायता की ज़रूरत है परन्तु हम ज़बरदस्ती नहीं कर सकते। आपके प्रति अपनी वैयक्तिक कृतज्ञता और श्रद्धा के कारण ही आपको इस संकट में या कहिये सम्मान में घसीटने का मोह मुझे होता है। यह आवश्यक नहीं कि आप भी हम लोगों की तरह बम और पिस्तौल बाँधे फिरें और भिटों में छिप-छिपकर अपना जीवन बितायें। हम लोग तो खास परिस्थितियों की वजह से इस प्रकार रहने के लिये मजबूर हैं। आप शैल के साथ काम कीजिये। वह अभी लड़की है। यदि आप काम सँभालें, हमें अधिक सहायता मिल सकती है। मुझे यहाँ सब लोग हरीश कहते हैं।"

दरवाज़े की ओर देखकर हरीश ने पुकारा—"शैल!"

शैल भीतर से पुकार आने की प्रतीक्षा में ही थी। ऊँची एड़ी के जूते की खट-खट सुनाई दी और शैल मुस्कराती हुई भीतर आगई।

बैठने के लिये तीसरी कुर्सी न थी। बिना किसी संकोच के हरीश की कुर्सी की बाँह पर बैठने के प्रयत्न में फिसल कर वह हरीश की गोद में जा पहुँची। उलझन के स्वर में हरीश ने कहा—"क्या जानवर है" और तिपाई की ओर संकेत कर कहा—"वहाँ बैठो !"

"हमारे लिये तो कहीं जगह नहीं।"—शैल ने उपालम्भ से कहा और उठकर तिपाई पर जा बैठी। इस असाधारण व्यवहार से, जिसे साधारणतः अभद्रता कहा जा सकता था, न जाने क्यों यशोदा को घृणा न हुई। वह केवल मुस्करा कर रह गई, मानो वह केवल निर्दोष परिहास मात्र था।

हरीश यशोदा को सम्बोधन कर बोला—"अब तो आप सब कुछ समझ गई हैं। "बन्दी जीवन" आप ने पढ़ा है। वे पिछली बातें हैं परन्तु वे ही बातें आज नये रूप में मौजूद हैं। व्यक्ति, जाति या देश के रूप में हम जीवित रहना चाहते हैं। उसके लिये सबसे पहले ज़रूरत है इस अधिकार की कि जीवन निर्वाह के साधनों पर हमें अधिकार हो। अपनी शक्ति के उपयोग और विकास का हमें अवसर हो। तभी हम मनुष्य की तरह जीवन बिता सकते हैं। यह अधिकार और अवसर आज दिन हमें नहीं है न व्यक्तिगत तौर से, न देश की प्रजा के रूप में। अपने चारों ओर जनता के जीवन में जो संकट हम प्रतिदिन देखते हैं, उसका कारण है—अवसर न मिलने के कारण हमारी शक्ति और योग्यता किसी काम नहीं आ पाती। जब किसी राष्ट्र का शोषण दूसरे राष्ट्र के लिये किया जा रहा हो तो उस देश की प्रजा के लिये अवसर कहाँ से हो ? हम लोग जीवित हैं जानवरों की तरह, जिनके जीवन का व्यवहार दूसरों के उपयोग के लिये होता है। इसी अवस्था को हमें दूर करना है। यदि यह चेतना देश भर में फैला सकें तभी हमारा उद्देश्य सफल हो सकता है। ऐसे आदमी चाहे जहाँ हों, कांग्रेस में या दूसरी जगह, वे सब हमारी श्रृंखला होंगे।"

"पर भैया, दादा और बी० एम० तो कहते हैं, कांग्रेस निरी वाहियाती है। हमें इस प्रकार के लोगों से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये। उससे भेद खुलकर सिवा संकट के और लाभ नहीं ?"—शैल ने ठोड़ी के नीचे हाथ रख पूछा।

"दादा या बी० एम० क्या कहते हैं, यह मुझे मालूम है, परन्तु मेरी या तुम्हारी खोपड़ी में भी तो दिमाग है। हाथ में पिस्तौल आगया है, इसलिये किसी न किसी को मारना ही चाहिये.......उससे, बनता क्या है ?"—खीझ कर हरीश ने उत्तर दिया।

शैल फिर बोली—"बी० एम० कहते हैं, तुम्हारे तरीक़े से जनता की प्रवृत्ति पार्टी के काम की ओर न होकर कांग्रेस के व्यर्थ दिखावटी आन्दोलन की ओर हो जाती है।"

"कांग्रेस का अन्दोलन व्यर्थ हो रहा है परन्तु जनता तो उसे व्यर्थ नहीं बनाना चाहती, न उसे वह व्यर्थ समझती है। यह तो हमारा दुर्भाग्य है कि उसका नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथ में चला गया है, तुम्हीं बताओ"—हरीश ने आगे बढ़कर पूछा—"गुप्त पार्टी बना अपनी शक्ति को दस पाँच आदमियों में संकुचित कर देने से हम क्या कर सकेंगे ?"

शैल ने कंधे पर साड़ी का आँचल खींचते हुए कहा—"तुम कहते हो अपना क्षेत्र बढ़ाओ। वे लोग कहते हैं,—लोगों से मिलो-जुलो मत ! वर्ना हमारे काम के न रहोगे !"

हरीश कुछ उत्तर न दे दीवार की ओर देखता हुआ सोचने लगा। यशोदा कभी शैल की ओर और कभी हरीश की ओर देखती। वह इस बहस को समझने की चेष्टा कर रही थी। हरीश की ओर देख शैल ने पूछा—"चाय लाऊँ, कुछ खाओगे भी ?"—सिर ऊपर उठाये बिना ही हरीश ने कहा—"हूँ, ज़रूर।"

शैल के कमरे के बाहर चले जाने पर हरीश ने यशोदा की ओर देख कर कहा—"यह काम ही ऐसा है। इसमें सभी का मोह छोड़ना पड़ता

है। सगे सम्बन्धियों की तो बात क्या, अपने साथियों तक का मोह छोड़ना पड़ेगा।" और फिर प्रसंग बदलने के लिये मुस्कराकर उसने कहा—"है तो मामूली सी बात; परन्तु मैं कह आया था न आपसे कि आपकी चीज़ें लौटा दूँगा। वे कपड़े तो जाने कहाँ गये, परन्तु आप के यह रुपये..."—उसने अठारह रुपये निकाल यशोदा के सामने रख दिये। यशोदा को लज्जा से आँखें झुकाते देख उसने कहा—"न सही, लेकिन आप हमारा काम तो करेंगी न? वर्ना मैं आप के कर्ज़े के बोझ को लिये ही मर जाऊँगा!"—यशोदा को स्वयम कुछ न बोलते देख उसने कहा—"आप स्त्रियों में अपना क्षेत्र बनाइये। जो चीज़ स्त्रियों में घर कर जाती है, उसका विरोध कोई शक्ति नहीं कर सकती।" शैलबाला एक बड़ीसी ट्रे में चाय और खाने का सामान लिये लौट आई। ट्रे को तिपाई पर रख वह हरीश के पैरों के समीप नमदे पर ही बैठ गई। अपनी कुर्सी पर सरकते हुए यशोदा ने कहा—"यहाँ आइये न!" मुख से कुछ न कह शैल ने हाथ के संकेत से उसे ऐसा करने से रोका मानो वह बहुत मज़े में है।

शैलबाला को प्यालों में चाय डालते और अंडें छीलते देख यशोदा ने कहा—"अच्छा, मुझे आज्ञा दीजिये!"

हरीश ने पूछा—"क्या एक प्याला चाय भी न पीजियेगा?"

उसकी ओर देख शैल बोली—"शायद आप इन सब चीज़ों से परहेज़ करती हैं?"—टोक कर हरीश ने कहा—"तो इनके लिये अलग से चाय मँगवा दो न!" यशोदा वास्तव में ही उन वस्तुओं से परहेज़ करती थी। परतु उसके लिये अलग से चाय मँगवाने का अर्थ था, वह उन लोगों से भिन्न है। भिन्नता का यह भाव उसे अच्छा न लगा। उसने उत्तर दिया—"नहीं अलग से लाने की कोई ज़रूरत नहीं। चाय मैं यों भी नहीं पीती और अच्छा हो यदि मैं जल्दी ही घर पहुँच जाऊँ!"

हरीश ने शैल को आदेश दिया—"जाओ इन्हें छोड़ आओ !"

चाय का प्याला ओठों से लगाते हुए बोली—"ड्राइवर न छोड़ आयेगा ?"

सिर हिला इनकार करते हुए हरीश ने कहा—"नहीं, तुम स्वयम् जाओ। मैं अभी एक घण्टे तक यहीं हूँ।"—शैल यशोदा को घर पहुँचा आने के लिये उठ खड़ी हुई।

यशोदा सोच रही थी, यह अभिमानिनी और सतेज लड़की किस प्रकार उस नौजवान की आज्ञा पर नाचती है और सम्भव है, कल उसे भी इसी प्रकार उसके हुकुम पर दौड़ना पड़े।

यशोदा को घर छोड़ जिस समय शैलबाला लौटी, हरीश अपने चेहरे को दोनों हाथों में थामे चिंतामग्न बैठा था। उसे देख उसने कहा—"शैल मैं जा रहा हूँ।"

"कहाँ, कहीं बाहर ?"

"यही बी० एम० की चिट्ठी जो तुमने मुझे दी है·······मुझे जाना होगा।"—शैल की ओर देख उसने उत्तर दिया।

"परन्तु सफ़र करना तुम्हारे लिये कितना ख़तरनाक है ? यदि वे लोग तुमसे मिलना चाहते हैं तो वे ही यहाँ क्यों नहीं आ जाते ? क्या उनकी जान तुमसे भी अधिक ख़तरे में है ?"—उसके कण्ठ की आर्द्रता बढ़ती जा रही थी—"मैं तो कहती हूँ तुम न जाओ !" साड़ी की खूँट से धागे खींचते हुए उसने कहा।

आश्चर्य से उसकी ओर देख हरीश ने पूछा—"क्या कह रही हो ?·······पार्टी की आज्ञा न मानूँ ?·······दादा ने बुलाया है !" शैल अनुभव कर रही थी पार्टी के मेम्बर के नाते जितनी चिन्ता उसे हरीश की करनी चाहिए, उससे अधिक उसके शब्दों से प्रकट हो रही है। मानो, साधारण औचित्य की सीमा वह लाँघ गई। और अब भी, जितना वह चाहती थी. कह नहीं पाई। साड़ी के छोर से वह उसी

प्रकार धागे खींच रही थी। होंठ काटकर उसने कहा—"कोई ग़लत आज्ञा दे दे तो फिर ?.......हो सकता है आज्ञा दादा की न हो।"—कुछ थमकर उसने कहा—"बी० एम० की बातों से मुझे संदेह होता है। मैं कहना नहीं चाहती थी लेकिन.......वह तुम्हारी बाबत कह रहा था—तुम यहाँ क्यों टिके हुए हो ? तुमसे मिलने से भी उसने मुझे मना किया था। मैंने कहा—"मेरे लिये तो सब एकसे हैं।.......मुझे उसका व्यवहार ठीक नहीं मालूम हुआ.......मेरा ख़्याल है, वह तुमसे ईर्षा करता है। कह रहा था—हरीश का काम अब केवल सिगरेट पीना, लम्बी-लम्बी बातें करना और लड़कियों की पार्टी बनाना रह गया है।"

दाँत से अँगूठा काटते हुए हरीश कुछ देर सिर झुकाये रहा। फिर उसने पूछा—"तुम्हें उसका क्या व्यवहार ठीक नहीं लगा ?" सिर झुका शैल ने उत्तर दिया—"ऐसे ही......."

"ऐसे ही क्या ?.......बोलती क्यों नहीं ?"—झुँझलाकर हरीश ने पूछा।

"तुम तो काटने को आते हो.......अब ख़ास क्या बताऊँ ? पुरुष तो चाहते हैं, स्त्री को निगल जायँ।"

"क्या मैं भी यही चाहता हूँ"—हरीश ने आँखें निकालकर पूछा।

"अपनी बाबत तुम स्वयं नहीं जानते, क्या चाहते हो.......? मुझसे क्यों पूछते हो ?"—उसकी आँखों में मुस्कराहट से देखते हुए शैल ने उत्तर दिया।

"लेकिन बी० एम० से तो तुम्हारा परिचय पुराना है। यदि तुम्हारे यहाँ मेरे आने से झंझट होता है, मैं न आऊँगा। सिर छिपाने को कोई दूसरी जगह मिल जायगी।"—हरीश चुप-चाप सोचने लगा।

गम्भीर हो शैल ने कहा—"क्या मुझे बी० एम० की आज्ञानुसार ही चलना चाहिये ? स्वयं मेरी अपनी समझ कुछ नहीं ?"

यह तुम किस झंझट में पड़ रही हो शैल ?"—हरीश ने क्लान्त

स्वर में पूछा—"क्या तुम्हारा लड़की होना ही सब संकट का कारण है। और तुम्हारे विवाह की बात चल रही थी, उसका क्या हुआ ?"

"तुम सोचते हो इसका विवाह हो जाय और संकट कट जाय।" शैल ने उपालम्भ के स्वर में कहा। परन्तु अपनी बात से स्वयम ही सहम कर बात बदलने के लिये बोली—"तुम्हारा भी ख़याल है न, स्त्री को किसी न किसी व्यक्ति की सम्पत्ति बन ही जाना चाहिये और पुरुष उदारता से एक दूसरे को अपनी-अपनी सम्पत्ति की स्त्री पर पूर्ण अधिकार भोगने का अवसर देते रहें! बी० एम० भी तो मुझे यही सुनाता है—"हो रहो किसी के या कर लो किसी को अपना"—तुम्हीं बताओ, किसी की हो रहने या किसी को अपना बना लेने का मतलब क्या ? "किसी को अपना बना लेने का मतलब भी तो किसी की हो जाना ही है' जहाँ स्त्री का अपना कुछ शेष नहीं रह जाता। यदि स्त्री को किसी न किसी की बनकर ही रहना है तो उसकी स्वतंत्रता का अर्थ ही क्या हुआ ? स्वतंत्रता शायद इसी बात की है कि स्त्री एक दफे अपना मालिक चुनले परन्तु ग़ुलाम उसे ज़रुर बनना है।"

कुर्सी पर करवट लेते हुए हरीश ने पूछा—"क्यों, पति का अर्थ मालिक न होकर साथी भी तो हो सकता है ?"

"खाक़ हो सकता है। जब स्त्री को एक आदमी से बँध जाना है और सामाजिक अवस्थाओं के अनुसार उसके आधीन रहना है, उस पर निर्भर करना है ; उस सम्बन्ध को चाहे जो नाम दिया जाय, वह है स्त्री की ग़ुलामी ही ! अच्छा, साथी तो एक व्यक्ति के कई हो सकते हैं !..........स्त्री के कई पति होना तुम्हें सहन हो सकता है ?"—शैल ने पूछा।

हरीश ने हँसकर उत्तर दिया—"मुझे तो सहन करना नहीं, जिसे सहन करना हो, वही फ़िक्र करे !"

मुँह बनाकर शैल बोली—"यही तो बात है। पुरुष कभी स्त्री के

दृष्टिकोण से समस्या को देख नहीं सकता। स्त्री की सबसे बड़ी मुसीबत तो यह है कि उसे सन्तान पैदा करनी है। इसलिये पुरुष ज़मीन के टुकड़े की तरह उस पर मिल्कीयत जमाने के लिये व्याकुल रहता है।"

उसे और अधिक खिझाने के लिये उपेक्षा से हरीश ने कहा—"जिसे अपने वंश की रक्षा की चिन्ता हो, इन झगड़ों में पड़े। यारों को तो इन सब बातों से छुट्टी है।"

"सन्तान और वंश रक्षा के इलावा और भी बहुत कुछ जीवन में है"—शैलबाला ने दूसरी ओर मुख फिराकर कहा। हरीश ने बिना झिझके उत्तर दिया—"परन्तु वह तो स्त्री पुरुष दोनों के लिये समान है।" "है तो, परन्तु स्त्री कमबख़्त को तो तुरन्त सजा जो मिल जाती है।"—कहने को शैल सहसा कह गई परन्तु संस्कार के संकोच ने उसे आ दबाया। उस ओर से हरीश का ध्यान बदलने के लिये तुरन्त ही उसने पूछा—"अभी तो तुम्हें जाने में देर है न?"

"है तो, परन्तु यहाँ ऐसे मैं कितनी देर ठहर सकता हूँ? तुम्हारे घर के लोग ही क्या कहेंगे? यों तो मुझे रात में दो बजे की गाड़ी पकड़नी है।"—अनिच्छा से उठने की तैयारी करते हुए हरीश ने कहा।

अपनी कलाई की घड़ी की ओर देख, शैल बोली "अभी तो साढ़े आठ बज रहे हैं। दो बजे रात तक इस सर्दी में कहाँ भटकते फिरोगे;..........यह ठीक नहीं। चलो तुम खाना खालो, फिर तुम्हें दरवाज़े तक छोड़ आऊँगी। पिताजी से नमस्ते कहते जाना। इधर मैं गैराज (मोटरखाने) का दरवाज़ा खोल दूँगी। उधर से तुम ऊपर आ जाना। गाड़ी के समय तुम जा सकते हो।"

हरीश विस्मय से उसकी ओर देखने लगा। सिर झुकाकर शैल ने कहा—"तुम अपनी अवस्था नहीं समझते, क़दम-क़दम पर तुम्हारे लिये कितना भय है?"

"और तुम्हारे लिये नहीं?"—हरीश ने पूछा।

"मेरा क्या है; बहुत होगा, दो बातें और सुन लूँगी। जहाँ इतना सुनती हूँ, वहाँ थोड़ा और सही। आओ उठो, खाने के कमरे में आओ, वहाँ पिता जी के सिवा इस समय और कोई न होगा। क्या है, एक दफ़े फिर इंजीनियर बन जाना।.......क्या है तुम्हारी उस फर्म का नाम?.......जिरेमी एण्ड जान्सन?.......जानते हो उस रोज़ बुआ जी क्या कह रहीं थीं?.......बड़ा सुशील लड़का है। मैंने सोचा,— मालूम होजाय कैसा सुशील है, तो अभी प्राण निकल जायँ।"— शैल ने कहा।

हरीश हँस दिया—"तो मैं बुआजी को पसन्द हूँ? बुआजी मुझसे तुम्हारा विवाह कर देंगी क्यों?"

"हाँ, ऐसे ही तुम सुन्दर हो न?.......उठो, यहाँ छिपे बैठे हो। नौकर या दूसरे लोग क्या कहेंगे?" शैल ने हरीश के कंधे पर बोझ देकर कहा।

हरीश एक नई बात अपने शरीर और मस्तिष्क में अनुभव कर रहा था। एक क्रान्तिकारी का जीवन ग्रहण करने के बाद स्त्री को उसने अपने मार्ग से परे की वस्तु समझा था। इधर अनेक बार शैल के समीप आने पर उसने उसे भी युवती न समझ केवल पार्टी का सहायक सदस्य ही समझा था। जो केवल रूप और वेश में उसके दूसरे साथियों से भिन्न है। परन्तु आज बार-बार उसका मन उसे सचेत कर रहा था— वह युवती है, जीवन की मृदुता, सहृदयता और तुष्टि का स्रोत लिये तू क्या उसे नहीं पहचानता। उसका मन कह रहा था—तू केवल क्रान्ति की मैशीन ही नहीं, मनुष्य है।

भोजन के कमरे में शैल के पिता मेज़ पर अकेले बैठे थे। कमरे में प्रवेश कर शैल बोली—"पिता जी मि० शुक्ला चले जा रहे थे।" मैंने कहा—"पिताजी से मिले बिना क्यों जा रहे हो? खाना भी खा जाओ, समय तो हो ही गया है।"

'आओ, आओ !"—वात्सल्य और आदर से पिता ने पुकारा—'तुमतो उसी फर्म में हो न वो·······।"

"जी हाँ, जिरेमी एण्ड जानसन !"

"तुम्हारी कम्पनी के बैंकर कौन हैं; सेन्ट्रल बैंक ?"

"जी नहीं, इम्पीरियल और लायड्ज़। देशी बैंकों से यह कम्पनियाँ वास्ता कहाँ रखती हैं। अभी हमारी शाखायें इधर कम हैं। यू० पी०, सी० पी० और बम्बई में ही हमारा काम अधिक है।" ला० ध्यानचन्द जी को प्रश्न का अवसर न देने के लिये हरीश स्वयम् ही सब कुछ कह गया। विलायती कम्पनिय किस प्रकार देश के व्यापार को समेटे जा रही हैं, इसी बात की चर्चा में भोजन समाप्त हो गया।

हरीश को दरवाज़े से बाहर पहुँचा शैल तुरंत गैराज में गई। हरीश आ पहुँचा था कि बुआजी ने अपने कमरे से शैल को किसी दवाई की गोलियों के लिये पुकार लिया। हरीश को चुपचाप मोटर में ही बैठ जाने का संकेत कर वह ऊपर चली गई। प्रायः बीस मिनट तक बुआजी को दवाई दे और उनसे बात कर, अपने कमरे की बिजली बुझा, उसमें ज़ीरो पावर की नीली बत्ती जलाने के बाद, शनैः-शनैः सीढ़ियाँ उतर वह हरीश को अपने कमरे में ले गई।

क़ायदे से लगे पलंग की ओर संकेत कर उसने हरीश को लेट जाने के लिये कहा और स्वयम् समीप पड़ी सोफ़ा कुर्सी पर बैठ गई। उसके समीप आ हरीश ने कहा—"मैं तुम्हारी नींद ख़राब करने नहीं आया हूँ। तुम सो जाओ, मुझे तो जाना ही है, यदि सो गया और नींद न खुली?"

"मैं जो जागती रहूँगी?"—शैल ने उत्तर दिया।

"तुम्हें जागने का अभ्यास कहाँ?"

"तुम्हें क्या मालूम; कितनी रातें जागते मैंने इस कमरे में काट दी हैं, उस टाइमपीस की ओर देख-देखकर?"

"क्या प्रेम साधना में?"

"हो सकता है·······एक साधना का मार्ग तुमने देखा है, दूसरी का मैंने देखा हो। उन बातों की याद न दिलाओ। तुम लेटते क्यों नहीं ?"

शैल के स्वर में ममता और अधिकार का पुट अनुभव कर उसकी सोफ़ा कुर्सी की बाँह पर बैठ हरीश ने पूछा—"मैं यहाँ तुम्हारे पास बैठ सकता हूँ ?" शैल ने एक ओर खिसक उसके लिये स्थान कर दिया।

कुछ देर दोनों चुप बैठे रहे, बिलकुल मौन। परिधान की मेज़ (Dressing Table) पर पड़ी टाइमपीस की ओर देख हरीश ने पूछा—"घड़ी क्या बन्द है ?"

"नहीं तो, वह चलती है परन्तु बोलती नहीं, स्त्रियों की तरह !"—होंठ दबाकर शैल हँस दी।

हरीश ने सिर झुकाकर कुछ शंकित स्वर में कहा—"तुम्हारे ढंग से मालूम होता है, तुम दुःख का कोई गहरा बोझ मन पर लिये हो। उसी को छिपाने के लिये तुम सदा बाहर से हँसते रहने की कोशिश करती हो, बेपरवाही दिखाती हो, तुम्हारे व्यवहार में जो असाधारणता है, शायद उसी की वजह से तुम्हारी इतनी आलोचना होती है। लोग समझते हैं तुम समाज पर प्रहार करती हो परन्तु मुझे जान पड़ता है, तुम स्वयम् पीड़ित हो। विस्मय मुझे यह होता है कि तुम क्रान्ति के संकट को भी सिर पर लेती हो और भावुकता के संसार में—प्रेम-जगत के स्वप्न भी देखती हो। मेरी अपनी अवस्था तो तुम जानती हो, प्रेम और स्वप्न के संसार की रचना करना मेरे भाग्य में नहीं। परन्तु एक साथी के नाते यदि मैं तुम्हारे दुःख की अनुभूति को बँटाना चाहूँ······· इससे मैं तुम्हारा कुछ भला नहीं कर सकूँगा परन्तु तुमने मेरे लिये इतना कुछ किया है कि तुम्हारे बिलकुल निकट आ तुम्हारे हृदय में झाँकने की प्रवृत्ति होती है। मेरा जीवन तुम जानती हो बहुत संक्षिप्त-सा होगा ; लेकिन जीवन की चाह मेरे हृदय में भी है और शायद ; क्योंकि उसके

लिये समय बहुत कम है—वह कभी-कभी अत्यन्त तीव्र और विकट रूप में उठकर रह जाती है। मेरे जीवन में तृप्ति केवल दूसरों की तृप्ति के अनुभव से हो सकती है। यही चीज़ अगर मैं तुमसे माँगूँ तो क्या बहुत अधिक होगा? तुम जानती हो मेरा जीवन एक बन्द पात्र के समान है जिसे एक दिन, बन्द ही, नदी में बहा दिया जायगा.......।"

"बस रहने दो!"—शैल ने टोककर कहा—"ऐसी बातें नहीं कहते। देखो सर्दी अधिक है। तुम्हें कहीं कुछ हो जायगा तो और विकट होगा।"

शैल की इस ममता ने हरीश के साहस को और बढ़ा दिया। आग्रह से उसने कहा—"वह फ़िक्र तुम रहने दो। मुझे कुछ न होगा। तुम बात कहो।"

हथेली पर ठोड़ी रख शैल ने पूछा—"उससे लाभ? या तो तुम मुझे बेवकूफ़ समझोगे या घृणा करने लगोगे। तुम्हारी सहानुभूति से भी मैं हाथ धो बैठूँगी।"

"मेरी सहानुभूति का भी कुछ मूल्य है तुम्हारी दृष्टि में?" धुँधले प्रकाश में उसकी ओर देख हरीश ने पूछा—"तो फिर जितना अधिक तुम्हें जान पाऊँगा, उतनी ही अधिक वह होगी।"

"तुम्हें क्या लाभ होगा?"

"जान पाना भी एक लाभ है। दूसरों के अनुभव जान लेना भी एक अनुभव है।"

"दूसरे लोग क्या अनुभव करते हैं, मैं नहीं जानती"—शैल ने कहना आरम्भ किया—"परन्तु मेरे तो होश सँभालने के दिन से ही जीवन में प्रेम रहा है और शायद जीवन रहते उससे छुटकारा भी न होगा। जब छोटी थी, अपने सामर्थ्य के अनुसार प्रेम करती थी। समझ आने पर प्रेम का क्षेत्र भी बढ़ा। अर्थात् प्रेम को अधिक देने और उससे अधिक पाने की इच्छा होने लगी। जब वह पूरी नहीं हो पाती,

निराशा और क्लेश होने लगता है। असफल हो मुँह के बल गिरने पर, अपमानित होने पर मर जाने की इच्छा भी होने लगती है। कुछ व्यक्ति प्रेम में निराश हो मर भी जाते हैं परन्तु मैं मर नहीं सकी। आगे के लिये सोचती हूँ, आशा को इतना ऊँचा उठाऊँगी ही नहीं कि गिरने पर मृत्यु का भय हो। पर अपने को बेबस पाती हूँ।" हरीश की आस्तीन के बटन को खींचती हुई शैलबाला कह रही थी। उसे चुप होते देख हरीश ने पूछा—"यह तो भविष्य की बात है। मैं तो बीती पूछ रहा हूँ।'.

उसकी बाँह पर हाथ रख उसकी आँखों में झाँक शैल ने पूछा—"तुम क्यों पूछ रहे हो? यह सब तो वे लोग पूछते हैं, जिन्हें यह निश्चय करना होता है कि मैं उनके योग्य हूँ या नहीं? तुम्हारे सामने तो मुझे स्वीकार-अस्वीकार करने का सवाल है नहीं।"

दबी मुस्कराहट से हरीश ने उत्तर दिया—"इसीलिये तो तुम मुझसे निसंकोच कह सकती हो। अपनी आवश्यकता के अनुसार मुझे तुम्हारा मूल्य निश्चित नहीं करना, समाज के एक व्यक्ति के नाते तुम क्या हो, यही मैं देख सकता हूँ। तुम्हारे व्यक्तित्व के रूप में, जो देखने में खुशहाल है, समाज कितनी गुप्त यंत्रणा भोग रहा है, यह मैं जानना चाहता हूँ। यदि मैं समाज की अवस्था जानना चाहता हूँ तो उसकी नब्ज़ से या ख़ुर्दबीन के सहारे तो ऐसा कर नहीं सकता। समाज के अनुभव से ही हमें समाज का ज्ञान हो सकता है। यह मेरा विशेष सौभाग्य है कि मुझे तुम्हारे इतने निकट आने का अवसर मिला है। यदि स्पष्ट रूप से कहूँ तो मुझे तुम्हारे सुख-दुख से एक सम्बन्ध अनुभव होता है।........चुप क्यों हो, दस बज चुके हैं........केवल चार घण्टे मैं यहाँ हूँ........आशा नहीं, ऐसी आन्तरिकता अनुभव करने का समय जीवन में फिर कभी आयेगा। बोलो........।"

अच्छा सुनो!" शैल ने कहा—"उस समय मेरी आयु बारह-तेरह

बरस की रही होगी, मैं छठी-सातवीं श्रेणी में पढ़ती थी। हमारे पड़ोस में एक लड़का रहता था, देखने में बहुत सुन्दर था। उसने एक पत्र लिख मुझे स्कूल जाते समय दे दिया। ऐसे पत्र मिलने पर लड़कियाँ नाराज़ हुआ करती हैं परन्तु मैं समझ न सकी, यदि मैं किसी की दृष्टि में भली जँचती हूँ, कोई मुझे चाहता है तो उसे क्रोध क्यों दिखाऊँ ? उसने कई पत्र लिखे। उसके पत्र पढ़ने से सुख होता था। तुम्हीं बताओ चौदह-पन्द्रह बरस का लड़का क्या पत्र लिखेगा ? परन्तु उसके पत्र लिखने का अर्थ, वह मुझे प्यार करता है, और परस्पर पत्र लिखकर हम दोनों एक ऐसा काम कर रहे हैं, जिसे कोई नहीं जानता। या तुम कह सकते हो, इस मामूली से काम द्वारा हमें अनुभव होता था, हम भी कुछ हैं ! अपने व्यक्तित्व और अस्तित्व को अनुभव करने से सुख और आत्माभिमान की पूर्ति होती है, संतोष होता !·······तुम कहोगे मै तुम्हे मनोविज्ञान पढ़ाने लगी। पर क्या करूँ, यदि एम० ए० की परीक्षा के लिये निबन्ध मैं लिख सकी तो वह मुझे इसी विषय पर लिखना है।

"हाँ ! पिता जी के दोस्तों-मित्रों के दूसरे लड़के भी हमारे यहाँ आते थे। पिता जी ने मुझे सदा स्वतंत्र रक्खा है। माँ के न रहने के कारण मैं सदा उनके ही पास रही हूँ। मैं सभी से बोलती चालती थी। एक दिन एक दूसरा लड़का मुझे हारमोनियम पर कोई स्वर सिखा रहा था। हम खूब हँस रहे थे। इतने में मुझे पत्र लिखने वाला लड़का आगया। उसे यह सब अच्छा नहीं लगा। बाद में उसने मुझे इस बात पर डाँटा। उसके बाद मैं उससे बोली ही नहीं,·······प्रेम समाप्त होगया।

मैं सोचने लगी—हम क्यों लड़ पड़े ! उत्तर मिला—प्रेम द्वारा मैं अपने जीवन का विस्तार चाहती थी और वह मुझ पर बंधन लगा मेरे जीवन को संकुचित कर देना चाहता था। देखो, वह चौदह-पन्द्रह बरस का लड़का भी मुझे अपनी सम्पत्ति समझना चाहता था ?

"इसके बाद कई लड़के नज़रों में आये। तुम बताओ, जो अच्छा हो वह अच्छा कैसे न लगे? उसके लिये चाह या प्यार कैसे न हो? जिस समय जो लड़का नज़रों में रहा उस समय वही मुझे आदर्श जँचता रहा। दसवीं श्रेणी और कॉलिज के प्रथम दो वर्ष में अनेक उपन्यास पढ़े। जीवन के अनेक चित्र आँखों के सामने आने लगे। उस समय एक और लड़के से परिचय हुआ। वह मेरी एक सहेली का भाई था। बहुत ही सुन्दर, स्वभाव का बहुत ही अच्छा। उसे देख न पाने पर चैन न पड़ती। दोपहर में कॉलिज से आती तो सहेली को उसके घर छोड़ने जाती ताकि उसके भाई को एक नज़र देख पाऊँ। मौका मिलता तो संध्या को भी जाती। उसका पत्र आता तो उसे दस-दस बीस-बीस दफ़े पढ़ती। आधी-आधी रात तक बैठ उसे ख़त लिखती। मेरी स्वतंत्रता और अभिमान सब न जाने कहाँ चला गया? उस समय और बीसियों लड़के मेरी आँखों के सामने आये, उन्होंने मेरे निकट आने का यत्न किया परन्तु मैंने उन्हें देखा ही नहीं। हम दोनों ने निश्चय कर लिया था कि हम जीवन भर के साथी होंगे।

"वह हमारे यहाँ आता। कई-कई घण्टे हम साथ रहते। तब हम अपने दूसरे मकान में थे। ज़ीने पर उसके क़दमों की आहट पा मैं तड़प उठती। जितनी देर वह हमारे यहाँ रहता, मैं जीवित रहती, उसके चले जाने पर मर जाती। उन दिनों कांग्रेस का बहुत ज़ोर था। मैं धरना देने जानेवाली और जुलूसों में भाग लेने वाली लड़कियों की पहली टोली में थी इसलिये देशभक्त नौजवानों का जमघट मेरे यहाँ जमा रहने लगा। उसके आने पर कटाक्ष होते, ताने दिये जाते क्योंकि उसका पिता सरकारी अफ़सर है। उसका अपमान मैं न सह सकती। उसे मैंने कहा—"मैं तुमसे स्वयम मिल आया करूँगी, तुम यहाँ न आया करो। आओ तो ऐसे समय, जब यह लोग न हों।

"मैं उसके यहाँ जाती और उसके सीने पर सिर रख रो आती। वह

मुझे तसल्ली देता। एक दिन वह बहुत दुखी हो मेरे यहाँ आया। उसके घर दूसरा झगड़ा चल रहा था। एक पुत्रहीन, एकलौती लड़की के पिता बड़े ज़मीन्दार के यहाँ उसके विवाह की बात चल रही थी। घर भर उसका विरोधी था। उसे दुखी और व्याकुल देख सांत्वना देने के लिये उसे मैंने बाहों में लेलिया। रात भर वह मेरे कमरे में रहा..........हम अपने आपको भूलगये..........होश आने पर मैं बहुत रोई। उसने कहा—घबराओ नहीं, हम कहीं चले जायेंगे। परन्तु मैं तैयार न हुई.......पिताजी को कैसे छोड़ जाती ? और फिर मेरी अपनी भी तो स्थिति थी। कांग्रेस में और बाहर भी लोग मुझे जानते हैं। उसने कहा—फिर भय की आशंका से बचने के लिये दवाई खालो ! एक पुड़िया ला उसने मुझे दी। और जो कुछ उससे हुआ हो पर मुझे जो बुखार चढ़ा.......

"एक के बाद दूसरा डाक्टर आने लगा और दवाइयों की शीशियाँ। पहले कुछ दिन मैंने दवाई नहीं खाई। बाद में खानी शुरू की परन्तु कुछ न बना। वह प्रायः आता और मेरे पास बैठ, मेरा हाथ अपने हाथों में ले आँसू बहाता। वह कहता, सब कुसूर उसी का है। परन्तु मुझे एक दिन भी उस पर क्रोध न आया। हाँ ! उसके न आने से दुःख होता था। कुछ दिन ऐसी अवस्था रही कि डाक्टरों को मेरे बच सकने में सन्देह था।"

"मुझ पर कृपादृष्टि रखनेवाले युवकों की कमी न थी। तुम्हारे बी० एम० भी उनमें से एक थे। नौजवानों के एक और नेता थे, उन्हें तुम जानते हो..........'खन्ना' ! उनके प्रति न जाने क्यों मेरे मन में सदा आशंका बनी रहती। परन्तु उनके दो दफ़े जेल हो आने से मुझे उनके सामने श्रद्धा से सिर झुकाना पड़ता। उन्हें आरम्भ से ही महेन्द्र से ईर्षा थी। मेरे बिस्तर पर पड़े-पड़े ही वे मुझे जीवन की संगिनी बनाने के लिये आतर हो उठे। मुझे उनकी बातों से क्लेश होता था परन्तु उनके

आदर को ठुकरा न पाती। मेरे पैर चूमकर वह कहते—"तुम कितनी महान हो।" परतु इसके साथ ही महेन्द्र की निन्दा के स्तोत्र भी मुझे उनसे सुनने पड़ते। उस शारीरिक कष्ट में यह मानसिक कष्ट मुझे पागल किये दे रहा था। मैं चेष्टा करती उन दोनों का सामना न हो। मेरे हृदय में दोनों के लिये ही आदर था, यही मेरी मुसीबत थी। महेन्द्र के घर उसके विवाह के प्रश्न के कारण स्थिति असह्य हो रही थी। वह मुझे घर बीती सुना जाता। मैं उसे कहती, तुम विवाह करलो! मैं चाहती थी, वह किसी प्रकार सुखी हो परन्तु उसके इनकार से शान्ति मिलती।

"बहुत दिन तक वह नहीं आया। एक दिन आकर उसने बताया—उसका विवाह होने जा रहा है। मेरे मुख से केवल 'हैं!' ही निकल सका। इसके बाद जब मुझे होश आया, वह न था।"

कुछ दिन बाद उसका एक पत्र मिला, उसका विवाह हो गया है और वह मुझे मुँह नहीं दिखा सकता। मेरी अवस्था और ख़राब हो गई। मन चाहता था, एक दफ़े जा उसे देख आने को। परन्तु शरीर में इतनी शक्ति न थी। इस बीच में खन्ना ने मुझे अनेक दफ़े समझाया कि अपने जीवन का साथी उन्होंने मुझ मे पाया है। हम दोनों राजनीति और समाज के क्षेत्र में एक साथ चल सकेंगे। मेरे चुप रहने पर मेरे सिरहाने बैठ उन्होंने मेरे माथे पर आँसुओं की बूंदें बहाईं। उनके सामने मुझे हार माननी पड़ी। उसके हृदय को अपने सिर पर रख रोने लगती। डाक्टर मेरी बीमारी का इलाज कर मुझे बचाने की कोशिश करते थे और मैं हृदय के रोग लगा उसे बढ़ाने की।

"पिता जी की भीगी आँखें देख कई दफ़े मैंने निश्चय किया—हृदय को पत्थर बना लूँ और चुपचाप बीमारी का इलाज करूँ। परन्तु कर न पाई। अन्त में खन्ना के लिये अपने जीवन को बचाने का प्रण कर मैंने सेहत पाने का निश्चय किया। छः मास की कठोर तपस्या के

बाद मैं उठने-बैठने लायक हो गई। मेरा जीवन 'खन्नामय' हो गया परन्तु महेन्द्र एक छाया की तरह फिर भी साथ था। आज तक भी उसे भूल नहीं पाई हूँ और भूलूँगी भी नहीं। प्रत्येक संध्या खन्ना की गोद में सिर रख मैं भविष्य जीवन के स्वप्न देखने लगी। खन्ना ने मुझे कब्र से खींच लिया था। मैं उसी की बन गई। परन्तु जिस समय खन्ना के कंधे पर बाँह रखे आँखें मूँदे रहती, उसी समय वह पूछ बैठता क्या अब भी महेन्द्र की याद आती है?.......झूठ कैसे बोलती?"

"एक दिन, जो बात अस्पष्ट थी, उसने उसे स्पष्ट कर दिया। उसने पूछा—मुझसे विवाह करोगी? आँखें मूँदे ही उत्तर दिया—यह बात भी क्या पूछने की है?

"उसने मुझे सीने से लगा लिया। उसने पूछा—तुमने अपने आपको मुझे दे डाला है? मैंने उत्तर दिया—हाँ।

"उसने फिर पूछा—महेन्द्र को तो तुमने केवल मनही दिया था, शरीर तो नहीं?

"मेरा श्वास रुकने लगा। कुछ उत्तर न दे सकी। उसका उष्ण-तीव्र श्वास मेरे माथे पर अनुभव हो रहा था। कुछ रुक कर शंकित स्वर में उसने पूछा—शरीर भी?

"मेरा शरीर काँप उठा परन्तु झूठ बोलने का साहस न हुआ सिर झुकाकर मैंने हामी भरी। उस समय मैं अर्द्ध चेतनावस्था में थी परन्तु खन्ना की बाहों के बंधन के सहसा ढीले पड़ जाने से चौंक उठी। आँखें खोल देखा—उसका गोरा चेहरा मुर्झा गया है। सँभल कर बैठने का यत्न किया परन्तु सँभल न सकी।............मन की अपवित्रता क्षमा हो सकती है शरीर की नहीं.......और यही खन्ना कहते थे, वे मुझसे आध्यात्मिक प्रेम करते थे........

शैल ने आँखें उठा हरीश की ओर देखा और मुस्कराने का यत्न करते हुए पूछा—"मैं बड़ी बदमाश हूँ?"

दोनों हाथ उसके कांधों पर रख हरीश ने उत्तर दिया—"क्या कहती हो, जिस व्यक्ति में इतना साहस हो, वह कभी नीच नहीं हो सकता।"

दाँतों से होंठ दबा शैल सामने की दीवार पर देखने लगी। कुछ क्षण बाद हरीश को सम्बोधन कर उसने कहा—"और यह खन्ना साहब ही मेरी बदनामी का कारण हैं। बी० एम० चाहते हैं मैं उनके सिवा न किसी से बोलूँ, न मिलूँ।"

विस्मय से हरीश ने पूछा—"क्यों ?"

"यही तो समझ नहीं सकी।.......समझने की बात ही क्या है ; पुरुष का स्त्री पर एकछत्र और पूर्ण अधिकार का संस्कार ! चाहते थे, घर छोड़कर उनके साथ चली चलूँ........।"

सहसा दोनों हाथों में मुँह ढककर शैल झुक गई। उसके सिर के कम्पन से हरीश ने झुककर देखा—'अरे, पागल, क्या रो रही हो ? यही तुम्हारी वीरता और आत्म अभिमान है ? जहाँ इतना साहस किया है, वहाँ इस रोने का क्या मतलब ?"

आँसुओं से भीगे उसके गालों को अपने हाथों से पोंछ हरीश ने उसके सिर को अपने सीने पर रख लिया। स्वयम् उसके अपने स्वर में अस्थिरता आ गई। बोला—"रोओ तो मेरी कसम !"

कुछ क्षण वे उसी प्रकार बैठे रहे। टाइमपीस की रेडियम की सुइयों की ओर देख उसने कहा—"शैल, डेढ़ बज गया........मैं जा रहा हूँ। तुम नीचे गैराज बन्द कर लो !"

शैल के सिर को अपने सीने पर विदा की सूचना में एक बार दबा, उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह चुपचाप चला गया।

३

केन्द्रीय सभा

कानपुर शहर के उस ख़ास तंग मोहल्ले में आबादी अधिकतर निम्न श्रेणी के लोगों की ही है। पुराने ढंग के उस मकान में, जिसमें सन् ३० तक भी बिजली का तार न पहुँच सका था, किवाड़ विलायती कब्जों के नहीं, कँदरी और पैजा के थे। छत पर खपरैल का छप्पर था।

छः नौजवान, कुछ दीवार का सहारा लिये और कुछ अपनी कोहनी की टेक लिये किसी प्रतीक्षा में बैठे थे। बाईं ओर, एक नव-युवक ईंट पर जलती हुई मोमबत्ती के प्रकाश में कोई पुस्तक पढ़ रहा था। उसके पास ही, चित्त लेटा, दूसरा अख़बार देख रहा था। दो, आपस में बँगला में बात कर रहे थे। बीच में बैठा युवक विशेष स्वस्थ्य जान पड़ता था। वह एक पिस्तौल के कारतूस एक ओर रख, उसे साफ़ करता हुआ, अपने समीप बैठे युवक से बात कर रहा था।

बँगला में बात करने वाले दो युवकों में से एक ने कुछ आगे बढ़ बीच में बैठे युवक को सम्बोधन कर कहा—"दादा, देखो एगारा बजता·····हमारा तो तीन बजा का गाड़ी नहीं पकड़ लेने से नहीं होता।"

अख़बार पढ़ने वाले युवक ने अख़बार एक ओर रखकर कहा—"अच्छा तो फिर शुरू करो············ख़्याल नहीं कि वह आ सके।"

जो किताब पढ़ रहा था, उसने किताब के पन्नों में उँगली रखते हुए कहा—"मैं तो पहले ही कह चुका हूँ, शाम चार बजे के बाद कोई और ट्रेन उधर से नहीं आती।"

बँगला में बात करने वाले दूसरे नौजवान ने अपना कम्बल सँभालते हुए पूछा—"But has he been informed ?" (लेकिन उसे सूचना भी मिली है ?) उसके उत्तर में किताब पढ़ने वाले ने विशेष बल से कहा—"Ofcourse ! I did inform him myself". (निश्चय, मैंने स्वयम् सूचना दी थी) ।

दादा ने बारी-बारी से उन दोनों की तरफ़ देखा। अपनी भूल समझ उस युवक ने कहा—"हम बोलता, जो उसको ख़बर ठीक से दिया गया था नहीं क्या ?" किताब पढ़ने वाले युवक ने अपना उत्तर फिर से दोहराया—"तीन दिन पहले ही ख़बर दे दी थी। मैंने खुद ख़बर दी थी।"

दादा ने सबकी ओर देखकर पूछा—"तो फिर क्या किया जाय ?"

अख़बार पढ़ने वाले युवक ने अख़बार एक ओर फेंक, बैठते हुए कहा—"कोई मुश्किल राह में आ गई होगी, नहीं आ सका। उसके लिये सफ़र करना भी तो बहुत मुश्किल है।"

किताब पढ़ने वाले ने हँसकर ताने के स्वर में कहा—"हाँ दिल ही न करे ?"

दादा ने झुँझला कर कहा—"लेकिन इस मामले में उसका यहाँ होना ज़रूरी था.......बात उसके मुँह पर होनी चाहिए।"

बंगाली साथी चिन्ता से अपने गहरे साँवले चेहरे पर अपनी बड़ी-बड़ी आँखें घुमाते हुए बोला—"पर हमारा आना तो ऐसे नहीं हो सकता। हम इधर से जाकर ईस्ट (पूर्व) चला जायगा।"

दूसरे बंगाली ने अपने साथी को सम्बोधन किया—"अखिल ! बांगाल का बारे में जो बात है तुम अपना कह दो। और बात ये लोग अपना फीर बी करने सकता है......."

अखिल दुबला पतला, छरहरे बदन और गहरे साँवले रंग का ख़ास पूर्वी बंगाली नखशिख का युवक था। हिन्दी बोलने के कठिन प्रयत्न में उसके चेहरे की स्वाभाविक गम्भीरता और भी गहरी मालूम

पड़ती थी। अपने भाव व्यक्त करने में कठिनाई अनुभव करते हुए वह बोला—"फ़्यूचर (भविष्य) के लाइन के बारे में आपको क्या ख़्याल है ?........बंगाल में तो बौत मूश्किल है। पुलिस का नियंत्रण बहुत कठिन है। कुछ भी बिलकुल नई करने से तो सब ख़तम हो जायगा। पुराना जो दादा लोग है, वो तो सिर्फ बड़ा-बड़ा बात करता है और कांग्रेस का पार्टी बाजी में है।............हमारा एक्सप्लोसिव (विस्फोटक पदार्थ) में एक्सपर्ट (चतुर) कोई नई होने से कुछ कर नहीं सकता। जो यंगमैन है उसको कम्युनीस्ट खींचता जाता है........।"

किताब पढ़नेवाले ने हँसकर टोक दिया—"और एक्सप्लोसिव (विस्फोटक पदार्थ) वाला चाबी हाथ में ले सबको नचाता फिरता है।"

दादा चिन्ता से होंठ काटते हुए मोमबत्ती की ओर देखने लगे। उनकी दोनों गहरी भूरी पुतलियों में मोमबत्ती के दो प्रतिबिम्ब काँप रहे थे।

उसी समय जीने से आवाज़ आई—"काशन !"

दादा ने सिर उठाकर पूछा—"कौन ?"

ज़ीने से आवाज़ आई—"नाइन-नाइन-एट-एट !"

अपनी सतर्क आँखें सन्तोष से झपककर दादा ने कहा—'आने दो।'

कुछ ही सेकेण्ड में एक और नौजवान रेल के इंजनघर के कुलियों से नीले कपड़े पहरे और एक सस्ता कम्बल ओढ़े सामने आया। उसे देख सभी ने उसका स्वागत किया। परन्तु स्वागत का प्रकट रूप भिन्न-भिन्न था। दादा ने कुछ न कह केवल सिर हिला दिया, जिसका अर्थ था—"तुम आये तो !"

अखिल ने चमकते नत्रों से उनकी ओर देखकर कहा—Oh you have come after all (आख़िर तुम आही गये) दूसरे बंगाली ने हँसकर बँगला में कहा—"एशो-एशो, हरीश !"

अख़बार पढ़नेवाले ने किताब पढ़नेवाले की ओर देखकर कहा—"बी० एम० तुम तो आशा छोड़ बैठे थे !"

बी० एम० ने दादा की ओर देखकर कहा—"चार बजे ट्रेन आ जाती है, आख़िर इतना समय·······?"

दादा ने अपनी आँखों की पुतलियाँ ऊपर उठा हरीश की ओर देखकर पूछा—"कहाँ थे तुम ? आने के बाद तुम मिले क्यों नहीं ? तुम्हें मालूम नहीं था ; यहाँ नौ बजे पहुँच जाना चाहिए था ?"

बी० एम० ने बंगाली साथी की ओर देखकर कहा—"He will give some nice story (कोई-न-कोई गप्प यह सुना ही देगा)।"

हरीश एक बाँह टेक बैठ गया था। इस फ़ब्ती पर बिगड़ उसने क्रोध में कहा—"तुम्हारा मतलब ; मैं सैर कर रहा था ?"

दादा ने क्रोध से डाँटा—"सीधी बात क्यों नहीं करते ?"

हरीश ने दादा की ओर देखकर उत्तर दिया—"इसने यह सीधी बात कही है ?·······वह आपको नहीं सुनाई दी ?·······। इसका मतलब है मैं बहाने बनाता हूँ ?"

दादा चुप हो गये। बी० एम० और दादा को छोड़ शेष सब लोग कहने लगे—"नो नो नो !"

दादा के समीप बैठे युवक ने हँसकर हरीश के कपड़ों की ओर संकेत कर कहा—"अरे यह तुमने क्या स्वाँग बनाया है ?"

दादा ने अपनी बात को दुहराते हुए पूछा—"पर तुम थे कहाँ इतनी देर ?"

"अभी स्टेशन से आ रहा हूँ दादा।"—हरीश ने उत्तर दिया।

अख़बार पढ़नेवाले युवक ने विस्मय से पूछा—"परन्तु इस समय ट्रेन कौन आती है ?"

हरीश बोला—"सवारी गाड़ी से नहीं आया हूँ। अली, तुम जानते हो, उस स्टेशन पर गाड़ी चढ़ना मेरे लिये कितना मुश्किल है। मैंने मालूम कर लिया था, रात सवा दो बजे एक मालगाड़ी मोग़लसराय के लिये चलनेवाली थी। उसमें आधे से अधिक कोयले के खाली ट्रक

(बिना छत की गाड़ी) थे। यह कपड़े पहन लोको के रास्ते जा एक ट्रक में सो गया। मालगाड़ी जिस चाल से चलती है, तुम जानते ही हो ? गाड़ी अभी ही पहुँची है ; वो भी स्टेशन के आख़िर में खड़ी हुई। वहाँ से उतरकर अभी आ रहा हूँ।"

कारण सुन सबकी शिकायत दूर हो गई। अखिल ने अपने साथी की ओर देख अनुमोदन किया—"वाह, ख़ूब अच्छा !"

अली ने पूछा—"कमबख़्त, रात जाड़ा नहीं लगा ?"

"हड्डियाँ अकड़ गईं"—हरीश ने कहा—"लेकिन उतना नहीं जितना पुलिस की नज़र पड़ने से लगता है।"

दादा के साथ बैठा युवक बोला—"अली, हितोपदेश की वह कहानी पढ़ी है ? एक गीदड़ शहर में घुस गया था। कुत्तों के डर के मारे वह भागता हुआ रंगरेज़ के नीले रंग के कूँडे में गिर पड़ा। बाहर निकला तो वह हो गया नीला। जंगल के जानवरों ने देखा तो घबराये और लगे उसके सामने सिर झुकाने और वह गीदड़ जंगल का राजा बन गया।"

बी० एम० ने खुश होकर कहा—"हेयर, हेयर !"

दादा ने अपने साथ बैठे युवक की ओर देखकर डाँटा—"जीवन, तुम बाज़ नहीं आओगे ?"

जीवन ने कुछ शरमाकर हरीश की ओर देखकर कहा—"दादा मेरा कुछ दूसरा मतलब नहीं था, क्यों हरीश ?"

अली ने अपनी जाँघ पर हाथ मारकर कहा--"इसमें क्या शक ! हरीश पुलिस के जानवरों को डरा आया है लेकिन अब उसके साथ के गीदड़ हाँ हाँ न करने लगें तब ? वरना साथियों के साथ तो उसे भी बोलना पड़ेगा।" कहकर वह हँस दिया। अली, जीवन और हरीश ने एक दूसरे की तरफ़ देखकर मुस्करा दिया। बी० एम० ने भी जरा होंठ घुमाकर मुस्कराहट का अभिनय कर दिया और लोग शायद समझे नहीं, या उन्होंने ध्यान नहीं दिया।

अखिल ने कहा—"Now comrades let us come to the point "(कामरेड्स अब काम की बात शुरू की जाय !")

दादा बोले—"हाँ...लेकिन कुछ ज़रूरी बातों का फैसला आगे का काम निश्चित करने से पहले कर लेना होगा। उन बातों का ठीक निश्चय किये बिना हम लोग एक साथ किसी गम्भीर काम को कर नहीं सकेंगे।" दादा बहुत शान्ति से अपनी बात कहने की चेष्टा कर रहे थे परन्तु मनमें दबी उत्तेजना के कारण उनके नथनों और स्वर काकम्पन प्रकट हो जाता था।

दादा की बात सुनकर, उनके रवैये को देख दोनों बंगाली साथियों ने कुछ समझ पाने की चेष्टा में अपने चारों ओर देखा। अपनी बात समाप्त कर दादा सामने की दीवार की ओर देखने लगे। उनके चेहरे पर भावों का संघर्ष अब भी प्रकट था। हरीश विस्मय से दादा के मुख की ओर, जीवन अपनी उँगलियों के नाखूनों की ओर, बी० एम० अपनी पुस्तक की ओर और अली बी० एम० की ओर देख रहा था। घरबार का वैराग्य, साम्राज्यशाही शक्ति का विरोध, देश द्वारा उपेक्षा, प्राणों का निरंतर भय और प्राणों की बाजी लगाकर देश के लिये कुछ कर जाने की उमंग यह सब साझी भावनायें जिन क्रान्तिकारियों को उद्देश्य की एकता और मित्रता के गूढ़ बन्धन में बँधकर एक किये हुए थीं, जिस स्नेह और सहानुभूति के मुकाबिले में एक पेट से उत्पन्न भाइयों और प्रणयान्ध प्रेमियों का प्रेम भी पीछे रह जाता है, विश्वास के उस सरल बन्धन में कुछ ऐंठ आ गई थी। इस भावना के प्रकट होने से प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी स्थिति अस्थिर और अरक्षित समझ रहा था। कुछ क्षण के लिये एक भयावह सन्नाटा सा छागया जैसा कि अत्यन्त शोक पूर्ण समाचार के सहसा सुन लेने से हो जाता है।

कुछ भी न समझ अखिल ने दबे स्वर में पूछा—"क्या मतलब ?" उसका कुछ उत्तर दिये बिना ही दादा ने बी० एम० को सम्बोधन किया—"बोलो !"

अपनी उँगली के नाखून को दाँत से काटते हुए बी० एम० ने कहा—"आपही कहिये, आप सब कुछ जानते हैं।" केवल जीवन को छोड़कर और सब लोग बी० एम० की ओर देख रहे थे। वह उनकी तीव्र दृष्टि को अपने चेहरे पर अनुभव कर रहा था।

दृष्टि नीचे किये ही बी० एम० को सम्बोधन कर, अपनी उत्तेजना को रोकते हुए दादा ने फिर कहा—"तुम कहते क्यों नहीं हो जी; आखिर बात का फैसला कैसे होगा?"

झिझकते हुए स्वर में बी० एम० ने उत्तर दिया—"मेरा कोई पर्सनल (निजी) मामला तो है नहीं?"

"लेकिन तुम्हीं को तो सब बात का पता लगा है?"—दादा ने कहा। साहस एकत्र कर बी० एम० ने उत्तर दिया—"परन्तु जानते आप भी हैं!" जीवन और अली की ओर हाथ में पकड़ी पुस्तक से संकेत कर उसने कहा—"यह भी जानते हैं।"

दादा के ओंठ फड़क उठे। वे कुछ कहना ही चाहते थे कि जीवन ने आर्द्र स्वर में कहा—"मैं ही कहे देता हूँ दादा!"

क्षोभ के निश्वास को छोड़ अपनी शून्य दृष्टि फर्श की ओर किये दादा ने मानो मुक्ति पा कहा—"कहो!"

कंठ की आर्द्रता सँभालने के लिये उँगलियों से चटाई पर लकीरें खींचते हुये जीवन ने कहना शुरू किया—"बात यह है, दादा के पास कुछ शिक़ायतें पहुँची हैं। उन्हें आपके सामने रख देना ज़रूरी है। पार्टी के अनुशासन और उद्देश्य के विरुद्ध यदि प्रत्येक व्यक्ति काम करने लगेगा और अपनी-अपनी पार्टी अलग बनाने का यत्न करेगा तो पार्टी कैसे चल सकती है और हम बिना कुछ किये व्यर्थ में ही मारे जायँगे।"

जीवन की कातर मुद्रा और इस भूमिका से खपरैल की छत से छायी उस कच्ची कोठरी का वातावरण आशंका से और भी गम्भीर होगया। दादा की दृष्टि मोमबत्ती की लौ पर स्थिर थी। उसका प्रतिबिम्ब

उनकी आँखों की पुतलियों में नाच रहा था। मनकी जिस उत्तेजना को वे दबाये बैठे थे, उससे आँखों का श्वेत भाग गुलाबी हो गया। मानों, दूर क्षितिज पर कहीं अग्नि का विस्फोट हो जाने से रक्तिमा छाये आकाश में अग्नि की क्षीण लपट दिखाई दे रही है। शेष सभी व्यक्ति जीवन के झुके हुए चेहरे और सजल नेत्रों की ओर देख रहे थे।

कठिन कर्तव्य के बोझ से साँस लेने के लिये वह कुछ क्षण रुका और फिर उसने कहना शुरू किया"........बात हरीश के बारे में है।" यह शब्द विशेष कठिनाई से उसके मुख से निकले—"शिकायत यह है कि वह पार्टी के विरुद्ध कार्य कर रहा है। पार्टी को सहायता देने की अपेक्षा वह लोगों से कांग्रेस के काम में और ख़ास तौर पर कम्युनिस्टों के काम में सहायता देने को कह रहा है। जो लोग पार्टी के गुप्त कार्य में सहायक हो सकते हैं, उन्हें वह कांग्रेस के व्यर्थ आन्दोलन में या दूसरे सार्वजनिक काम में भाग लेने को कह कर पार्टी से दूर रखना चाहता है। पार्टी इस समय आर्थिक संकट में है। हमारे कुछ आदमी कई स्थानों पर बन्द पड़े हैं। किराया वगैरा न होने की वजह से उन्हें संकट के स्थानों से निकल कर दूसरी जगह नहीं भेजा जा सकता। कई-कई दिन से वे दो-दो पैसे के चनों पर निर्वाह कर रहे हैं। हरीश को अमृतसर में एक डकैती का प्लैन (plan) देकर प्रबन्ध करने के लिये कहा गया था परन्तु कहा जाता है, उसने जान-बूझकर उसे टाल दिया। इसके इलावा यह शिक़ायत है कि वह रुपया बर्बाद कर रहा है। वह काफ़ी क़ीमती सूट पहनता है, बड़े-बड़े होटलों में खाना खाता है, शराब पीता है। मोटरों में घूमता है, बदनाम लड़कियों से उसकी नाजायज़ दोस्ती है।"

दादा ने टोककर कहा—"साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते !"

जीवन ने कुछ संकोच से कहा—"शिक़ायत है कि एक लड़की जो पार्टी को सहायता देती आई है और जो पार्टी के काम के लिये घर छोड़

कर आना चाहती थी, उसे हरीश ने केवल अपनी प्रेमिका बनाये रखने के लिये पार्टी के दूसरे लोगों से मिलने और घर छोड़ने के लिये मना-कर दिया है। वह लोगों को यह समझाता है कि हमारी पार्टी का काम व्यर्थ है और दादा और पार्टी के दूसरे मेम्बर मूर्ख हैं.......वे कुछ नहीं समझते। दादा और दूसरे मेम्बर कुछ पढ़े-लिखे नहीं, वे कुछ स्टडी (अध्ययन) नहीं करते....पार्टी का काम दूसरे ढंग से होना चाहिये।"

जीवन चुप हो गया। एक दफ़े अपनी आँखें पोंछ जेब से रूमाल निकाल उसने नाक भी साफ़ किया। उसकी आँखों से आँसू नहीं टपके थे परन्तु वे लाल हो रही थीं।

जीवन की बात समाप्त हो जाने पर सभी उपस्थित व्यक्ति बिलकुल स्तब्ध रह गये। दादा अपनी आँखें मोमबत्ती की ओर से हटा उपस्थित लोगों के बीच फर्श की ओर देखते हुए चुप रहे।

हरीश ने अनुभव किया—सब लोग उसके उत्तर की प्रतीक्षा में हैं। विस्मय और आशंका से उसका रोम-रोम सतर्क था। उसने दादा के आँखें झुकाये चेहरे की ओर देखते हुये कहा—"मुझे आश्चर्य है कि फ़रेब का इतना विकट जाल रच कर आप लोगों के सामने रखा गया है।" उसकी इस बात से अली और दोनों बंगालियों को विशेष संतोष हुआ। दादा और बी० एम० के चेहरे पर कोई परिवर्तन दिखाई न दिया। जीवन ने कुछ अधिक सुनने की आशा से उसकी ओर देखा।

हरीश ने फिर कहा—"कुछ बातों में मेरी राय दूसरी हो सकती है और उस विषय में हम लोग यहाँ विचार कर सकते हैं। परन्तु यह कहना कि मैं पार्टी से लोगों की सहानुभूति हटाता हूँ या अपनी पार्टी अलग बनाने की चेष्टा कर रहा हूँ, या पार्टी के दूसरे मेम्बरों को मूर्ख बताता हूँ, सरासर ग़लत है। पार्टी का रुपया बर्बाद करने या दुश्चरित्र होने के लांछन मुझ पर लगाये गये हैं। अगर यह शिक़ायतें ईर्षा के कारण हैं तो इनका कोई इलाज नहीं। यदि इनका कारण ग़लतफ़हमी

है, तो यह ज़रूर दूर हो सकती हैं। पहली बात तो यह कि मैं अच्छे कपड़े पहनता हूँ! उसके लिये स्पष्ट बात यह है कि मुझे जिस तरह के समाज में जाना होगा, उसी तरह की पोशाक मुझे पहननी होगी; वर्ना मैं उन आदमियों से मिल नहीं सकता। सूट पहन कर मैं माल गाड़ी में नहीं आ सकता था और न यह कुलियों के नीले कपड़े पहन कर मैं भले आदमियों के बीच जा सकता हूँ।"

अखिल ने दादा और दूसरे साथियों की ओर देख कर संतोष से अपना घुटना हिलाते हुए कहा—"यस, दैटिज़ राइट, ठीक है।"

"और फिर"—हरीश बोला—"इन बातों पर खर्च भी मैं पार्टी का रुपया नहीं करता। मेरे अपने निजी परिचित हैं, जिनसे मैं आवश्यक खर्च ले सकता हूँ।"

बी० एम० ने दादा की ओर देख कर पूछा—"पार्टी के मेम्बर के निजी परिचित का क्या अर्थ है? पब्लिक की सहानुभूति यदि किसी मेम्बर के प्रति है तो वह पार्टी के काम की वजह से है। पार्टी में सबको एक जैसी सुविधा होनी चाहिये।"

हरीश के स्वर में तेज़ी आ गई, उसने कहा—मैं इन सब बातों को समझता हूँ, लेकिन कपड़ों को कपड़ों की ख़ातिर नहीं पहरा जाता। यदि पार्टी के किसी दूसरे मेम्बर को उन कपड़ों की ज़रूरत हो, वह उनका व्यवहार कर सकें; मैं वे कपड़े उसे दे देने को तैयार हूँ। अब यदि किसी आदमी से मैं मिलना चाहता हूँ.......वह आदमी मुझे किसी होटल में निमंत्रण देता है तो क्या मैं उसे यह कह दूँ, मैं क्रान्तिकारी फ़रार व्यक्ति हूँ, मुझ से आप अंधेरी रात में, वृक्ष के नीचे मिलिये? अपना परिचय पहले दिये बिना मुझे उसके विचारों पर प्रभाव डालना है और फिर होटल का ख़र्च भी उसी व्यक्ति के सिर पड़ता है तो इसमें पार्टी का क्या हर्ज़ है?............"

अली और दूसरे आदमियों ने सिर हिलाकर समर्थन किया। बी०

एम० ने पूछा—"नवम्बर के महीने में निशात होटल की पार्टियों में किसका ख़र्च हुआ?"

हरीश इस समय तक चिढ़ गया था। उसने कहा—"फैक्टरी की बात जनाब यह है·······जब आप तीन आदमियों से दिन भर 'पिक्रिक-एसिड' और 'गन-काटन' बनाने को कहेंगे; जब तीखी गैस से उन्हें दिन भर उल्टियाँ आती रहेंगी और उनका सिर चकराता रहेगा, उनके हाथों में 'पिक्रिक-एसिड' इतना रच जाय कि वे जिस चीज़ को छुयें वह कड़वी हो जाय, जब उन्हें अपने आप को सँभालने का होश न हो, उस समय यदि वे अपना पेट भरने के लिये और दिमाग़ ताज़ा करने के लिये, होटल में जाकर आमलेट और आइसक्रीम खा लें और वे दोषी समझे जायँ तो मैं कुछ कह नहीं सकता! बाकी रहा प्रेमिका बनाने के लिए लड़की को दूसरों से न मिलने देना, यह बिलकुल बकवास है। कोई किसी से न मिलना चाहे तो मैं ज़बरदस्ती किसी को गले नहीं बाँध दे सकता। यह अपना-अपना व्यवहार है। किसी का व्यवहार दूसरे को पसन्द नहीं आता तो उसके लिए मैं क्या कर सकता हूँ? और यदि मैं समझता हूँ, कोई लड़की घर छोड़ने के बजाय हमारे काम को घर पर रहकर अधिक अच्छी तरह कर सकती है तो उसे वहीं रहने दिया जाय न कि अपने शौक़ के लिए उसे साथ लिए फिरा जाय! जिस लड़की का ज़िक्र है मैं जानता हूँ, वह अपनी जगह पर ही अधिक उपयोगी हो सकती है। यदि वह वहाँ से आकर अधिक उपयोगी हो सकती तो दूसरी बात थी। शेष रहा काम के तरीके की बाबत; मैं यह समझता हूँ, हमें उसपर फिर विचार करना चाहिए। अब तक हमारी अधिकतर शक्ति डकैतियाँ करने में और कुछ राजनैतिक हत्याओं में काम आई है। परन्तु हमारा उद्देश्य तो यही नहीं! हमारा उद्देश्य तो है, इस देश की जनता का शोषण समाप्त कर उसके लिए आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त करना! स्वराज्य का अर्थ आख़िर है क्या? अब तक

हमारा सम्पूर्ण प्रयत्न रहा है गुप्त समितियाँ बनाने में। जनता से दूर, गुफ़ाओं और तहख़ानों में बन्द रहकर हम न तो जनता का सहयोग पा सकते हैं और न उनका नेतृत्व कर सकते हैं। यह पिस्तौल, रिवाल्वर और बम एक तरह से हमारी क्रान्ति के मार्ग की रुकावट ही नहीं बन रहे, बल्कि यह हमें खाये जा रहे हैं।........हमारी सम्पूर्ण शक्ति समाप्त हो जाती है एक डकैती करने में, ताकि हम और हथियार प्राप्त कर सकें या एक राजनैतिक हत्या कर सकें। इस डकैती से हमें क्या मिलता है? जनता की सहानुभूति से हम वंचित हो जाते हैं। एक डकैती या एक हत्या के बाद कुछ न कुछ आदमी ज़रूर पकड़े जाते हैं और हमारा शीराज़ा बिखर जाता है। हम सौ-पचास आदमी तो स्वराज्य ले नहीं सकते। स्वराज्य तो जनता का संयुक्त प्रयत्न ही ला सकता है और हम जनता से इतनी दूर हैं। कभी-कभी जनता हमारे नाम पर शाबाश कह देती है मानो हम अच्छे कलाबाज़ या बाजीगर हो।....लीडर हमें गालियाँ देकर जनता का हमारे प्रभाव से दूर रखने का यत्न करते रहते हैं। तीस बरस से हम और हमारे साथी इस तरीके को आज़माते चले आ रहे हैं। हमने जो भी कुर्बानियाँ की हों, लेकिन जनता तो जहाँ थी, वहीं है। जनता तक हमारा अप्रोच (पहुँच) कहाँ है? हमें अपना टेक्नीक (तरीक़ा) बदलना चाहिए..........बजाय शहादत के, परिणाम की ओर ध्यान देना चाहिए। इसके लिए गहरी स्टडी (अध्ययन) की ज़रूरत है! हमें देखना चाहिए, रूस ने क्या किया?..............हम अपने आदमियों के ज़रिये कांग्रेस में घुसें और दूसरे जन-आन्दोलनों में क़दम उठायें..........."

टोक कर कर बी० एम० ने कहा—"यही तो बात है। आप क्रान्तिकारी पार्टी की ट्रेडीशन (क्रमागत धारणा) को बदलना चाहते हैं। सोशल और इकोनोमिक (सामाजिक और आर्थिक) काम करने वाले तो और दूसरे कई संगठन हैं। क्रांतिकारी पार्टी का काम तो केवल

राजनैतिक है, सशस्त्र विद्रोह ! इसके खिलाफ़ लोगों को समझाना पार्टी को तोड़ना नहीं तो और क्या है ?"

अखिल ने सिर हिलाकर कहा—"ये तो ठीक नई है। इट इज़ सीरियस (यह मामला संगीन है)।

अली ने पूछा—"सो तो ठीक है, परंतु पार्टी का उद्देश्य क्या है........?"

हरीश ने जिस समय अपनी सफ़ाई देनी शुरू की थी, उसने अनुभव किया था कि उपस्थित लोगों की सहानुभूति उसी की ओर है परन्तु पार्टी के कार्य-क्रम पर उसने जो कुछ कहा उससे साथियों का रुख़ बदलने लगा। उसने अपनी पूरी शक्ति से अपनी बात को स्पष्ट करने के लिये कहा—"इसका अर्थ पार्टी को तोड़ना नहीं है। यदि पार्टी अपने कार्यक्रम पर विचार करे तो क्या पार्टी टूट जायगी ? और फिर जनाब का कहना है कि मैं नयी पार्टी बना रहा हूँ ? कहाँ है वह नई पार्टी ?....

बी० एम० ने कहा—"असल बात तो है, मौजूदा पार्टी को तोड़ना ! जब वह टूटेगी तो फिर दूसरी पार्टियाँ अपने आप बनती-बिगड़ती रहेंगी ?" कुछ दूसरे लोग बोलना चाहते थे परन्तु हरीश ने उत्तेजना से कहा—"यदि मैं पार्टी के लोगों को स्टडी (अध्ययन) करने और अपने कार्य-क्रम के क्षेत्र पर विचारकर उसे बढ़ाने के लिये कहता हूँ तो यह पार्टी को तोड़ना है ?"

अखिल, बी० एम० और अली तीनों ही बोलना चाहते थे परन्तु दादा की ओर देख वे रुक गये। दादा ने अपनी आँखें फिर मोमबत्ती की ओर कर भर्राए हुए स्वर में कहा—"स्टडी और नये टेक्नीक (अध्ययन और नई प्रणाली) की यह नयी-नयी बातें न मैं जानता हूँ और न मुझे इनसे मतलब है। इतने समय तक लड़कर मैंने निभाया है और आगे भी लड़ता रहूँगा ! जीते जी मुझे कोई छू नहीं सकता—यह मैं जानता हूँ। कमाण्डरी का मुझे शौक़ नहीं है। न मैं कमाण्डर

बनने के लिये पार्टी में आया था। आपही लोगों ने यह बोझ मुझ पर डाला था। मैंने सदा सबकी सलाह से काम किया, इसलिये मुझे मूर्ख और अनपढ़ कहा जाता है.......मैं अब अध्ययन करूँगा? मैं जानता हूँ मरना.......और मारना! इससे अधिक की मुझे ज़रूरत नहीं! अब बड़े-बड़े बी० ए०, एम० ए० लोग आप लोगों में आ गये हैं, वही काम चलायें.......अपनी स्टडी करें और टेक्नीक चलायें.......मुझे मुआफ़ कीजिये। अब तक सबकी सलाह और अपनी समझ से मुझसे जो कुछ बना, किया.......मुझे अब किसी से कुछ मतलब नहीं। अपनी जेब में हाथ डालते हुए उन्होंने आगे कहा—"यह अपना एक पिस्तौल मैं ज़रूर अपने पास रखूँगा क्योंकि मुझे पुलिस के हाथ पड़ बँदरिया का नाच नाचकर फाँसी के तख़्ते पर नहीं झूलना है और बाकी जितनी चीज़ें (शस्त्र) हैं, उन सबका हिसाब मैं दिये देता हूँ। पार्टी के पैसे से चीज़ें ख़रीदी गई हैं, पार्टी की हैं।.......आये हैं मुझे स्टडी कराने और टेक्नीक बताने!" उनका क्रोध आँसुओं के रूप में उबल पड़ा। उन्होंने धोती के खूँट से अपनी आँखे पोंछली। जो क्रोध शत्रु के सामने केवल उसका खून बहाकर ही शांत होता, इस समय अपने साथी रूपी हाथों को अपने से जुदा होते देख, उसे अपनी ही निर्बलता समझ, अपनी गर्मी से स्वयम अपने आपको ही गलाये दे रहा था।

दादा की बात का प्रभाव क्या होगा, इसे हरीश खूब समझता था। सबसे अधिक घबराहट उसे इस बात से थी कि उसके अभिप्राय को बिलकुल उल्टा समझा जा रहा है। उसने साहस कर फिर कहा—"मुझे अफ़सोस है कि मेरा अभिप्राय ग़लत समझा जा रहा है। मैंने व्यक्तिगत रूप से आपके या किसी दूसरे साथी के विरुद्ध कोई बात कभी नहीं कही। मेरा मतलब यह नहीं कि कोई शिक्षित है या अशिक्षित। अध्ययन से मतलब मेरा अँग्रेज़ी की दस-पाँच किताबों से नहीं बल्कि अपने उद्देश्य से है। उसी के लिये हमें बहुत कुछ सीखना है।"

दादा ने कुछ नहीं कहा। वे फिर जलती हुई मोमबत्ती की ओर देखने लगे। परन्तु अखिल ने दोनों हाथ फैलाकर अपनी भाषा की कठिनाई को संकेत की सहायता से पूरा करने की चेष्टा करते हुए कहा—"क्रान्तिकारी को क्या सीखना?.......बस, सेक्रेफाइस! बस, मरना सीखना देश के वास्ते, मदरलैण्ड के वास्ते मरने को सीखना.......खोद अपने हाथ से मरना सीखना.......और बौत बात से ज़रूरत?"

दादा ने किसी की ओर न देख, सभी को सम्बोधन किया—"यह सब बहस आप फिर करते रहिये। मेहरबानी करके मुझे छुट्टी दीजिये! अपनी चीज़ों का चार्ज ले लीजिये.......मुझे अब कुछ सीखना नहीं है।"

अली ने कहा—"दादा आप भी क्या कह रहे हैं?.......आपके बिना पार्टी का अस्तित्व ही क्या? आप सब से पुराने और अनुभवी हैं। आपही को केन्द्र बनाकर हम लोग एकत्र हुए हैं.......आप यह कैसी बातें कर रहे हैं?

जीवन ने अपना स्वर सँभालते हुए कहा—"एक आदमी की राय से ही तो सब कुछ नहीं हो सकता—औरों की भी तो सुन लीजिये!"

दादा ने एक दीर्घ निश्वास ले उत्तर दिया—"अब मुझे और कुछ नहीं सुनना। जिस आदमी का इतना अधिक भरोसा था, जिसके साथ मौत का इतनी बार सामना किया, जब वही ऐसी बातें कर रहा है तो अब हम लोग किस तरह एक साथ चल सकते हैं.......हरीश से कई बातों में मेरा मतभेद हुआ, हम कई दफ़े झगड़े, परन्तु वह बात दूसरी थी। यह बात सिद्धान्त की है। उसे अब मुझ पर विश्वास नहीं है।" दादा ने फिर एक बार अपनी आँखें पोंछली।

अली ने कुछ आगे बढ़कर कहा—"दादा हरीश ने यह तो नहीं कहा कि उसे आप पर विश्वास नहीं! उसने तो पार्टी के सामने एक नया विचार रक्खा है। उसे हम चाहे स्वीकार करें या न करें।"

हरीश ने फिर कहा—"मैं केवल यह कहना चाहता हूँ कि उद्देश्य

को ध्यान में रखकर आन्दोलनों को अपने कार्य-क्रम में परिवर्तन करना पड़ता है। रूस में भी पहले स्वतंत्रता के आन्दोलन ने आतंकवादी कार्यों का रूप लिया था उस समय रूस में आम जनता का आतंकवादियों के कार्यों से कोई सम्बन्ध नहीं था। लेनिन ने रूस के क्रांतिकारियों की इस कमज़ोरी को समझा। उसने क्रान्तिकारियों को अपनी शक्ति राजनैतिक हत्याओं में नष्ट न कर सर्वसाधारण जनता के जीवन के प्रश्नों को लेकर जनता में चेतना और अधिकार की भावना पैदा करने के लिये कहा—"

अखिल ने दोनों हाथ और सिर हिलाते हुए कहा—"नो नो, वी डोण्ट वांट दिस रशियन बोश—नहीं यह कुछ नहीं माँगता !"

बी० एम० ने जोर से हँसकर कहा—"वाह ख़ूब ! एक अंग्रेज़ों की ग़ुलामी से अभी छूटे नहीं, ऊपर से रूस की ग़ुलामी और लाद लें ?·······जीवन की ओर देख उँगली के इशारे से उसने पूछा—"हाँ टाइम क्या हुआ है ?" जीवन ने अपनी कलाई की घड़ी की ओर देख कर उत्तर दिया—"डेढ़ !"'

अखिल ने चिन्ता से कहा—"तो टाइम जाता·······अब फ़्यूचर (भविष्य) का काम का बात·······"उसके मुँह की बात पकड़ बी० एम० ने कहा—"काम की बात कैसे; जब काम के बारे में राय ही नहीं मिलती तो काम की बात कैसे की जा सकती है ? काम की बात तो वही लोग करेंगे जिनकी राय मिलती हो ? यदि आप पार्टी का कार्यक्रम बदलकर आगे बात करना चाहते हैं तो हम उठ जायँ। दादा को भी उससे फिर कोई सरोकार न होगा। यदि पुराने ढंग पर ही काम करना है तो जिन्हें उस पर विश्वास नहीं, वे उसमें क्या करेंगे ?"

कोठरी में फिर स्तब्धता छा गई। हरीश के मस्तिष्क और हृदय पर आरी-सी चल रही थी। एक छलना, एक षड्यंत्र उसे इस प्रपंच की तह में अनुभव हो रहा था परन्तु वह उस जाल में फँस गया था।

उसे तोड़ सकना उसके आत्म-सम्मान के लिये सम्भव न था। गले में आये आँसुओं को पी, आँखें झुकाये उसने पूछा—"तो फिर क्या मैं चला जाऊँ ?"

किसी ओर से कोई उत्तर न मिला। सभी लोग एक दूसरे की दृष्टि बचा इधर-उधर देख रहे थे। बहुत देर तक कोई शब्द सुनाई न दिया। फिर जीवन का कातर और तरल शब्द सुनाई दिया—"यदि तुम्हें इस कार्यक्रम में विश्वास नहीं..........तो उसमें तन-मन से सहयोग कैसे दे सकोगे ?"

गम्भीर परिणाम का विचार कर अली ने तुरन्त कहा—"लेकिन फिलहाल तो तुम पार्टी के कार्यक्रम में सहयोग दोगे न ?"

बेबसी के स्वर में हरीश ने उत्तर दिया—"दे ही रहा हूँ।"

उत्साह की भावना से दोनों बंगालियों और जीवन ने हरीश की ओर देखा। स्वयम् उसे भी अनुभव हुआ, मानों भयंकर संकट टल गया। उसी समय बी० एम० ने दादा की ओर देख कर पूछा—"डकैती में भाग लोगे ?" आतुर परन्तु दृढ़ स्वर में हरीश बोला—"मैं उसके विरुद्ध हूँ.......उससे पार्टी के उद्देश्य को हानि पहुँचती है।"

दादा की ओर ही देखते हुए बी० एम० ने पूछा—"फिर ?"

दो अक्षर के इस शब्द ने एक अनिवार्य दुखान्त परिणाम सभी के सामने लाकर खड़ा कर दिया। दादा निश्चल थे। जीवन ने एक लम्बी साँस ली। अली चुप रह गया। अखिल ने सिर हिलाकर कहा—"नो होप, कोई उपाय नहीं" और उसके साथी ने भी सिर हिला दिया।

फिर वही निस्तब्धता। कोई और उपाय न देख हरीश ने सिर झुकाये हुए कहा—"जैसा आपका निश्चय....यदि कभी ज़रूरत हो तो मैं फिर हाज़िर होऊँगा।" होठों को दाँतों से दबाये, आँख में आये आँसुओं को छिपाने के लिये सहसा खड़े हो, वह जीने की राह नीचे उतर गया!

× × ×

हृदय का क्षोभ आँखों की राह बरस न पड़े, इस भय से हरीश दाँतों से ओठों को दबाये चला जा रहा था। उसका सिर अप्रत्याशित आघात से चकरा गया था। वह चला जा रहा था, बिना कुछ समझे-बूझे वही राह; जिस राह वह स्टेशन से आया था। जिस तरह ताँगे के घोड़े को जिस राह ले जाया जाय, लौटते समय वह स्वयम् वही राह पकड़ता आता है, उसी तरह हरीश के पैर भी अभ्यास से परिचित राह पर उठते जा रहे थे। गली लाँघकर वह सूने बाज़ार में पहुँचा और चलता गया।

ज़ोर की एक डाँट सुन उसने पीछे घूमकर देखा—लाल पगड़ी और लम्बा ढीला-ढाला बरान कोट! पहचाना—पुलिस का सिपाही है।

सिपाही ने माँ-बहिन की वज़नी गालियाँ दोहरा, क्रोध और अधिकार के स्वर में पूछा—"कहाँ घूम रहा है?"

परिस्थिति के अनुसार हरीश ने उत्तर दिया—"कहीं नहीं हुज़र!" उसकी आवाज़ भय से काँप रही थी।

"यहाँ कहाँ,.......ठेके पर गया था क्या?"—सिपाही ने डाँटा!

हरीश के मुख से निकला—"हुज़ूर!"

"अबे साले पीकर आया है?"

"नहीं हुज़ूर!"

"तो फिर मां की.......गया था।"—सिपाही ने बहुत ही बेहूदा शब्दों का प्रयोग किया, जिन्हें सुन कोई भी भद्र पुरुष आपे से बाहर हो जाता। परन्तु हरीश इस समय भद्र पुरुष नहीं था। वह शराबी—कुली और अपराधी की अवस्था में था। उसने गिड़गिड़ा कर काँपते हुए स्वर में केवल कहा—"हुज़ूर.......!"

"चल थाने!"—सिपाही ने धमकाया—"साले पीकर रात में सेंद लगाने की फिकर में फिर रहा है?"

हरीश ने फिर गिड़गिड़ाकर उत्तर दिया—"नहीं हुज़ूर, ग़रीब-कुली आदमी.......अपने घर जा रहा हूँ।"

नित्य इसी प्रकार की विनय सुनते-सुनते सिपाही का हृदय पत्थर हो चुका था। "यह दो बजे रात को ग़रीब आदमी नहीं गलियों में फिरा करते। फिरते हैं या तो तमासबीन या चोर !..........क्या है तेरे पास;.......दिखा !"

हरीश की कमर में पिस्तौल था। दिखाई दे जाने पर वह और मुसीबत में फँस जाता। भय से एक कदम पीछे हट अपना कम्बल झाड़ते हुए उसने कहा—"हुज़ूर कुछ भी नहीं मेरे पास.......सिरफ सत्रा आने हैं। ठेके पर गया था सो बन्द पाया।"

"कुछ नहीं है तो चल थाने !—सिपाही ने बेपरवाही से कहा और उसे ले एक ओर चल दिया। हरीश दुविधा में खुशामद के ज़ोर पर घर चले जाने की इजाज़त माँगता हुआ सिपाही के पीछे चला जा रहा था।

सिपाही राम कहे जारहे थे—"तुम ऐसे ही हमारे ससुर लगते हो न जो तुम्हें घर जाने दें। सभी तो तुम्हारे ऐसे हैं। सभी को छोड़ दें तो चालान क्या अपने ससुर का करें ?"

सामने से साइकल पर रोंद की ड्यूटी का दूसरा सिपाही और आ गया। हरीश मन में पछता रहा था, अकेले से छुट्टी पा जाता तो भला था; यहाँ दो हो गये। दोनों सिपाहियों में दुआ सलाम हुआ। साइकलवाले ने पूछा—"क्या है ?"

पैदल सिपाही ने हरीश की तरफ़ इशारा कर कहा—"यह साला इस वक़्त जाने किस फिराक़ में यहाँ घूम रहा था। इसे थाने लिये जा रहा हूँ।" साइकलवाले सिपाही ने कहा—"चलो यही सही, कुछ कारगुज़ारी हुई।" अपनी साइकल पैदल सिपाही की ओर बढ़ा उसने कहा—"ज़रा पकड़ो बशीर, ज़रा.......।"

बशीर ने साथी का मतलब समझ, हरीश की ओर देख हुकुम दिया—"पकड़ बे साइकल, खड़ा क्या देखता है ?" और अपने साथी सिपाही से बोला—"पंडित, तनिक माचिस तो दो ! साली बड़ी सरदी

है। बीड़ी सुलगायें !" पंडित सिपाही ने बायें हाथ से जेब से माचिस निकाल बशीर को दी और दायें हाथ से जनेऊ कान पर चढ़ाते हुए नाली की ओर बढ़ गये।

हरीश ने साइकल बिजली के खम्भे से सटा दी बशीर माचिस जला बीड़ी से फूँक खींच रहा था कि हरीश ने अपनी पूरी शक्ति से उसे दूसरे सिपाही पर ढकेल दिया और साइकल ले चम्पत दौड़ चला। अभी बिजली का एक खम्भा ही उसने पार किया था कि सिपाही की सीटी की तीखी आवाज़ उसके कान में पड़ी। वह समीप की गली में घूम गया। उस गली से दूसरी में, फिर तीसरी में। वह अंधा-धुन्ध चला जा रहा था। सामने फिर सड़क आगई और सड़क पर बिजली के खम्भे के नीचे फिर एक सिपाही लाल पगड़ी और बरान कोट पहने हाथ में सीटी लिये सतर्कता से खड़ा था। साइकिल को बहुत धीमा कर वह सीधा सिपाही के ही पास जा पहुँचा।

"सलाम, हवलदार साहब ! यह सीटी कैसी बज रही है ? हुज़र ?"—उसने सिपाही से पूछा।

सिपाही ने उसकी ओर देखे बिना ही उत्तर दिया—"जाने ? इधर दक्खिन से बज रही है।"

हम डर गये। हरीश ने तकल्लुफ़ की हँसी हँसते हुए कहा—"कहीं दंगा हो गया क्या ?"

"तुम कहाँ जा रहे हो ?"—सिपाही ने पूछा।

"यहीं 'एट डाउन' पर जा रहा हूँ। इञ्जन पर ड्यटी है। तीन बजे कलकत्ते को छूटती है न ? आदाब अर्ज़ हुज़ूर !"

"आदाब !"—सिपाही ने मुँह फेर लिया।

हरीश फिर स्टेशन पर पहुँच गया। इलाहाबाद की गाड़ी छूट रही थी। वह उसी में बैठ गया।

× × ×

हरीश के उस कोठरी से चले जाने के बाद फिर निराशा और निरुत्साह की स्तब्धता छा गई। उसे फिर अखिल ने ही तोड़ा। दोनों हाथों की मुट्ठियों को दृढ़ता से दोनों बगलों में दबाते हुए दादा की ओर देख उसने कहा—"तो अब ?"........

दादा ने गर्दन हिला और फ़र्श की ओर देखते हुए उत्तर दिया—"अब आप यह केन्द्र का चार्ज किसी दूसरे आदमी को दीजिये ! मुझसे यह सब बखेड़ा नहीं होता। मुझे जो काम दिया जायगा, उसे पूरा करूँगा। नहीं तो अकेले किसी पहाड़ में निकल जाऊँगा। मैं सिपाही आदमी हूँ........मुझे इन बहसामुबाहिसों से काम नहीं।"

उनकी इस बात को किसी ने भी स्वीकार न किया। बी० एम० ने शेष साथियों की ओर देखते हुए कहा—"जिसे आपके इन्चार्ज होने पर आपत्ति थी, वह चला गया। अब आप ऐसी बात क्यों कहते हैं ?"

सभी ने फिर दृढ़ता से—'नो नो'—कह और सिर हिलाकर बी० एम० की बात का समर्थन किया। अली ने एक गहरा साँस लिया। शायद वह कुछ कहना चाहता था परन्तु फिर उसे अनावश्यक समझ बिना कहे ही साँस छोड़कर सिर झुका लिया।

पिछली चिन्ता दूर भगाने के लिये सिर हिलाते हुए अखिल ने फिर कहा—"तो अब........!"

बी० एम० ने अपने हाथ में थमी किताब की जिल्द पर नाख़ून से लकीर खींचते हुए कहा—"आगे का कार्यक्रम निश्चित करने से पहले ज़रूरी यह है कि वर्तमान स्थिति को सँभाल लिया जाय ! जब पार्टी का एक मेम्बर, जो एक प्रान्त भर का इंचार्ज हो, पार्टी में जिसकी खास स्थिति हो, पार्टी के सभी कनेक्शनों (सूत्रों) से जो परिचित हो, जिसके पीछे दो एक ख़ास एकशनों (आतंकवादी कार्यों) में भाग लेने का सेहरा हो, जो अपनी पार्टी अलग बनाने का प्रयत्न करता रहा हो, दादा को मूर्ख और निकम्मा बताकर जो प्रान्त के मेम्बरों का कनेक्शन केवल

अपने साथ ही रख रहा हो, पार्टी के नाम पर जिसने काफ़ी रुपया इकट्ठा कर लिया हो, वह पार्टी को कितना नुक़सान पहुँचा सकता है ?......... सब से बड़ी बात तो यह है कि लड़कियों से जो उसने सम्बन्ध बना रखे हैं, उनका परिणाम क्या होगा ? क्या हम गर्भपात की दवाइयों का इंतजाम करते फिरेंगे ? अब तक क्रान्तिकारियों के विरुद्ध चाहे जो कुछ कहा जाता रहा हो, परन्तु उनके चरित्र पर किसी ने संदेह नहीं किया था और फिर जो रुपया पार्टी के नाम पर ले-लेकर उड़ाया जाता है, उसके लिये जवाबदेही किसके सिर है ? पंजाब में हम जिससे जाकर रुपये की बात करते हैं वह यही कहता है—हरीश ले गया ! कम-से-कम पंजाब तो हमारे हाथ से गया। वहाँ तो पार्टी की ओर से मुख दिखाने के लायक हम नहीं रहे। आगे और क़दम बढ़ाने से पहले आप इस बात को सोच लीजिये। जब तक इसका उपाय न हो, हम पंजाब में कुछ नहीं कर सकते।"

अखिल के साथी बंगाली ने गम्भीर स्वर में कहा—"बट पंजाब इज़ वेरी इम्पोर्टेण्ट !" (पंजाब का तो विशेष महत्व है !)

अली ने बी० एम० की ओर देखकर कहा—"तुम्हारा मतलब क्या है, हरीश को शूट (गोली मार देना) कर दिया जाय ?"

अली की बात से सभी चौंक उठे। केवल दादा निश्चल बने रहे।

बी० एम० ने कहा—"यह आप लोगों को निश्चय करना है। स्थिति जो है, मैंने आपके सामने रख दी है।"

अली ने फिर बी० एम० की ओर देखते हुए कहा—"लेकिन अब तक उसने क्या किया है, उसका कितना प्रभाव है, यह आपको मालूम है।"

"यदि आप उसे पार्टी से अधिक महत्व देते हैं तो दूसरी बात है।"—बी० एम० ने उत्तर दिया।

"नो नो' नोबोडी इज़ ग्रेटर दैन पार्टी (नहीं, पार्टी से अधिक महत्व किसी का नहीं) ! अखिल ने सिर उठा दृढ़ स्वर में कहा।

अपने नाख़ूनों की ओर देखते हुए जीवन बोला—"लेकिन अब तो वह पार्टी के नाम पर काम नहीं कर रहा।"

"परन्तु उसका रुख़ पार्टी मे उदासीन नहीं वह पार्टी के क्षेत्र पर कब्ज़ा कर रहा है।"—बी० एम० ने उत्तर दिया।

अखिल ने सिर हिलाकर कहा—"शूट हिम (गोली मारदो) उसके साथी ने समर्थन किया—"यस (हाँ मारदो)।"

अली ने पूछा—"केवल मतभेद को इतना उग्र रूप देना क्या उचित है? जो कुछ बी० एम० ने रुपये या लड़कियों आदि की बाबत कहा, वह ठीक हो सकता है परन्तु दादा आप एक बार उधर जाकर देख क्यों नहीं आते।"

बी० एम० ने कहा—"दादा को पंजाब ले जाने की ज़िम्मेवारी मैं नहीं लेता। जिस हालत में वह यहाँ से गया है·······सब कनेक्शन (सूत्र) उसके पास है·······" दादा ने अपनी मूँछें दाँत से काटते हुए सिर ऊँचाकर कहा—"देखूँगा, मुझ पर कौन हाथ उठाता है। मैं जाऊँगा·······हरीश।···········ऐश बुरी चीज़ है, यह लड़कियों का झगड़ा!·······सन् सत्रह में भी एक दफ़े ऐसा हो चुका है!"

अखिल ने कहा—"नहीं यह कुछ नहीं, अपना आदमी का हमको एतबार करना है शूट हिम?" उसके साथी ने भी समर्थन किया—"यस-यस"! दादा ने सुझाया—"यह बहुत गम्भीर मामला है·······।"

बी० एम० ने पूछा—"आपका मतलब,·····················इसमें भय है।"

दादा ने उसकी ओर घूर कर कहा—"भय नहीं, मैं किसी की परवाह नहीं करता। लेकिन जब निश्चय करोगे तो करना होगा।"

अखिल और उसके साथी ने फिर ज़ोर दिया—"यस-यस।"

"तुम क्या कहते हो जीवन ?"—दादा ने पूछा।

"जो आप कहें।"

"मैं कुछ नहीं कहता, अपना वोट दो!"

जीवन ने उत्तर दिया—"जो पार्टी कहे?"

"पार्टी तुम्हारे सामने है"—दादा झुँझला उठे। उन्होंने बी० एम० की ओर देखा।

उसने उत्तर दिया—"शूट"! अखिल के साथी ने कहा—"यस, शूट।"

जीवन ने सिर उठाये बिना ही कहा—"यस शूट!"

दादा के आगे अली था। उसने दादा की ओर देखकर कहा—"मैजोरिटी (बहुमत) का निर्णय मंजूर है।"

कुछ देर चुप रहकर दादा ने कहा—"वह पंजाब जायगा!" फिर बी० एम० की ओर देखकर उन्होंने पूछा—"तुम्हें दूसरा आदमी कौन चाहिये?"

"जीवन!"—बी० एम० ने उत्तर दिया।

जीवन की ओर देखकर दादा ने पूछा—"मंजूर है?"

"ज़रूर!"—जीवन ने आँखें उठाकर कहा।

४

मज़दूर का घर

हरिद्वार पैसेंजर लाहौर स्टेशन पर आकर रुकी। मुसाफ़िर प्लेटफ़ार्म पर उतरने लगे। रेलवे वर्कशाप का एक कुली, कम्बल ओढ़े और हाथ में दो औज़ार लिये, लाइन की तरफ़ उतर गया। ग़लत रास्ते से आदमी को जाते देख, एक सिपाही ने टोका—"अरे, कहाँ जाता है........टिकट दिखाओ ?"

कुली ने लौट, गिड़गिड़ाते हुए टिकट दिखा दिया।

"यह रास्ता है ?........इधर कहाँ जाता है ?"—सिपाही ने फिर सवाल किया।

"हुज़ूर, इधर से क्वार्टरों को निकल जाऊँगा। उधर लम्बा चक्कर पड़ेगा।"

सिपाही लौट आया और कुली एक गज़ल—

"सोज़े गम हाए निहनी देखते जाना,
किसी की ख़ाक में मिलती जवानी देखते जाना........"

गाता हुआ रेल का अहाता लाँघ, स्टेशन के पिछवाड़े कारखानों की बीच से मुड़ती हुई सड़कों पर चलने लगा।

दिसम्बर के दिन लाहौर की सर्दी। कोहरा और धुआँ छाई सड़कों पर बिजली की रोशनी में कठिनाई से केवल कुछ गज़ दूर तक दिखाई दे पाता था। धुआँ आँखों को काटे डाल रहा था। बिजली के लैम्पों के नीचे धुएँ और कोहरे से भरी हवा में प्रकाश की किरणें छोलदारियों के रूप में केवल कुछ दूर तक फैलकर समाप्त हो जातीं। युवक कुली गुनगुनाता चला जा रहा था। अँधेरे मोड़ों पर पहुँच, वह घूमकर, सड़क पर जहाँ-तहाँ फैले प्रकाश की ओर नज़र दौड़ा लेता। मिल के क्वार्टरों

के समीप पहुँच वह बीड़ी जलाने के लिये खड़ा हो गया और कुछ देर पीछे की ओर देखता रहा। किसी को पीछे आते न देख, वह क्वार्टरों की लाइन में घुस गया।

युवक ने बोरी के टाट का फटा पर्दा पड़े एक क्वार्टर के दरवाज़े की साँकल खटखटाई।

"कौन है?"—भीतर से प्रश्न हुआ।

"अख़्तर! किवाड़ खोल, मैं हूँ"—युवक ने उत्तर दिया।

"कौन?"—भीतर से दूसरी बेर आवाज़ आई।

"मैं हूँ·······सर्दार!"

सर्दार वही युवक था, जिसे हम कानपुर में हरीश के नाम से जान चुके हैं।

किवाड़ खुल गये। भीतर पहुँच किवाड़ों की साँकल लगाते हुए हरीश ने कहा—"सलाम भाभी! अख़्तर क्या कर रहा है?·······सो गया?"

"जिओ, बड़ी उम्र हो! जवानी बढ़े"—औरत ने जवाब दिया। वह लाल रंग की फुलकारी (रेशम से कढ़ा खद्दर का दुपट्टा) ओढ़े हुए थी। शरीर पर मोटे कपड़े की सलवार और कुर्ता था। सख़्त सर्दी के कारण नाक मुँह दुपट्टे में ढँके वह सिमटी जा रही थी। औरत की आवाज़ में गहरी उदासी अनुभव कर हरीश ने पूछा—"क्यों भाभी, क्या है?"

दुपट्टे से आँखें पोछते हुए भाभी ने उत्तर दिया—"क्या बताऊँ बीरा, न जाने 'उसे' क्या हो रहा है शाम से! सूरज डूबे आकर मुझसे कहने लगा,—तू लड़की को लेकर गाँव चली जा। एक बोतल शराब लाकर रख ली है। मुझे भेज देने के लिये ज़बरदस्ती करने लगा। मैंने कहा—चाहे मुझे मार डालो, मैं नहीं जाऊँगी। एक कसाइयों का-सा छुरा भी कहीं से ले आया है। दिखाकर कहने लगा,—बहुत ज़िद्द करोगी तो मार भी डालूँगा। मैं रोने लगी।·······मैंने कहा—मार

डाल ! मैं तुझे छोड़कर नहीं जाऊँगी। तब से छुरा लिये कम्बल ओढ़े कोने में बैठा है।.......बोतल पास रक्खी है।"

"........पी होगी ?"

"पी तो नहीं अभी"—भाभी ने आँखें पोंछते हुए उत्तर दिया—"पर न जाने क्या सोच रहा है ? मुन्नी प्यार से पास आई तो उसे फटकार दिया। कहने लगा—"हटा परे इसे।"

"हूँ, अच्छा........भीतर आओ"—कहता हुआ हरीश भीतर गया।

क्वार्टर में आगे एक छोटा-सा सहन और फिर कोठरी थी। कोठरी में, दरवाज़े के एक ओर चूल्हा था। सामने घड़े और कुछ कनस्तर-डिब्बे धरे थे। दाईं तरफ़ की दीवार पर खूँटियों में अलगनी बाँध कुछ कपड़े टँगे हुये थे। नीचे एक खाट पर मैला फटा लिहाफ़ बिस्तर पर पड़ा था। चूल्हे पर रखी मिट्टी के तेल की ढिबरी से कोठरी के फ़र्श पर कुछ लाल-सा प्रकाश और छत पर धुआँ फैल रहा था। चूल्हे में जली लकड़ियों के कुछ अंगारे थे। खाट के पास, फ़र्श पर कम्बल ओढ़े, अख़्तर बैठा था।

हरीश ने आकर पुकारा—"अख़्तर भैया !........क्या बात है।"

अपनी छँटी हुई दाढ़ी खुजा अख़्तर ने गर्दन उठा पूछा—"सर्दार ?........आ बैठ सर्दार !"

"तुझे हुआ क्या है ?"—हरीश ने पूछा !

अख़्तर एक गहरी साँस खींच सिर झुकाकर बोला—"सर्दार मेरा एक काम करेगा ?........मुझे तेरा भरोसा है।"

"जो तू कहे, मैं तैयार हूँ"—हरीश ने अख़्तर के पास बैठते हुए कहा।—"जमीला और लड़की को तू घर पहुँचा देगा ? ख़तरा तो तुझे है ; लेकिन तेरे गाँव से चार मील का फ़रक है, तुझे कोई क्या पहचानेगा ;........कर सकता है इतना ?"—अख़्तर ने उसकी ओर देखते हुए पूछा।

"ख़तरे की बात तू जाने दे, लेकिन भाभी को भेज क्यों रहा है ?"

"इन्हें अभी लेकर चला जा"—अख़्तर ने ज़ोर दिया।

"अरे तू बतायगा भी ?.......बड़ा अफ़सोस है, मुझसे बात छिपाता है.......कभी तुझसे मैंने पर्दा किया है ?.......वह छुरा कहाँ है ?"—हरीश ने पूछा। जमीला चूल्हे के पास बैठी घुटने पर ढोड़ी रक्खे कातर दृष्टि से दोनों मित्रों की ओर देख रही थी।

"हूँ !"—एक गहरा साँस अख़्तर ने खींचा और जमीला की ओर देखकर कहा—"तू ज़रा बाहर चली जा।"

जमीला उठ खड़ी हुई; परन्तु उसकी आँखों से आँसू टपक पड़े। "ठहर भाभी"—हरीश ने कहा और फिर अख़्तर को सम्बोधन कर बोला—"तुझे भाभी का एतबार नहीं ? अगर यह ऐसी ही होती तो मैं यहाँ बैठा होता ?"

"तू नहीं समझता, बात कुछ ऐसी ही है।"—अख़्तर ने समझाया।

"अच्छा भाभी, एक मिनट के लिये तू सहन में चली जा।"—हरीश ने कहा। जमीला रोती हुई सहन में चली गई। हरीश ने अख़्तर के कंधे पर हाथ रखकर पूछा—"हाँ, अब बता ?"

अख़्तर दाँत से होंठ काट गहरी साँस लेकर बोला—"हेड मिस्त्री ने मेरी ज़िन्दगी बरबाद करदी। मेरा मौका था फिटर बनने का। तीन साल से वह मेरी तरक्की रोके है। पिछले बैसाख में मैंने उसके आगे हाथ जोड़े, मिन्नत की। तू जानता है, अब बुढ़ापे में ज़ोर की मेहनत नहीं होती। फिर यह लड़की और होगई। एक लड़का है। कुछ तरक्की हो तो काम चले। मेरे साथ के जहूर और हरनामसिंह दो-दो साल से फिटर बने हैं। साठ-सत्तर ले रहे हैं। मेरे वही छब्बीस ! हरामी....... कोई न कोई झूठी शिकायत कर देता है। उसने मुझसे अस्सी रुपये माँगे। चालीस में जमीला की नथ बनिये के यहाँ रखी, चालीस उससे उधार लिये, अस्सी उसे पूजे। बनिये का पाँच रुपये महीना सूद इकट्ठा

हो रहा है। तीस रुपये यह हो गये। खुद ढाई सौ महीने के मारता है, पचास-साठ ऊपर से............अब मौका था, तो कहता है, तूने मुझे दिया ही क्या है?........वह बाह्मन का नया लौण्डा आया है, उसे साल भर नहीं हुआ—जाबर का भानजा—उसे फिटर बना दिया है। जानता है क्यों?........गाँव से बीबी का नया गौना कराके लाया है न! और वह मिस्त्री के घर बच्चों को खिलाने जाती है और वहाँ हरामी साला............मिस्त्री उससे खेलता है............लाइन में कितनी ही औरतों को साला पकड़ मँगवाता है........आज मुझे गाली दी उसने और कहता है, यह बड़ा पर्देवाला है............समझा तू! यहाँ लाइन से कोई उसके घर झाड़ू लगाने जाती है........कोई कपड़े धोने........ कोई बच्चे खिलाने............समझा! यह ज़िल्लत बर्दास्त नहीं होती सर्दार! अपने बच्चे भूखे मरें........इन सालों का पेट भरें और फिर ऊपर से यह बेइज्जती............तू इन दोनों को गाँव पहुँचा दे। मिस्त्री तीसरे पहर एक दफ़ा इंजन देखने जाता है। आज मैं साले को खत्म कर दूँगा............और एक उस कश्मीरी को और फिर........क़ैद मुझे होना नहीं है। अपने आपको ख़तम कर दूँगा। तू समझता है न........ तू ही अपना एक दोस्त है............तू बहादुर आदमी है....तू समझता है............इसीलिये तेरा भरोसा कर रहा हूँ, समझा........?"

"हूँ"—हरीश ने हामी भरी—"और भाभी?........उसकी आँखों की तरफ़ देखा है? रो-रोकर मर जायगी?"

"तू भी तो घर-बार छोड़े बैठा है, तेरे घरवाले नहीं रोते? इसे कह देना यह भी वहीं चली जायगी?"

"मेरी बात कहता है? अख़्तर, मैं अपनी इज्ज़त के लिये घर बार छोड़कर आया हूँ?"—हरीश ने पूछा—"और फिर वह दिन भूल गया जब बीमार पड़ा था? साल भर तुझे भाभी ने लोगों के बर्तन मल-मलकर पाला है........उसका तुझ पर कोई हक़ नहीं? और तू

तो कभी का जेल में होता, या फाँसी चढ़ गया होता। याद है जब रेलवई से निकलकर तू बेकारी में वह बटुआ चुरा लाया था.........रो-रो कर इसने क्या हाल किये थे?............तुझे यह न सुधारती तो तेरा क्या होता? और तू उसे रोने को छोड़ जायगा?........शरम नहीं आती? और यह बोतल किस लिये लाया है?............यों हौसला नहीं होता.......शराब पीकर खून करने जायगा? और फिर तेरे बच्चों का क्या हाल होगा?"

"इसी ख़याल से तो कमज़ोरी आ जाती है सरदार! तभी तो यह बोतल लाया हूँ। तू जानता है, जबसे जमीला आई है, इसने मुझे कभी पीने नहीं दी............

"तुझे तो मालूम है, इसने मेरी छुड़ाई किस तरह? कारखाने से निकल मज़दूरों के साथ मैं ठेके चला जाता था। यह कारखाने के दरवाज़े पर पहुँच जाती। मज़दूर हँसने लगे। मुझे बड़ी शरम आई। घर आकर मैंने उसे मारा। पहले नशे में मैंने इसे एक-दो दफ़े मारा था। उस रोज़ कहने लगी—"अच्छा है न, मारो! होश में रहकर मारो! पता तो लगेगा मारा है। मुझे अपना नीला बदन इसने दिखाया। मुझे ऐसा डर मालूम हुआ! मैंने उसका बदन छूकर कसम खाई, नहीं पिऊँगा........फिर नहीं पी। उससे पहले बीस दफ़े क़ुरान की कसम खाकर फिर पी ली थी।"—गहरी साँस छोड़कर अख़्तर ने कहा।

"अब आया होश!"—"वह बाहर सर्दी में मर रही है। यह सुन, उसके रोने की आवाज़!...........भाभी, भाभी! भीतर आओ!"—हरीश ने पुकारा।

जमीला भीतर आ गई। वह फूट-फूटकर रोने लगी। हरीश ने अख़्तर की ओर देखकर कहा—"शरम नहीं आती....चुप करा उसे।"

अख़्तर ने छत की ओर देखकर साँस खींची—"जब उस इंजीनियर की बात सोचता हूँ, ख़ून उबल उठता है सर्दार!"

"मिस्त्री को तू रहने दे। उसे मैं ठीक करा दूँगा"—हरीश ने जमीला की ओर संकेत करके कहा—"उधर देख ज़रा और फिर यदि किसी तरह नहीं मानता तो छोड़ झगड़ा..........मुझे तो यों भी मरना ही है। तेरी ही बात पर सही। तेरे बच्चे क्यों बरबाद हों? मेरा बचना तो मुश्किल है अब?"

"हैं क्यों?"—अख़्तर ने पूछा।

"यही, मेरे साथी मुझसे बिगड़ गये हैं।"

अख़्तर तड़प उठा........"सचमुच? तो फिर तू यहीं रह!"

जमीला अब भी रो रही थी। हरीश ने कहा—"भाभी, मैं दो दिन से भूखा हूँ और तू तो खामुखाह रो रही है। यह ले........" उसने अख़्तर का छुरा और बोतल ला जमीला के पाँव के पास रख दिये और फिर दोहराया—"भाभी मैं दो दिन से भूखा हूँ, सुनती है!........अब तुझे चली जाने को कोई नहीं कहेगा।" जमीला फफक-फफक कर और रोने लगी। हरीश ने अख़्तर से कहा—"उठ एक गिलास पानी पी, भाभी को पिला और मुझे भी दे........चुप करा उसे!"

अख़्तर ने बैठे-ही-बैठे कहा—"चुप कर जा जमीला, हो गया, अब जाने दे!" जमीला चुप नहीं हुई। हरीश ने अख़्तर को धकेल कर कहा—"उठ, उसे एक गिलास पानी पिला।"

हरीश के धक्के से अख़्तर हँस पड़ा।—"जाने भी दे यार"—उसने कहा। हरीश माना नहीं, फिर धमकाकर बोला—"उठ, पानी पिला उसे....और माफ़ी माँग!"

"ले उस्ताद!"—कहकर अख़्तर उठा। टीन के गिलास में पानी ले जमीला के पास जा उसने कहा—"ले पीले तेरे देवर का हुकुम है। बस कर, अब हो गया!"—जमीला ने मानो सुना ही नहीं; वह रोती रही।

हरीश ने अख़्तर को इशारा किया जमीला के पैर छूने का। हँस

कर अख़्तर ने कहा—"ले बाबा तेरे पाँव पड़ता हूँ, पीले, क्यों मुझे पिटवाने की सोच रही है। और नहीं मानती तो यह ले"""जमीला के पाँव से अख़्तर ने हाथ छुआ दिया। झनककर जमीला ने कहा—"मुझे अब न छेड़ो, बस अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी।" "ले सुन लिया"—अख़्तर ने हरीश को सम्बोधन किया। हरीश ने होठों पर हँसी दबा फिर पाँव की ओर संकेत कर छूने को कहा।

"अच्छा तो फिर पैरों पर सिर रखदूँ ?"—अख़्तर ने हँसकर जमीला से पूछा। और भी क्रोध दिखा उसने अख़्तर का हाथ झटक दिया—"बस, कह दिया मैंने, मुझे तंग न करो ! मैं अब यहाँ नहीं रहूँगी।"

"अच्छा न रहना, मैं भी तेरे साथ चलूँगा, यह गिलास पीले नहीं तो मेरे मरे का........"

"चुप करो !"—क्रोध में मुँह उघाड़ कर जमीला ने धमकाया।

"पी, यह पानी का गिलास ! नहीं तो कसम देता हूँ........"

"मेरी कसम जो मुझे कसम दे........।"

"तेरी कसम बड़ी है या मेरी........?"—अख्तर ने पूछा।

"बस मैं नहीं जानती।"

हरीश हँस रहा था। उसने कहा—"अच्छा भाभी पानी न पिये तो मेरी भी कसम, खुदा की, कुरान की सारी दुनिया की कसम !"

"हाँ अब सब लोग मेरे पीछे पड़ गये !"—आँसू पोछते हुए जमीला ने कहा—और गिलास से एक घूँट ले लिया। "नहीं नहीं, सारे गिलास की कसम है"—हरीश ने दोहराया।

"अब न पिया जाय तो ?"—जमीला बिगड़ी।

"तो फिर कसम आती है........" हरीश ने धमकी दी।

जमीला ने जबरदस्ती ज्यों-त्यों पानी पी लिया। हरीश ने कहा—"हाँ अब खाने-पीने की बात करो"""मुझे सचमुच बड़ी भूख लगी है।"

मानो होश में आ अख़्तर ने पूछा—"हाँ बनाया क्या है, जमीला ?"

"बनाया है पत्थर ! क्या लाके देगये थे ? मुन्नी भी दाल के लिये रोती-रोती सोगई ।"

"और तू बोतलों पर पैसे ख़राब करने लगा साले !"—हरीश ने अख्तर को डांटा ।

"अब उसकी याद न दिला !" अख़्तर ने गहरी साँस खींची ।

"आटे में नमक-बेसन डालकर रोटियाँ थाप ली हैं ।"

जमीला ने अख़्तर को बताया ।

अपने कुरते की जेब टटोल अख़्तर ने हरीश से कहा—"ठहर, मैं चार पैसे का सालन लिये आता हूँ । तू क्या खायगा रोटी ऐसे ?"

"भाभी गुड़ नहीं है ?"—हरीश ने पूछा । "है तो, मुन्नी को भी गुड़ से ही तो खिलाई·······थोड़ा घी भी है, मिला दूँगी·······लाने दे न सालन·······पर बाज़ार का सालन क्या खायगा, निरे छिछड़े होंगे ।"

"देख तो नखरे ?"—अख़्तर ने कहा । "बाज़ार का सालन क्या खायगा ?·······रोज़ इसकी माँ रोग़नजोश बनाकर इसके लिये बैठी रहती है न ?"

"हाय सच्ची ?"—जमीला करुणा से हरीश की ओर देखने लगी ।

"अरे भाभी को ही अब माँ समझ लिया है····अब तू इस जाड़े में बाहर मत जा, गुड़ घी तो है और क्या चाहिए ? ला भाभी जल्दी कर !"

चूल्हे के कोयले उभार कर जमीला ने एक मिट्टी के बर्तन से तामचीनी की कटोरी में घी उड़ेल चूल्हे में रख उसमें गुड़ छोड़ दिया । कटोरी पति और हरीश के बीच रख उसने कहा—"रोटियाँ बिलकुल ठण्डी हो गई हैं, गरम कर-करके देती जाती हूँ ।" एक रोटी सेंक उसने उन दोनों के सामने मिट्टी की एक रकेबी पर रख दी ।

मुँह में रोटी का क़ौर भरते हुए हरीश ने कहा—"भाभी तू क्या खायगी ? यह तो सब हम ही खा जायँगे ?"

"हाय-हाय अल्ला रखे, तू खाता ही क्या है ? खा तू, मुझे बहुत

है। घर में आटा बहुतेरा है।" और फिर हरीश के मुँह की ओर देखते हुए उसने कहा—"देखो तो, मुँह कैसे सूख गया है?........कहाँ-कहाँ फिर आया?"

"पूछो मत भाभी, बड़ी-बड़ी दूर!"—हरीश ने जवाब दिया।

"ये बम बनाकर सुराज लेता फिरता है न? अरे तुम बाबू—बनियों से कहीं सुराज लिया जाता है? इन्हें तो जायदातों की फिक्रें हैं। हमें कहो न मज़दूरों और दिहात के लोगों को, एक दिन में तख्ता पलट कर रख दें।"

"तो फिर पलटता क्यों नहीं? उठ पलट!"—हरीश ने खोंचा दिया। "पलटें क्या?....यह सब मिस्त्री जैसों का ही राज हो जायगा। वह भी तो काला हिन्दुस्तानी ही है........देख ले कैसे ख़ून पीता है?"

"काला हिन्दुस्तानी तो तू भी है!........क्यों हो जायगा मिस्त्री जैसों का राज? तेरे जैसों का ही क्यों न होगा? जो कोशिश करेगा, राज उसी का होगा।"—हरीश ने कहा।

"अरे हमारा राज क्या होगा? हमें अब भी मरना, तब भी। मज़दूरी तो बढ़ नहीं पाती, राज होगा?"—अख़्तर ने चिढ़ाया।

"तुम भी तो निरी मज़दूरी बढ़ाने की बात करते हो।"

"तो और क्या झण्डा उठाया करें कांग्रेस का?"

"अगर तुम सब लोग मिलकर कांग्रेस का झण्डा उठाने लगो तो कांग्रेस तुम्हारी हो जाय? तू ही बता, ज़्यादा तादाद तुम्हारी है या बाबुओं की? अगर तुम लोग एक हो जाओ तो बाबू तुम्हारे पीछे-पीछे नाचें।"

"पैसा जो नहीं उस्ताद!"—अँगूठा दिखाते हुए अख़्तर ने कहा—"पैसे बिना क्या हो?"

"पैसा पैदा तो तुम्हीं लोग करते हो और फिर उन लोगों से माँगते हो........"

"यही तो सारा खेल है........।" अख़्तर ने बीच में टोक दिया—

"अब तो तू दूसरी तरह की बातें करने लगा सर्दार.........., रफ़ीक की तरह। रफ़ीक भी तो यही कहता है........"

"क्या रफ़ीक यहाँ आता है?"—हरीश ने पूछा।

"हाँ बीरा यहाँ आता है! मुझे बड़ा डर लगता है उससे" जमीला बीच में बोल उठी—"मुट्ठी भरका चेंटे जैसा आदमी, कतर-कतर कैंची सी ज़बान चलाता है। चार-चार, पाँच-पाँच यह लोग इकट्ठे हो जाते हैं और हड़ताल की बातें करते हैं और ख़ूब बीड़ियाँ फूँकते हैं। कहता है, एका करो एका! और हड़ताल की बातें सुनाता है। बीरा, मुझे उस छोकरे से बड़ा डर लगता है। पहले रेलवई में बीस आने रोज़ मिलते थे, अच्छे भले—ग्यारह साल पहले। वहाँ हड़ताल में निकाले गये। अब मुश्किल से रोज़ी लगी है। फिर कहीं हड़ताल की तो कहाँ ज़ायँगे? बीरा, तू समझा इसे। इसे तो जो दो बातें सुना देता है, बस उसी के पीछे चलने को तैयार.......!"

"बहुत बक-बक न कर"—अख़्तर ने बनावटी गुस्से से कहा—"तू बड़ी सियानी है न?"

ठोड़ी पर उँगली रख हरीश से शिकायत करते हुए जमीला ने कहा—"हाय-हाय, देख; मुझे तो ऐसे ही डाँट देता है.......मुझे तो बात भी नहीं कहने देता।"

"सुन तो"—अख़्तर ने हरीश को सम्बोधन कर पूछा—"सोयेगा भी यहीं?"—"और कहाँ जाऊँगा अब?"—हरीश ने उत्तर दिया।

मरे तब तो जाड़े में,—रजाई तो एक ही है और वह भी फटी हुई, हम दोनों तो मिलकर गरम हो जाते हैं, अब........"

"फिटे मुँह (छीः छीः) हाथ फटकार जमीला ने कहा—"जरा भी तो शरम नहीं रही।"

हँसकर हरीश ने कहा—"तू अपना गुजारा कर। मैं तेरा यह कम्बल लेके पड़ रहूँगा!"

"यह भी कोई कम्बल है,........भूसा बाँधने लायक भी नहीं।"—कम्बल की ओर इशारा कर उसने कहा—"बता फिर जमीला ?"

"तुम दोनों अपना गुज़ारा करो, मेरी फिकर छोड़ो"—मुँह फिरा कर हरीश ने उत्तर दिया।

"आज तो मारा तेरे देवर ने"—घुटना हिलाते हुए अख़्तर ने कहा। "कहती हूँ, मैं उठ जाऊँगी हाँ सब छोड़ कर, फिर ऐसी बात करोगे तो"—लज्जा और बनावटी क्रोध में आँखें दिखा नाक पर दुपट्टा रख जमीला ने कहा।

"बड़ी तू दीवार फोर जायगी........हाँ, सुन सरदार! यों करें, इस बोतल में से एक-एक घूँट पीलें, फिर चाहे बाहर ओस में पड़े रहें........क्यों!"—अख़्तर ने राय दी।

"फिर बोतल की बात ?....यह बोतल ही तो तुम लोगों को बरबाद किये डाल रही है।"

"हाँ और क्या"—जमीला ने समर्थन किया। हरीश कहता गया—"रोज़ पीकर सर्दी काटने से एक रजाई न बनवा ले आदमी ?"

"लगा तू फिर कांग्रेसी छाँटने"—अख़्तर ने चिढ़कर जबाब दिया—"बचा रोज़-रोज़ काटनी पड़े तो पता चले। यहाँ मज़दूर चार पैसे में रात काटते हैं। रजाई बनती है पाँच रुपये में। जब तक पाँच होंगे, तब तक बन्दा जहन्नुम पहुँच जायगा।" अख़्तर हरीश को सुना कहता गया। और फिर तू करतारसिंह की छुड़ा दे तो जानूँ ? पट्ठे की दस आने की दिहाड़ी है, चार पिल्ले पीछे लगे हैं।"

"हाय रोटी भी खाओगे या बकते ही रहोगे ?"—जमीला ने टोका। "और बीबी भी कमबख़्त की हरसाल ब्याह जाती है। तीन-चार महीने का क्वार्टर का किराया सिर पर रहता है। बनिया साले को अलग नोच-नोच खाये है। वह शेर, और जो हो, कारखाने से आया कि एक कुलिया चढ़ाकर पड़ जाता है। यह दिन तो कटा, अगले का अल्ला मालिक।"

"न, पर क्यों बच्चे पैदा करता है ?"—हरीश झुँभला उठा।

"वह करता है बच्चे पैदा ?·······तू बता करे क्या ?·······अब तुझे क्या बताऊँ ?"—जमीला की ओर संकेतकर—"अब इसके सामने क्या कहूँ·······अरे दस घण्टे जानवर की तरह मज़दूरी करके आदमी आये तो फिर करे क्या ?·······अपने आपको भूले किस तरह ?····अगर मेरा बस चले तो इन साले सब मज़दूरों की घरवालियों को जहर देदूँ और यहाँ लाइन में सौ रण्डी लाकर रख दूँ।"

"तोबा-तोबा·······क्या कुफ़् बकते हो ?·······खुदा से डर नहीं लगता ?"—जमीला ने कहा—"लाहौल-विलाकुव्वत !"

"कुफ़् की बच्ची ! पता लग जाता जो चार-पाँच नोच-नोच खाते। दो हैं सो एक को अम्मा के पास छोड़ आई है कि खा-पीके पल जायगा ! तू ही बता तेरे ही होने लगते तो तू कहाँ रखती ?·······" हरीश की तरफ़ देखकर—"और तुझे मालूम है यहाँ उस कश्मीरी ने पाँच-सात फटे जूते जैसी औरतें रक्खी हुई हैं। साला दुअन्नी-दुअन्नी में भुगताता है और रात भर में अपने पन्द्रह-बीस खरे कर लेता है। छठे महीने पुरानियों को हाँक कर, चार-छः फटीचर और कहीं से ले आता है। इस साले ने भी सारी लाइन में सुज़ाक, आतशक फैला रक्खी है···· ·······इस साले को भी गोली मारनेवाला कोई नहीं मिलता·······!"

"अरे सुन तो, तमंचा है तेरे पास ? बस मुझे तीन आदमियों को मारना है, एक इंजीनियर, दूसरा साला ये कश्मीरी और तीसरा वो हरामी जाबर ! * इनके मारे सारी लाइन बरबाद है। यह जाबर हरेक मज़दूर से महीनों दुअन्नी रुपया लिये जाता है। साले ने अपना साहूकारा अलग खोल रखा है। आना रुपया रोज़ का सूद लेता है। और जब अपने मज़दूर एक होने लगते हैं, साला दो-चार को निकाल बाहर

---

* जाबर—कारखाने के लिये मज़दूर भरती करनेवाला ठेकेदार।

करता है और नये मज़दूर ले आता है। साले ने बीसियों खुफ़िया लगा रखें हैं। तेरी कसम, इसने रफ़ीक को पीटने के लिये गुण्डे छोड़ रखे हैं! इन तीन को तो मैं ठण्डा कर दूँ। सच कहता हूँ, हज़ारों के दिल ठण्डे हो जायँगे।"

जमीला ने दोनों हाथ कानों पर रखकर कहा—"हाय-हाय बीरा, देख तो क्या हो रहा है इन्हें! कैसी बातें कर रहे हैं?"

चिढ़ के अख़्तर ने कहा—"क्या कह रहा हूँ.......तू ही बड़ी राण्ड हो जायगी? उन्होंने हज़ारों राण्डें कर दीं....... बैठ जाना जाके तू किसी के घर......."

"जमीला ने फिर टोका—"तौबा, तौबा, क्या बदज़बान बोलते हो, खुदा नीयत की सज़ा देता है......."

अख़्तर और बिगड़ उठा—"देता है खुदा सज़ा....सो रहा है क्या? ....दिखाई नहीं देता उसे? यह साले हज़ारों का ख़ून पी रहे हैं?"

"अरे बकता जाता है, चुप कर"—हरीश ने डाँटा—"तू इन्हें मार देगा तो कल दूसरा इंजीनियर, कश्मीरी और जाबर आ जायँगे, क्या बना लेगा तू?.......गाज़ी (शहीद) होने को फिरता है? खुद तो रिश्वत देता है, चला है जाबर को मारने?"

"रिश्वत न दूँ तो मर जाऊँ? यों भी मरना वों भी मरना?"

"अक़ल से बात कर.......मरना है तो ढंग से मर, कि कुछ बने?"

"क्या करूँ फिर? एक तो इस औरत के मारे परेशान हूँ।"

"अरे ये न होती तो तू पी-पीकर गधा बन गया होता?"

कुछ देर के लिये दोनों चुप हो गये। अख़्तर दियासलाई की सींख से दाँत खोद रहा था। अपने भूत और भविष्य जीवन की समस्यायें व्यक्तिगत और श्रेणीरूप से उसके सामने आरही थीं। हरीश के सामने प्रश्न था—अपने साथियों से मतभेद प्रकट हो जाने पर अब उसके सामने कौन मार्ग है? अब तक अपने विचारों और साथियों का मोह

उसे हतोत्साहित कर रहा था। संतुष्ट थी तो केवल जमीला। अपने हिस्से की रोटियाँ हरीश को खिला देने के बाद वह संतोष से अपने लिये आटा माँड़ रही थी। इस चुप को फिर अख़्तर ने ही तोड़ा। एक बीड़ी जलाते हुये उसने कहा—"जिधर देखो, है सब तरफ़ झगड़ा ही........"

"यह सब झगड़े मिटाने के लिये ही तो स्वराज्य चाहते हैं, उसे तू कांग्रेसी छौंटना बताता है।"—हरीश ने खाना खा हाथ धोते हुए कहा।

"सुराज हो जायगा तो क्या यह सब नहीं होगा? तू मुझे समझा दे, मैं आज तेरे सुराज के लिये जान देदूँ! चल अभी चल!"—अख़्तर ने तैश में जवाब दिया।

"तू ही बता, क्या इलाज है इसका?"—हरीश ने पूछा।

"इलाज कोई नहीं, बस मरना है और दस बरस में देखना इतने बेकार मज़दूर हो जायँगे कि हमें चवन्नी को कोई नहीं पूछेगा!"

मज़दूरों का ही राज हो जाय तो?.......अगर मज़दूर तीन-चार रुपया रोज़ पाने लगे, तो फिर भी तुम लोग ऐसे पैदा करते जाओगे तो फिर बेकार आखड़े होंगे और फिर तुम्हारी मज़दूरी घट जायगी!"—हरीश ने कहा।

"अरे तब तो मज़दूर साहब हो जायँगे। साहबों के कहीं इस तरह पैदा होते हैं।"—अख़्तर ने जवाब दिया।

"तो फिर उसी की बात क्यों न कहो? रफ़ीक वाली बात"—हरीश ने कहा।

"अच्छा!" कहकर अख़्तर उठा। चूल्हे के पास एक चटाई पर बोरी बिछाकर दोनों साथ लेट गये और दोनों कम्बल मिलाकर उन्होंने ओढ़ लिये। जमीला खाट पर जा लेटी।

अख़्तर के साथ लेटकर हरीश ने पूछा—"मेरे वो अच्छेवाले कपड़े तो सँभाल कर रखे हैं न?"

"हाँ, हैं तो, अलगनी पर रखे हैं जमीला ने अपने नये दुपट्टे में लपेट कर।"

"सुबह ही मैं चला जाऊँगा।........सुन तो, रफ़ीक से मिलाना दोस्त मुझे ?"

"पर तू तो बम वाला है................तू उससे मिलकर क्या करेगा ?................नहीं, अब तो तू दूसरी तरह की बातें करता है, बम बाज़ी छोड़ी दी क्या ?"

"नहीं, अब बम-वम कुछ नहीं........उसी से मिलूँगा ! हाँ तुम्हारे अपने कितने आदमी होंगे ?"—हरीश ने पूछा।

"अभी बोतल खोल दूँ तो सभी अपने हैं, नहीं तो कोई अपना नहीं ?"—अख़्तर हँस दिया—"अभी छाँटी होने लगे, सभी जाबर के क़दम चूमने चल देंगे। वह भी साला चौथे-पाँचवें बेंत फटकार कर सुना देता है,........अब छाँटी होने ही वाली है।"

कुछ ही मिनटों में अख़्तर की नाक बजने लगी। हरीश चित्त लेटा अँधेरे में अपनी बात सोच रहा था। उसका मन चाहा, अख़्तर को उठाकर सलाह ले। परन्तु अख़्तर से वह क्या सलाह लेता ? अख़्तर और उसके साथी दो ही बातें जानते थे, या तो निराशा या खून !

अपने मन की दुविधा भूल हरीश सोचने लगा—मज़दूरों की इस शक्ति को जो आकाश में गरजने वाली बिजली की भांति दुर्दमनीय है, कैसे संगठन के तार द्वारा क्रान्ति के उपयोग में लाया जा सकता है ?

५

तीन रूप

शैलबाला अपने कमरे में बैठी ज़रूरी पत्र लिख रही थी। नौकर ने खबर दी, दो आदमी उससे मिलने आये हैं। लिखते-लिखते उसने कहा—"नाम पूछकर आओ।"

लौटकर नौकर ने उसे एक चिट दिया। चिट देखते ही वह तुरंत बाहर आई। हाथ जोड़, नमस्कार कर दोनों आदमियों को भीतर के कमरे में ले गई। दोनों को सोफ़ा कुर्सियों पर बैठा उसने बी० एम० की ओर देख मुस्करा कर पूछा—"बहुत दिनों में दर्शन दिये, कुशल तो है?"

सरसरी नज़र से बी० एम० के साथी की ओर उसने देखा, बलवान् हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति जिसके चेहरे पर शारीरिक बल की गंभीरता विराजमान थी। आँखें बड़ी-बड़ी जिनसे कोमलता नहीं, दृढ़ता टपक रही थी। शैल ने फिर बी० एम० को धीमे स्वर में सम्बोधन किया—"कब आये? हरीश का क्या हाल है?"

बी० एम० ने अपने पीछे दीवार में खिड़की की ओर संकेत कर पूछा—"यहाँ कुछ बातचीत कर सकते हैं?"

मुस्कराहट की जगह शैलबाला के चेहरे पर गम्भीरता की मुद्रा छा गई। "हाँ" उसने सिर झुकाकर कहा और फिर उठ परदे के पीछे वाले कमरे में जा, उस कमरे का दरवाज़ा इधर से बन्द कर वह अपनी कुर्सी उनके समीप खींच बैठ गई।

बी० एम० ने अपने साथी की ओर संकेत कर धीमे स्वर में परिचय कराया—"आप दादा हैं।"

शैलबाला ने दादा की ओर देख फिर नमस्कार किया और आदर से मुस्कराकर बोली—"आपका चर्चा अनेक बेर सुना था, आज दर्शन हुए।"

बी० एम० ने कहा—"दादा आपसे कुछ पूछना चाहते हैं?"

दादा ने सहसा पूछा—"हरीश कहाँ है?"

कुछ आश्चर्य और आशंका से शैलबाला ने उत्तर दिया—"क्यों?.......मुझे तो नहीं मालूम। लगभग तीन सप्ताह हुए वे यहाँ आये थे।....यहाँ उन्होंने किसी से मिलना था। वो तो शायद आप ही लोगों से मिलने गये थे। उसके बाद वह इधर नहीं आये।"

"इधर तीन सप्ताह में हरीश आपसे नहीं मिला?"—बी० एम० ने पूछा। "आपको मालूम है, वह कहाँ मिल सकता है?" दादा के प्रश्न से शैलबाला के मन में आशंका उत्पन्न हो गई थी कि हरीश फिर गिरफ्तार न हो गया हो! परन्तु बी० एम० के प्रश्न से उसे कुछ और ही बात जान पड़ी।

दादा ने शैलबाला की कुर्सी की ओर देखते हुए कहा—"आपको बता देना चाहिए, वह कहाँ है?"

मानो दादा ठीक बात न कह सके हों, इसलिए बी० एम० ने तुरंत ही खाँस कर कहा—"एक बहुत ही ज़रूरी काम है।"

शैल ने विस्मय से दोनों की ओर देखा। दादा के स्वर का क्रोध और बी० एम० का बात सम्भालने का प्रयत्न दोनों ही उससे छिपे न रहे। उसने विस्मय के स्वर में पूछा—"यह आप लोग क्या कह रहे हैं। मैं कुछ समझ नहीं सकी?"

"बात यह है, पार्टी का बहुत नुक़सान हो रहा है, उसके न मिलने से। और यह आश्चर्य की बात है कि वह यहाँ आये और आपसे न

मिले ?"—बी० एम० ने बात जारी रखते हुए कहा—"क्योंकि यहीं से तो प्रायः हम लोगों के संदेश आते जाते हैं।"

शैलबाला दादा को बिना देखे ही उनके मस्तिष्क में बढ़ते असंतोष को अनुभव कर रही थी। उसकी आशा के अनुकूल दादा ने कहा—"देखिये सीधी बात यह है;—आपके लिये पार्टी की बात का महत्व अधिक है या हरीश की ?"

आगे न-जाने क्या आनेवाला है, इस आशंका में शैलबाला ने विस्मय से फैली आँखों से दादा की ओर देख उत्तर दिया—"महत्व मेरे लिये पार्टी का ही अधिक है परन्तु मैं आपकी बात नहीं समझ पा रही हूँ।"

दादा ने और अधिक तीव्र स्वर में पूछा—"आपका हरीश से क्या सम्बन्ध है ?"

अधिक विस्मित हो शैलबाला ने उत्तर दिया—"क्यों ?........वे मेरे फ्रेण्ड (मित्र) हैं।"

दादा की आँखों के सुर्ख़ डोरे फैल गये। अपने आपको रोकते हुए उन्होंने कहा—"फ्रेण्ड........फ्रेण्ड के क्या माने ? लड़कियों और लड़कों की फ्रेण्डशिप (मित्रता) के क्या माइने ?"

शैलबाला चकित रह गई। कुछ भी उत्तर देने में असमर्थ वह कुछ क्षण फ़र्श की ओर देखती रही। उसका गन्दुमी चेहरा गुलाबी हो गया। दादा को सम्बोधन कर उसने कहा—"मेरे हृदय में आपके लिये बहुत आदर है। मैं समझती थी, आप लोगों के विचार बहुत उदार होते हैं...........लेकिन मैं कुछ और ही देख रही हूँ...........बी० एम० ने स्त्रियों की स्वतंत्रता और पुराने संस्कारों के बारे में कुछ और ही कहा था........ख़ैर, जो भी हो ! मेरे व्यक्तिगत सम्बन्धों से आपको क्या मतलब है, मैं नहीं समझ सकी।" शैल ने विनीत स्वर में बात कहना आरम्भ किया था परन्तु अन्तिम शब्द कहते-कहते उसका स्वर तीखा

हो गया। उसी आवेश में बी० एम० को सुना खिड़की की ओर मुखकर वह कहती गई—"मुझसे जहाँ तक बन पड़े मैं आप लोगों की सहायता करना चाहती हूँ परन्तु अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों की आलोचना मैं पिताजी के अतिरिक्त किसी से भी नहीं सुन सकती।"

दादा के पैरों तले से ज़मीन खिसक गई वे हैरान थे। स्त्री के प्रति सभ्यता के ख़याल से वे इस अपमान को पी गये। अपने निश्वास को रोक मूँछों को दाँत से काटते हुए उन्होंने पूछा—"क्यों; आप क्या पार्टी की मेम्बर नहीं हैं? पार्टी की मेम्बर होकर आप को डिसिप्लिन में रहना होगा। आप जानती हैं, आपने हमारा कितना नुकसान किया है?"

शैलबाला विस्मय से साँस रोके और बी० एम० आशंका से दादा की ओर देख रहे थे। परन्तु इस बात का कुछ भी ख़्याल न कर वे कहते चले गये—"आपने हमारी पार्टी के दाँये हाथ को बेकाम कर दिया। जो आदमी एक दिन अपना सिर हथेली पर लिये फिरता था, आपकी इस फ्रेण्डशिप से आज जान बचाने के लिये जनता के संगठन का बहाना ढूँढ़ता फिरता है·······आप आई थीं हमारी सहायता करने के लिये, आपने हमारा सत्यानाश कर दिया। और अब भी पार्टी के डिसिप्लिन को न मानकर उसका पता बताने से इनकार करती हैं?"

लज्जा, क्षोभ और अपमान से शैलबाला का गला रुँध गया। उसकी आँखों में आँसू आगये, उनकी पर्वाह किये बिना ही उसने कहा—"देखिये आप लोग व्यर्थ मेरा अपमान कर रहे हैं·······आपके आदर का ख़्याल कर मैं यह सुन गई परन्तु आप बढ़ते जाते हैं। कौन कहता है, मैंने किसी को जान बचाने के लिये कहा? (उसने बी० एम० की ओर देखा)···········कौन कहता है मैं पार्टी की मेम्बर हूँ! मुझे मालूम नहीं, और मैं पार्टी की मेम्बर हूँ·······" शक्ति भर उसने आँसू प्रकट न होने देने की चेष्टा की। उसके शरीर में कंपकपी आगई,

आँसू उसके हाथों पर टपक पड़े। अपने आँसुओं से लज्जित हो, दीवार की ओर मुँह कर वह उन्हें आँचल से पोंछ ही रही थी कि बाहर पैरों की आहट सुनाई दी। अधिकार पूर्ण स्वर में उसने कहा—"ठहरो !"

बाहर से आवाज़ आई—"बीबी जी !"

अपने आँसू पोंछ एक हाथ से उन्हें बैठे रहने का संकेत कर वह बाहर गई।

शैल की अनुपस्थिति में दादा ने बी० एम० की ओर देखकर पूछा—"तुमने मुझे बताया था कि वह पार्टी की मेम्बर है·······पार्टी के काम के लिये घर छोड़ना चाहती है ?"

सूखी हँसी हँस बी० एम० ने उत्तर दिया—"आप उसका रवैया देख रहे हैं ?" झुँझलाकर अपना हाथ माथे पर मारते हुए दादा ने कहा—"ओफ़, मैं कुछ नहीं समझ सकता···········कितना अपमान मेरा हुआ ?"

× × ×

शैलबाला के बाहर आने पर नौकर ने उसे एक पुर्जा और एक लिफ़ाफा दिया। पुर्जे पर अंग्रेजी में केवल एक अक्षर h (ह) लिखा था। क्रोध में पागल हो शैलबाला ने कमरे की ओर क़दम बढ़ाया कि कहदे—लो आगया तुम्हारा हरीश, जिसके लिये मेरा सिर खा रहे हो परन्तु एक अस्पष्ट आशंका ने उसके क़दम रोक लिये। लिफ़ाफा हाथ में लिये वह लौटकर बाहर आई। उसे देख हरीश टाँगे से उतर आया।

शैलबाला ने पूछा—"तुम कहाँ से आये ?"

हरीश ने उसकी लाल आँखों की ओर देखकर पूछा—"यह क्या ?"

"कुछ नहीं"—शैलबाला ने कहा—"तुम अभी एकदम चले-जाओ·······कोई तुम्हारी सुरक्षित जगह नहीं है ?"

शैलबाला की व्यग्रता देख हरीश ने बेपरवाही से कहा—"अब मेरी कोई सुरक्षित जगह नहीं·······पर क्यों ?"

कोई मार्ग न देख शैलबाला ने हाथ में लिफ़ाफे को मरोड़ते हुए कहा—"जाओ, यशोदा के यहाँ चले जाओ !"

"वहाँ कैसे जा सकता हूँ ?"—बेबसी से हरीश ने पूछा।

"तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, वहीं जाओ...........आधे घण्टे में आकर तुम्हें ले आऊँगी—जाओ जल्दी करो।"—चिल्लाकर उसने कहा—'ड्राइवर-ड्राइवर, इन्हें छोड़ आओ !"

हरीश को ले मोटर सड़कपर निकल गई। हाथ के लिफ़ाफ़े को खोलती हुई वह कमरे की ओर लौट रही थी। लिफ़ाफ़े के भीतर काग़ज़ पर अँग्रेजी के टाइप में केवल एक पंक्ति थी—Dada and B. M. want to shoot Hari sh. Save him.—A friend of the party (दादा और बी० एम० हरीश के प्राण लेना चाहते हैं। उसे बचाओ—पार्टी का शुभचिंतक)। शैल की आँखों के सामने आग की लपटें नाच गईं। उसके कदम काँप गये। दूसरे क्षण ही उसने मुक्ति का साँस लिया—"हे भगवान !"

नौकर को पुकार शैल ने पूछा—"यह लिफ़ाफ़ा कौन देगया था ? नौकर ने बताया—"दोनों बाबू जब आये, तभी पाँच मिनिट बाद एक बाबू साइकल पर आकर लिफ़ाफ़ा देगये कि बीबी जी के हाथ में तुरंत देना।"

गहरी साँस लेकर अभिमान से सिर उठाये वह कमरे में आई। दादा की ओर देखकर उसने कहा—"आप अपनी पार्टी के डिसिप्लिन की बात करते हैं ? आप कहते हैं, मैंने आपकी पार्टी का सत्यानाश कर दिया ? यह लीजिये अपनी पार्टी का डिसिप्लिन !" कहते-कहते वह पर्चा उसने दादा के सामने कर दिया।

दादा रुक-रुक कर पर्चे को पढ़ रहे थे। पर्चा उनके श्वाँस के प्रहार से काँप रहा था। हाथ बढ़ाकर बी० एम० पर्चा ले लेना चाहता था। शैलबाला ने झपटकर पर्चा ले मोड़कर अपने ब्लाउज़ में खोंस लिया।

बी० एम० ने कहा—"यह पर्चा दे दीजिये !"

शैलबाला ने रूखे स्वर में उत्तर दिया—"मुआफ़ कीजिये, ग़लती होगई, इससे अधिक विश्वासघात नहीं कर सकती !"

दादा उठकर खड़े हो गये। अपने दोनों हाथों की उँगलियाँ पीठ पीछे चटखाते हुए दीवार की ओर देख उन्होंने कहा—"मुआफ़ कीजिये, मुझसे बेअदबी हुई। मुझे कहा गया था कि आप पार्टी की मेम्बर हैं। इसी नाते मैंने आपसे इतना कुछ कहा। वर्ना मुझे आपसे आलोचना करने का कोई अधिकार न था।........मुझे अफ़सोस है।"

इतना कह दादा चल दिये। बी० एम० भी "गुड बाई !" कह दादा के पीछे चला जा रहा था। शैलबाला कई क़दम उनके पीछे-पीछे गई। उसका मन चाहता था दादा से क्षमा माँग ले। उनकी कठोर बातों का उत्तर दिये बिना वह न रह सकी परन्तु उनकी बेबसी सामने वह पानी-पानी हो गई। उसके आत्मसम्मान और लज्जा ने, जो एक ही वस्तु के दो रूप हैं, उसके शरीर को निश्चल कर दिया। उसका मन चाहा, खड़ी होकर रो ले परन्तु उसी समय मस्तिष्क में बिजली-सी कौंध गई—"यशोदा !"

× × ×

शैलबाला के मकान से यशोदा का मकान अधिक दूर न था। कार से वहाँ पहुँचने में हरीश को चार मिनट भी न लगे। इसी बीच उसके दिमाग़ में न जाने कितनी ही बातें घूम गईं। यशोदा के पति अमरनाथ इस समय घर पर न हों तो उसकी जान बचे। लेकिन वे तो होंगे, ज़रूर होंगे। किस तरह आधा घंटा वह वहाँ बितायेगा ? क्यों वह इस समय यशोदा के यहाँ जा रहा है ? इससे कहीं यशोदा ही झंझट में न पड़ जाय। वह न आता तो अच्छा था। उसी समय शैलबाला का अत्यन्त व्याकुल चेहरा उसके सामने आ खड़ा हुआ—"जाओ, जल्दी जाओ ! मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ। आधे घण्टे में

मैं आकर तुम्हें ले जाऊँगी ।" उसकी वह घबराहट, उसका अत्यन्त समीप आकर खड़े हो जाना, दबे हुए परन्तु जोरदार शब्दों में बोलना, उसकी साड़ी का काला किनारा उसकी वह धीमी सी सुगन्ध ! हरीश ठीक तौर पर कुछ निश्चित न कर पाया था कि गाड़ी यशोदा के मकान के सामने जाकर खड़ी हुई । अमरनाथ को वह पहचानता भी तो नहीं । वह क्या करेगा.......क्या कहेगा ?"

ड्राइवर ने गाड़ी का दरवाज़ा खोल दिया । अब पीछे हटने का मौक़ा न था । हरीश उतर पड़ा । गाड़ी फिर चल दी । वह शनैः-शनैः मकान की कुर्सी की दो सीढ़ियाँ चढ़ा । ज़ेब में पिस्तौल को अनुभव किया । कुछ खाँसा फिर गले की नेकटाई को सीधा किया । बैठक का दरवाज़ा खुला ही था । चिक उठाकर वह भीतर चला गया ।

मँझले शरीर के एक स्वस्थ सज्जन खद्दर के कपड़े पहने बैठक में एक ओर सोफ़ा कुर्सी पर बैठे सामने तिपाई पर कुछ लिख रहे थे । जिस समय हरीश ने प्रवेश किया वे अपना फाउण्टेन पेन तिपाई पर रख सामने रखा पानी का गिलास उठाकर पीना ही चाहते थे एक सज्जन को भीतर आते देख गिलास फ़िर उन्होंने ज्यों का त्यों रख अभ्यर्थना से कहा—"आइये !" और सोफ़ा पर बैठने का संकेत किया ।

हरीश ने नमस्ते कह बेपरवाही से बैठते हुए कहा—"मेरा नाम जे० आर० शुक्ला है । मैं 'जिरेमी एण्ड जानसन' कम्पनी में ट्रेवलिंग इंजीनियर हूँ । मकान मेरा यहाँ लाहौर में ही है लेकिन मुझे सफ़र काफ़ी करना पड़ता है ।.......अगर आपको एतराज़ न हो—मे आई हैव ए स्मोक ?—(एक सिगरेट जला लूँ ?)

"मैं मँगाता हूँ"—उठने का उपक्रम करते हुए अमरनाथ बोले ।

"नहीं-नहीं, यह देखिये मेरे पास है"—जेब से एक नये ढंग का सस्ती कीमत का सिगरेट केस निकाल उसे अमरनाथ के सामने कर हरीश ने कहा—"आप भी लीजिये न !"

विनय से हाथ जोड़ अमरनाथ बोले—"शौक़ कीजिये, मुझे आदत नहीं।"

"ओह, लेकिन मेरे पीने से तो आपको बुरा न मालूम होगा ?" हरीश ने उनकी ओर देख मुस्करा दिया ?

"नहीं, नहीं बिलकुल नहीं ! आप शौक कीजिये !" अमरनाथ ने विश्वास दिलाया। दियासलाई जला हरीश ने सिगरेट सुलगाया और अमरनाथ से बचा धुएँ का लम्बा तार छोड़ दिया। इस सब दौरान में वह यही निश्चय कर रहा था—उसे यहाँ कहना क्या है ?

"........हाँ तो बात यह है"—सोफ़े पर आराम से पसरते हुए उसने कहा—"मुझे कम्पनी के काम से सफ़र बहुत करना पड़ता है।........तकरीबन यह समझ लीजिये कि महीने में दो हफ़्ते कम से कम........और कभी-कभी तीन हफ़्ते।"—फिर एक लम्बा कश खींच उसने कहा—"सफ़र में कुछ न कुछ ख़तरा रहता ही है। पिछले महीने मेरा सूटकेस ट्रेन से चोरी चला गया और अभी........आज मैं खुद ही एक्सीडेण्ट से बचा हूँ।"—एक और लम्बा कश उसने खींचा "मुझे कई कम्पनियों के एजेण्टस ने इंशुरेंस के लिये अप्रोच (कहा) किया है। लेकिन मैं कुछ बेपरवाह सा आदमी हूँ और फिर आप यह भी जानते हैं कि जब कोई अप्रोच करे तो आदमी बचने की कोशिश करता है।"—हरीश ने हँस दिया—"हालांकि मुझे स्वयं भी इंजीनियरिंग फ़र्मवालों को अप्रोच करना पड़ता है।"

उसकी हँसी में योग देते हुए अमरनाथ ने कहा—"गुड दैट्स-नाइस (खूब-खूब)।" पानी का गिलास उठाते हुए पूछा—"जल पीजिये न ?"

"आप पीजिये, मैं पी लूँगा, आप पीजिये"—हरीश ने कहा—"यह आप पीजिये और आ जायगा, अभी ज़रूरत नहीं।" अमरनाथ

"हाँ तो"—हरीश ने कहा—"आज मैं बाल-बाल बचा हूँ। यह समझ लीजिये कि हास्पिटल रोड से मैं एक दोस्त की गाड़ी में जा रहा था.......यही गाड़ी जो मुझे अभी यहाँ छोड़कर गई है....कि सामने के मोड़ से एक लारी घूम पड़ी और बाईं ओर से एक टाँगा। मैं नहीं जानता, बस जिंदगी ही थी। लारी और गाड़ी दोनों के मडगार्ड टूट गये। दोस्त के यहाँ पहुँचा। उसने मुझे सलाह दी कि मरना-जीना तो भाग्य की बात है परन्तु आज शाम से पहले अपना बीमा करा लो!" हरीश ने फिर एक लम्बा कश खींचकर दीवार पर लगी घड़ी की ओर छोड़ा—लगभग ग्यारह मिनट गुज़र चुके थे।

अमरनाथ ने हँसकर कहा—"ठीक है, तो जिस बात पर दलील से आपको विश्वास न हुआ, अनुभव ने आपको समझा दिया। मेरा अपना क़ायदा तो यह है ही नहीं कि लोगों के पीछे पड़ा जाय। जैसे आपने फ़र्माया लोग चौंकते हैं। और दरअसल है यह एक सर्विस! चाहिये तो यह कि सोसाइटी और गवर्मेण्ट इसका प्रबन्ध करे। आप जानते हैं रूस में हरएक का बीमा होता है, हरएक का। यह तो एक सामाजिक आवश्यकता है। मैं आपके लिये सब प्रबन्ध कर दूँगा। आप निश्चिन्त रहिये।"

हरीश अधमुँदी आँखों से सिगरेट पीता हुआ अमरनाथ की ओर संतोष से देख रहा था कि भला आदमी समय काटने के कठिन काम में स्वयम उसकी सहायता कर रहा है। अमरनाथ के चुप होते ही हरीश ने फिर कहा—"हाँ तो मेरी शादी भी अभी नई-नई हुई है। तनख़ाह भी अभी कुछ कम ही है। कुल मिलाकर अढ़ाई सौ। सफ़र में खर्च भी होता ही है। और मैं चाहता हूँ दुर्घटना और चोरी के बीमे की पालिसी। सब कम्पनियाँ तो ऐसा करती नहीं। आपकी बीमा कम्पनी स्वदेशी है कुछ स्वदेशी का भी मुझे ख़याल ज़रूर है। तो आप प्रबन्ध ऐसा कर दीजिये कम ख़र्च में बालानशीनी हो जाय.......!" हरीश हँस

दिया—"एक दोस्त से आपकी कम्पनी का ज़िक्र सुनकर आया हूँ।"

"यह तो आपकी कृपा है लेकिन"-अमरनाथ ने उठते हुए कहा—"सर्विस आपको इस कम्पनी जैसी कहीं नहीं मिलेगी? देखिये रेट्स और ज़रूरी काग़ज़ मैं आपको एक मिनिट में भीतर से लाये देता हूँ। मुझे इस समय एक बहुत ही ज़रूरी काम से एक जगह जाना है। आप उन काग़ज़ों को देख लीजिये। और फिर कल या आज शाम को ही मैं आपके यहाँ आ जाऊँगा। ज़रा डाक्टरी मुआइना हो जायगा·······इसमें उलझन का काम कोई नहीं है·······मैं एक मिनट में आया।"

अमरनाथ जा ही रहे थे कि हरीश ने कहा—"अगर तक़लीफ़ न हो, एक गिलास पानी·······"

"अवश्य, अभी लीजिये·······लेमोनेड मँगवाऊँ?" आग्रह से अमरनाथ ने पूछा—"नो नो, प्लेन वाटर (नहीं केवल जल)"—हँसकर हरीश ने कहा।

"बहुत अच्छा"—अमरनाथ दूसरे कमरे में गये और वहीं से पुकारा—"देखना, एक गिलास पानी जल्दी से और भेजना।"

"अच्छा" ऊपर से मांजी की आवाज़ आई और उन्होंने नौकर को पुकारा—"बिशन!" कोई उत्तर न पा उन्होंने यशोदा की ओर देखकर कहा—"बेटी तू ही दे आ, उसे बाहर जाना होगा।"

यशोदा बैठी सिलाई कर रही थी। सिलाई एक ओर रख खीझते हुए उसने कहा—"यह लड़का भी बाज़ार जाता है तो तीन घण्टे से पहले लौटने का नाम नहीं लेता।"

पानी का गिलास लेकर वह नीचे जा रही थी। साड़ी का आँचल ठीक करते हुए उसने सोचा इस समय बैठक में कौन होगा? वे तो बाहर जा रहे हैं? परन्तु बैठक का परदा हटाने पर ग़ैर पुरुष को देख वह ठिठक गई। स्वयम यशोदा को जल लाते देख हरीश सहसा खड़ा होगया। अपना आँचल सम्भालते हुए विस्मय से यशोदा ने कहा—"आप!"

उसी समय अमरनाथ भी दूसरे कमरे से काग़ज़ लेकर आ पहुँचे। यशोदा का विस्मय, उसका 'आप' कहना और हरीश का संकोच उन्होंने देखा। दोनों की ओर सरसरी नज़र उन्होंने डाली। हरीश ने पतलून की जेब में हाथ डालते हुए परिस्थिति सँभालने के लिये यशोदा से पूछा—"आप ठीक हैं?" मैं ज़रा बीमे के बारे में कुछ बात आपसे करने आया था। फिर अमरनाथ की ओर देखकर समझाने के अभिप्राय से उसने कहा—"यहाँ हैं न वो, कांग्रेस में कुछ काम करती हैं, उन्हीं के यहाँ आप को एक दफ़े देखा था।" इतने में यशोदा चली जा चुकी थी।

अमरनाथ अभी स्थिति समझने की कोशिश कर ही रहे थे कि बैठक की चिक से शैलबाला ने झाँका। "आइये, मैं तैयार हूँ"—हरीश ने कहा और फिर अमरनाथ की तरफ़ देखकर बोला—"आपही के यहाँ तो उनसे परिचय हुआ था।"

शैलबाला कुछ घबराहट और जल्दी में थी। अमरनाथ को संक्षिप्त सा नमस्कार कर उसने हरीश से कहा—"आइये!"

अमरनाथ के हाथ से काग़ज ले हरीश ने कहा—"नमस्ते, फिर स्वयम् आऊँगा।" और वह शैलबाला के साथ मोटर में जा बैठा।

हरीश के बाहर चले जाने पर अमरनाथ कुछ क्षण सोचते रहे फिर बाहर जाने की बात भूल, झपटते हुए जीना चढ़ ऊपर पहुँचे। "देखना!" उन्होने यशोदा को पुकारा—"इस आदमी का क्या नाम था?"

यशोदा ने अपनी आशंकित बड़ी-बड़ी आँखें झपका उत्तर दिया—"इन्हें हरीश कहते हैं।"

सिर खुजाते हुए अमरनाथ ने दोहराया 'हरीश?' और कुछ सोचते हुए वे फिर नीचे उतर गये और अचकन पहन जहाँ जाना था चले गये। परन्तु यशोदा का विस्मय, जे० आर० शुक्ला का संकोच और

'हरीश' यह तीनों वस्तुयें एक-एक कर उनके मस्तिष्क में चमकने लगीं। बार-बार वे सोचते—'जे० आर० शुक्ला—"हरीश !"

× × ×

शैलबाला ड्राइवर को साथ न ला खुद ही गाड़ी चला रही थी। कुछ ही कदम वे गये होंगे, हरीश ने चिन्ता के स्वर में कहा—"एक और मुसीबत !"

शैलबाला की नज़र सामने सड़क पर थी। उसने पूछा—"वह क्या ?"

हरीश ने कहा—"यहाँ उसके पति को मैंने अपना नाम बताया था जे० आर० शुक्ला। मुझे क्या मालूम था, यशोदा जल लेकर नीचे आयेगी। अमरनाथ ने उसे मुझे पहचानते देख लिया। अब उससे मेरा ज़िक्र करेगा तो वह नाम बतायेगी हरीश !"

"छोड़ो उसे"—शैलबाला ने कहा—"तुम मेरा पर्स (बटुआ) खोलकर देखो ?"

"क्या है ?" हरीश ने पूछा और उसका बटुआ खोलकर कहा—"यह काग़ज़ ?"

हरीश ने पढ़ा अंग्रेज़ी के टाइप में लिखा था—Dada And B. M. Want to Shoot Harish. Save him.—a Friend of the Party.

चिन्ता से माथे पर त्योरी चढ़ा हरीश ने पूछा—"यह क्या ?"

"यह अभी मुझे मिला है" शैलबाला ने उत्तर दिया—"जब तुम आये थे दादा और बी० एम० भीतर बैठे थे। इसीलिये मैंने तुम्हें यहाँ भेज दिया" सड़क की ओर नज़र टिकाये शैल ने उत्तर दिया।

"अब कहाँ हैं वे लोग ? मैं उनसे मिलूँगा"—हरीश ने झुँझला-कर कहा।

"क्या हो रहा है तुम्हें हरीश ! क्या लाभ होगा इससे ?"—क्षुब्ध हो शैलबाला सामने देखती रही।

"तुम समझती हो, मैं जान बचाने के लिये भागता फिरता हूँ ?.... मैं उन लोगों से एक दफ़े फैसला करूँगा ।"—हरीश ने ज़ोर दिया ।

बाज़ार में भीड़ अधिक थी। शैलबाला ने कहा—"चुप रहो, डिस्टर्ब मत करो, एक्सीडेण्ट हो जायगा । चौक के सिपाही को दाहिनी तरफ़ घूमने का इशारा कर उसने कार घुमा दी। अपेक्षाकृत भीड़ कम होने पर नाराज़गी के स्वर में हरीश ने कहा—"शैल, तुम सुनती नहीं हो ?"

"सुनती हूँ"—कह कर शैल ने गाड़ी को मालरोड की तरफ़ घुमा दिया। दो मिनट में वे मालरोड से फ़ीरोज़पुर रोड की सुनसान में पहुँच गये। यहाँ गाड़ी धीमीकर उसने हरीश से पूछा—"अब कहो, क्या कहते हो ? क्या तुम लड़ना चाहते हो ? उन्हें शूट करना चाहते हो ? बदला लोगे ?"

"नहीं"—हरीश ने उत्तर दिया—"मैं उनसे बात करना चाता हूँ ?"

"और यदि उन्होंने बात सुने बिना तुम पर गोली चला दी ? फिर तो लड़ाई होगी। यह तुम्हारी पार्टी के लिए बहुत अच्छा होगा, क्यों ? जिस आदमी ने तुम्हें यह संदेश भेजा है, वह विश्वासघाती बनेगा। मैं विश्वासघाती बनूँगी। इससे लाभ ?" शैल ने पूछा। हरीश चुप चाप सामने लगे गाड़ी के पुर्जों की ओर देख रहा था। शैलबाला फिर बोली—"तुम्हारा क्या ख़्याल है इस सबका कारण क्या है ?"

हरीश ने बिना सिर उठाये कहा—"यह सब बी० एम० की शरारत है। वजह है........ईर्षा ! वह चाहता है, अपना महत्व बढ़ाना और फिर मेरा ख़्याल है, तुम भी इसकी वजह हो।"—हरीश ने उत्तर दिया।

"तुम यों करो, तुम्हारी राय के लोग भी तो कोई होंगे, तुम उनसे सलाह कर लो। यह पर्चा तुम्हारे ख़्याल में किसने भेजा है, उसी से सलाह कर लो ! तुम कुछ दिन के लिये टल जाओ।" शैलबाला ने सलाह दी। कुछ उत्तर न दे हरीश ने अपना सिर शैलबाला के

कंधे पर रख दिया। दायें हाथ से गाड़ी का हैण्डल थामकर शैलबाला ने अपने बाँयें हाथ से उसका सिर सम्भाल लिया।

गाड़ी शहर के बाहर बहावलपुर रोड पर चली जा रही थी। बच्चों के से अधीर स्वर में हरीश ने पूछा—"मुझे कहाँ लिये जा रही हो शैल ?"

"यही तो सोच रही हूँ"—शैल ने उत्तर दिया। यहाँ पास ही मेरे एक मित्र का बँगला है। वहाँ तुम सुरक्षित भी रहोगे और तुम्हें आराम भी मिलेगा।"

हरीश ने पूछा—"तो वहाँ भी मुझे नाटक करना होगा !"

"वे भाई बहन हैं, क्रिश्चियन्स। उस लड़की से तो तुम्हें नाटक करना ही होगा। हाँ, मर्द से तुम बेशक खुल सकते हो। परन्तु कह नहीं सकती, वह इस समय मिलेगा या नहीं......परवाह नहीं, चलो ! उस मोड़ से मुड़ चलें।"

"परन्तु यह है कौन ? ऐसा विश्वासपात्र ?" हरीश ने पूछा। "कहा तो एक मित्र है ?"—शैल ने मुस्कराकर उत्तर दिया—"तुम्हें उसी के हाथ सौंपूँगी जिसके हाथ अपनी जान सौंप सकूँ, समझे ?"

"तुम्हारे मित्रों की गिनती का भी तो ठिकाना नहीं"—हरीश ने विस्मय से कहा।

"तुम भी यह कहने लगे ?"—उसकी ओर देख शैल ने पूछा—"लेकिन हरि अब सब समाप्त है। अब तो यही एक हैं और एक तुम हो।"

"मैं भी हूँ"—हरीश ने पूछा—"वह भी मेरे जैसा ही है।"

"नहीं"—शैल ने कुछ झेंपते हुए कहा—"तुम-तुम हो, वह-वह है। हरी अब जीवन की इस नौका को ठिकाने लगा ही दूँगी। बहुत ठोकरें खाईं। और सबसे तो सुना ही था, आज तुम्हारे क्रान्तिकारियों से भी सुन लिया"—शैल के स्वर में उदासी भर गई।

"कैसे ?"

"न पूछो ! तुम्हारे दादा कहते थे, लड़कियों और लड़कों की फ्रेंडशिप कैसी ?"

"उनकी बात जाने दो, वह ठहरे दादा ! उन्हें केवल एक ही चीज़ दिखाई देती है—पर यह क्रिश्चियन कौन है ?"

"उसका नाम है राबर्ट !"—दीर्घ निश्वास लेकर शैल ने कहा—"यदि भाग्य में हुआ तो उसी से विवाह करूँगी। क्यों तुम्हें एतराज़ है ?"

"नहीं, मुझे क्या एतराज़, मैं तो उम्मीदवार नहीं हूँ। परन्तु तुम्हारे पिताजी ?"

"देखा जायगा !"—एक और लम्बी श्वास लेकर शैल ने उत्तर दिया—"परन्तु मनुष्य का सौदा करनेवालों की अपेक्षा एक आदमी के पल्ले पड़ूँगी।"

एक बँगले के अहाते में जाकर ड्योढ़ी में गाड़ी खड़ी हो गई। बँगले के बीच के कमरे में पर्दों की आड़ से प्रकाश दिखाई दे रहा था। आस-पास संध्या का अन्धकार छा गया था। शैल ने पूछा—"हाँ क्या नाम बताऊँ ?"

"जी० एम० मिराजकर, महाराष्ट्र !"

"नैनसी, नैनसी !" शैल ने पुकारा और मोटर का हार्न बजा दिया।

जनाने जूतों की खटखट आवाज़ कमरे से सुनाई दी और एक बीस-बाइस बरस की लड़की ने आकर उत्तर दिया—"हल्लो, शैल !"

"हाँ"—शैल ने उत्तर दिया—"रूबी है ?"

"तुम भी क्या कहती हो ? आज शाम को चार दफ़े उन्होंने तुम्हारे यहाँ फोन किया……तुम थीं कहाँ ? पाँच बजे से गये हुए हैं। कुछ सामान लाना था। हम मंसूरी जा रहे हैं न कल !"

"मंसूरी ? इस मौसम में ? मरेगी क्या ?" कमरे में प्रवेश करते हुए शैल ने पूछा।

"तुम क्या जानो, तार आया है, ख़ूब बर्फ़ गिरा है। ज़रा इंजोय करेंगे, मज़ा लेंगे।"

"ख़ैर!"—शैल ने हरीश की ओर इशारा करते हुए कहा—"मेरे दोस्त मि० जी० एम० मिराजकर, आप जिरेमी जानसन कम्पनी में इंजीनियर हैं।"

नैनसी ने हाथ आगे बढ़ा दिया। हरीश ने तुरंत पतलून की ज़ेब से हाथ निकालकर उससे हाथ मिलाया।

शैल ने कहा—"नैनसी, यह तुम्हारे मेहमान रहेंगे एक-दो दिन। मेरे यहाँ इन्हें काफ़ी आराम नहीं रह सकेगा, इसलिये तुम्हारे यहाँ ले आई हूँ।"

"जी हाँ", नैनसी ने कहा—"हमारे यहाँ तो बड़ा भारी महल है न" फिर हरीश की ओर देखकर "सिर माथे पर आइए एक मेहमान और दोस्त की शिफ़ारिस!"

"सामान इनका सब मेरे यहाँ ही पड़ा है। अब इस समय नहीं आ सकेगा, परन्तु इन्हें कोई तकलीफ़ न हो!"—शैल ने फिर ताक़ीद की।

"अरे आप भी यहीं रहिये"—नैनसी ने हँसकर कहा—"सामान की क्या ज़रूरत?"

नैनसी ने उन्हें सोफ़ा और कुर्सियों पर बैठाते हुए कहा—"शैल, खाना खाकर जाना क़रीब आधा घण्टा तो है ही। रॉबर्ट भी आ जायँगे।"

"अच्छा तो फ़ोन कर दूँ घर!" शैल ने कहा।

शैल दूसरे कमरे में फ़ोन करके लौट रही थी, नैनसी ने हरीश से अँग्रेज़ी में पूछा—"कुछ पीजियेगा, प्यास लगी होगी?"

"एक गिलास जल ज़रूर पी सकता हूँ"—हरीश ने भी अँग्रेज़ी में उत्तर दिया।

"जल ? सोडा-ह्विस्की लीजिये·······या दो बूँद बराण्डी ? डिनर (खाने) से पहले अच्छा रहेगा"—नैनसी ने पूछा।

"नहीं, इस समय कुछ तबीयत नहीं चाहती—बस भगवान का आशीर्वाद जल ही दीजिये।" हरीश ने उत्तर दिया।

शैल ने टोककर कहा—"ले क्यों नहीं लेते आधा आउंस ब्राण्डी ?—परेशानी दूर हो जायगी ?"

हरीश ने सिर हिलाकर इनकार कर दिया। शैल ने मज़ाक किया—"महाशय ही रहे ? डर लगता है ?"

हरीश ने स्वीकार किया "हाँ नई चीज़ से डर ही लगता है। तुम लो तो मैं भी ले लूँ ?" शैल ने भी सिर हिलाकर इनकार कर दिया।

नैनसी के लौटने पर शैल ने कहा—"मिराजकर, यह तो आपको मैंने बताया ही नहीं कि नैना—मैं इसे नैना कहती हूँ—बड़ी आर्टिस्ट (कलाकार) है। वायलिन तो ऐसा बजाती है कि पत्थर भी हिल उठते हैं और नाचने का कहना ही क्या ? एक तो आवाज़ कमबख़्त की—बस बुलबुल को मात कर देती है। हाँ, नैना कुछ सुनाओ, मिराजकर बड़े शौकीन हैं ? भई सुनाओ कुछ इस समय बड़ी तबीयत है, जरा दिमाग़ से परेशानी दूर हो !"

नैनसी ने सिर हिलाकर कहा—"सब कुछ पैक करके भेज दिया आज सुबह की गाड़ी से !"

"कहाँ ?"

"तुमसे कहा न, मंसूरी ! तुम भी चलोगी न ? राबर्ट तो तुमको इसीलिये फ़ोन कर रहे थे। चलो शैल, सब इन्तज़ाम है, कोठी भी है चलो, सचमुच।"

"चलूँ ? तुम चलोगे मिराजकर ?"

निश्चिंतता से हरीश ने हाथ फैलाकर कहा—"मुझे तो महीना भर छुट्टी है, कहो तो गौरीशंकर, कंचनचंगा, नागा पर्वत जहाँ कहो चल सकता हूँ।'

"लेकिन मैं पिताजी से पूछे बिना क्या कह सकती हूँ ?"

"अरे कह दो, स्वास्थ्य को बहुत फ़ायदा होगा और होगा भी ! तुम्हारे पिता तो तुम्हारे स्वास्थ्य के लिये आसमान से तारे भी तोड़ ला सकते हैं"—नैनसी ने उत्तर दिया।

"परन्तु अकेले ?"

"हाय, बिलकुल बेबी है न ?" नैनसी ने ताना दिया—"कहना, मैं जा रही हूँ सब इंतज़ाम है पिताजी कभी इन्कार नहीं करेंगे।"

हँसकर शैल ने हरीश की ओर देखा—"चलें अच्छा रहेगा, ज़रा ताज़गी आ जायगी ?"

नैनसी ने उत्सुकता से कहा—"रात में तैयारी कर लो। हम लोग सुबह ही कार से चलेंगे, चार आदमियों के लिये जगह है ही, सचमुच बड़ा मज़ा रहेगा।"

बाहर से जूतों की आहट आई और रॉबर्ट ने कमरे में प्रवेश किया। प्रसन्नता के स्वर में उसने कहा—"वाह, तुम यहाँ हो और मैं तुम्हारे यहाँ जाकर आया हूँ।"

नैनसी ने पुलकित होकर कहा—"रूबी, शैला मंसूरी चलेगी।"

"अभी मैंने कहाँ कहा है.......अभी तो मेरे महमान की ही बात हो रही थी ?"

शैल ने रॉबर्ट से मिराजकर का परिचय कराया।

आख़िर तै हो गया कि अगले दिन वे लोग बरफ़ देखने के लिये मंसूरी जायँगे।

६

मनुष्य !

दिन-रात और अगले दिन संध्या तक बरफ़ गिरती रहने के बाद रात में बादल फट कर उस पर पाला पड़ गया। सुबह से स्वच्छ नीले आकाश में सूर्य चमक रहा था। नीचे बिछे अनंत श्वेत से प्रतिबिम्बित धूप की कई गुणा बढ़ी उज्ज्वलता आँखों को चकाचौंध कर रही थी। पहाड़ की चोटी पर बनी उस कोठी से आँख उठा देखने पर सब ओर श्वेत दिखाई देता था। एक विचित्र श्वेत, दूध की सफेदी और चाँदी की उज्ज्वलता का मिश्रण! मामूली ऊँचाई-नीचाई उस श्वेत के विस्तार में लुप्त होगई। केवल बहुत नीचे, गहरी तराई में, बरफ़ से लदे वृत्तों के बीच से उनकी हरियाली की छाया दिखाई दे जाती। पहाड़ की ऊँची ढलवानों पर खड़े विशाल देवदारों की टहनियाँ बरफ़ के बोझ से झुक गईं। वे अस्थि अवशिष्ट महाकाय दानवों के श्वेत पंजर के समान जान पड़ते थे। बरफ़ के बीच से कहीं कहीं दिखाई दे जाने वाली उनकी हरियाली ही उनके अदृश्य होगये बनस्पति जीवन की याद दिला देती थी। बाँझ (Oak) के पत्ते भी बरफ़ का आवरण चढ़ श्वेत होगये। जिन वृत्तों के पत्ते हेमन्त में झड़ चुके थे उनके तने और टहनियाँ सब सफ़ेद म्यानों में ढक गये। विराट प्रकृति के इस खेल में मनुष्य द्वारा किये गये सब प्रयत्न लोप हो गये मानो मनुष्य बालक की शक्ति का उपहास कर प्रकृति ने अपने श्वेत आँचल में उसके तैयार किये सब घरौन्दों को छिपा लिया।

रॉबर्ट, शैल, नैनसी और हरीश कोठी के बरामदे तक चढ़ी बरफ़ पर खड़े विस्मय से उस दृष्य को देख रहे थे। रात में पाला पड़ जाने से बरफ़ की सतह कड़ी पड़ गई थी। इसलिये बिना विशेष कठिनाई के वे उस पर खड़े हो अपने चारों ओर के दृष्य को देख रहे थे। धूप में पिघलती कोठी के छत की बरफ़ जल बनकर छत के किनारे से सहस्रों धाराओं में टप-टप कर टपक रही थी और जल टपकने के स्थानों पर काँच के बड़े-बड़े सींगों की झालरें बन गईं। हीरे की कणियों से छितराया श्वेत का वह विस्तार उनके क़दमों के नीचे से चलकर सुदूर क्षितिज पर हिमालय की निरंतर बनी रहने वाली हिम की दीवार तक पहुँच रहा था, जिसके कंगूरे नीले आकाश में चाँदी के उज्ज्वल टीलों के समान खड़े थे। उसमें कहीं व्यवधान था तो अनेक पर्वत श्रेणियों के अन्तर में दिखाई पड़ने वाली घाटियों की धुन्दली रेखा मात्र या समीप की घाटियों की तलैटी की झीनी हरियाली।

गरमी और बर्सात के मौसिम की घनी हरियावल को बँगलों की लाल छतों से चित्रित करनेवाली कलरव पूर्ण मंसूरी और उजली रुई से ढंकी इस नीरव मंसूरी में कोई समानता और सादृश्य शेष न था। बरफ़ की उस सफ़ेदी में बरफ़ से ढँके बँगले और कोठियों को दूर से पहचानना कठिन होगया। चकाचौंध आँखों पर छाया के लिये हाथ रखे नैनसी उस पहेली सी अबूझ मंसूरी में बाँह फैला उँगली से दिखा रही थी, "वो चार्लीविली है, वहाँ मैलाकाफ़! वहाँ उपर, हाइलैण्ड...." ताली बजा पुलक और विस्मय से उसने कहा—"रूबी, देखो! वहाँ डिपो की पहाड़ी पर तो कुछ पहचाना ही नहीं जाता!"

इतनी गहरी बरफ़ पर भी तीखी धूप और वायु थमी रहने के कारण बाहर घूमने में सर्दी अनुभव न हो रही थी। बल्कि पैरों के नीचे बरफ़ की पपड़ी टूट पैरों के कुछ दूर तक स्वच्छ श्वेत बरफ़ में धसकर चलने में भला जान पड़ता था। कोठी के समीप के टीले पर चढ़कर वे दूर-

दूर का दृष्य देखने लगे। चढ़ाई चढ़ते समय पैर धँसने से शैल और नैनसी दोनों हाँफने लगीं। रॉबर्ट शैल को सहारा दिये ऊपर लेजा रहा था। शैल कभी उसकी बाँह और कभी कंधे का सहारा ले लेती। हरीश की ओर देख नैनसी ने निस्संकोच स्वर से पुकारा—"मिस्टर मिराजकर, आप मुझे हेल्प (सहायता) नहीं देंगे ?"

"क्यों नहीं ?"—हरीश पीछे लौट आया। रॉबर्ट और शैल की ओर देख वह सोच रहा था, किस सीमा तक वह नैनसी को सहायता दे सकता है ?

कुछ ही घण्टों में उस वैचित्र्य की उग्रता धीमी पड़ गई। उत्तर-पूर्व की वायु तेज़ हो जाने से धूप में भी कँपकपी छूटने लगी। मोटे-मोटे कपड़ों को छेद वह वायु तीखी बर्छी की तरह शरीर में धँसी जाती थी। वे लोग भीतर जा बैठे। आग जलाई गई। उसके बिना कँपकपी बन्द ही न होती थी। कमरे में आग जला लेने पर भी उसके समीप बैठने में ही शांति अनुभव होती। शेष कमरा ख़ूब सर्द था इसलिये सोफ़ा और कुर्सियों को आग के बिलकुल समीप खेंचकर वे एक साथ बैठे।

सर्दी सबसे अधिक नैनसी को अनुभव हो रही थी। परन्तु उससे अधिक असुविधा वह अनुभव कर रही थी सब के समीप बैठने में। उसका मन उचाट हो रहा था—एक प्रकार की अशान्ति सी जिसका कारण वह स्वयम न समझ पा रही थी। रॉबर्ट और शैल आल्हाद की आत्मविस्मृति में खोये थे। मिराजकर अपने ध्यान में यों मग्न था। दूसरों की उपस्थिति से उसे कुछ प्रयोजन नहीं। कभी किसी बात की ओर संकेत पा या शैल से आँखें मिल जाने पर अपने ख़याल से जाग वह मुस्करा देता। उसकी आँखें चमक उठतीं, और फिर दूसरे ही क्षण उसका ध्यान लौट जाता।

नैनसी ने कई बेर उसकी ओर देखा परन्तु उसे अपने ध्यान में

मग्न पाया। सब ओर से उपेक्षा की चोट खा वह कहीं दूर भाग जाना चाहती थी। उस अद्भुत दृश्य और यात्रा की उमंग से हृदय की नदी में आयी आल्हाद की बाढ़ का जल कम होकर तली में बैठे टीलों और कगारों के सिरे प्रकट होने लगे। यह थे, उसके जीवन न्यूनता और कमी के चिन्ह। वह देख रही थी कि रॉबर्ट और शैल हल्के नशे की सी अवस्था में हैं। उनके ध्यान में किसी तीसरे के लिये स्थान नहीं। और मिराजकर? उसकी दृष्टि में तो सब लोग जड़ प्रकृति के ही अंग हैं। अनेक बार उसने उसकी ओर देखा, मतलब बेमतलब उससे बात की। उत्तर में अत्यन्त भद्रता से, आवश्यकता से अधिक विनय से, मिराजकर ने उत्तर दे दिया। जैसे उसका पहिले कुछ परिचय नहीं और वह भरी महफिल में उससे बात कर रहा हो।

अज्ञात कारण से पैदा होने वाली उस उदासी से नैनसी का दिल मुँह को आने लगा। एक अज्ञात अभाव की अनुभूति से मन बेचैन हो रहा था, जिसको कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं बतायी जा सकती।

हरीश अपने खेल या चिन्ताओं में खोये बालक के समान था। जिसे अपनी स्थिति या अवस्था की भी परवाह नहीं। शैल की ममता भरी दृष्टि निरन्तर उसकी ओर थी। रॉबर्ट के अधिकार को कृतज्ञता पूर्वक स्वीकर के भी वह हरीश की उपेक्षा कैसे करे? वह जो एक घायल बालक के समान था।

खिड़की का पर्दा हटा नैनसी उत्तर पूर्व की हिमश्रेणी की ओर देखने लगी। बरफ़ानी चोटियों पर अस्तोन्मुख सूर्य की विदा होती हुई किरणें फैल रही थीं। वे उज्ज्वल सिंदूरी रंग लिये अग्नि की स्थिर लपटों की भाँति नीले आकाश में सिर उठाये खड़ी थीं। कुछ भाग जो सूर्य की किरणों से परे थे, नीले हरे कुहासे में ढँके थे। उनकी ओर देख शैल को सम्बोधन कर रॉबर्ट ने कहा—"ओफ़ क्या शान है?"

नैनसी को जान पड़ा, उसके मन की व्यवस्था को उकसाने के लिये

यह बात कही गई। खिड़की का पर्दा छोड़ वह हट गयी। अनुरोध
क्या—"नैना, कुछ सुनाओ!" नैनसी को शैल का यह अनुरोध दुखते
ग पर ठेस के समान जान पड़ा। कुछ उत्तर न दे, कोट की दोनों
बों में हाथ डाले वह दीवार की ओर देखने लगी।

"शैल ने हरीश से पूछा—"मिराजकर, कुछ सुनोगे?" अपनी
चार तंद्रा से जाग उसने उत्तर दिया—"ज़रूर!" और मुस्कराकर
नसी की ओर देखकर दोहरा दिया—"ज़रूर, सुनाइये।"

हरीश की इस मुस्कराहट से, व्यथा की गहराई में गिरती हुई नैनसी
ो सहसा सहारा मिल गया। जेब में हाथों को और भी गहरा गड़ा
सने हरीश से ही पूछा—"क्या सुनाऊँ?"

उसके स्वर से निराशा दूर हो गई। उत्तर दिया शैला ने—"देवी
 यहाँ जो तुमने उस रोज़ सुनाया था; क्यों...मूनलाइट-सोनाटा वही
ुनाओ?"

"वाक़ई सुनाओ।" रॉबर्ट ने समर्थन किया।

मुस्कराहट से नैनसी बोली—"मिराजकर तो भारतीय राग के
ारखी हैं, इन्हें कोई देशी चीज़ ही सुनाऊँ, विहाग सुनियेगा?"

"ज़रूर, ज़रूर"! मिराजकर ने समर्थन किया।

वायलिन निकाल नैनसी ने उसके तारों पर कमान चलानी शुरू की
उसका हाथ और वायलिन की कमान तरंगित गति से हिलने लगे
ायलिन के तारों से स्वर की लहरें छूटने लगीं। कुछ देर में उसका सि
भी हिलने लगा। उसके चेहरे पर लाली फैल गई। उसका श्वास
अपनी स्वाभाविक गति छोड़ विहाग की लहरों पर चलने लगा। आठ
दस मिनट बजाने के बाद वह उठ खड़ी हुई और विलम्बित के बात
द्रुत बजाने लगी। कमर से ऊपर उसके शरीर का भाग राग की गति
पर डोलने लगा। तीनों जने एकटक उसकी ओर देख रहे थे। रॉबर्ट
का सिर हिलने लगा, नेत्र मूँद वह तन्मय हो गया। एक दफ़े उसके

मुख से निकला—"बहुत ख़ूब !" शैल भी मंत्र मुग्ध-सी उसकी ओर देख रही थी। राग समाप्त कर थकावट से साँस लेते हुए हरीश की ओर देख नैनसी ने पूछा—"कहिए, पसन्द आया ?"

"बहुत ही अच्छा ! आपको ख़ूब अभ्यास है।" उसने मुस्कराकर प्रशंसा की।

"और सुनिये ?" उत्साहित हो नैनसी ने कहा और वायलिन ले उसने श्याम कल्याण बजाना शुरू किया। गत समाप्त होने पर तीनों ने उसकी भरपूर प्रशंसा की।

नैनसी अपनी शिथिलता भूल गई। शैल ने अनुरोध किया—

"नैना गा के सुनाओ कुछ !"

दोनों हाथ फैला नैनसी ने उत्तर दिया—"बिना साज के गाना कैसे ? यहाँ क्लासिकल म्यूज़िक के पण्डित महाराष्ट्र बैठे हैं, झट ग़लती निकाल देंगे।"

हँसकर हरीश बोला—"महाराष्ट्र होने से ही तो संगीत नहीं आ जाता। मैं ग़लती समझूँगा नहीं, निकालूँगा क्या ?"

"नैनसी ने आँख का कोना शैला को ओर दबाया—"कुछ लोगों की वीरता कुछ न समझने में ही रहती है। हाँ, तो क्या सुनाऊँ ?"—हरीश से उसने पूछा।

"कोई मौक़े की चीज़"—रॉबर्ट ने उत्तर दिया।

नैनसी ने शैल की ओर दुबारा आँख का कोना दबाकर ताना दिया—"मौक़ा तुम्हारा है, सब का तो नहीं ?"

शैल और रॉबर्ट एक दूसरे की ओर देख हँस दिये। कुछ गुनगुनाकर नैनसी ने गाना शुरू किया—

लगता नहीं है दिल मेरा उजड़े दयार में……।
कह दो ये हसरतों से कहीं और जा बसें।
इतनी जगह कहाँ है दिले बेकरार में ?

बुलबुल को बाग़बाँ से न सैयाद से गिला ।
क़िस्मत में क़ैद थी लिखी फ़स्ले बहार में ॥
उम्रेदराज़ माँग कर लाया था चार दिन ।
दो आरज़ू में कट गये दो इंतज़ार में ॥

ननसी आँखें छत की ओर उठा, ख़ूब ऊँचे स्वर में खुले दिल से गा रही थी। कमरा उसके स्वर से गूँज उठा। गज़ल समाप्त होने पर उस जनहीन प्रवेश का सुनसान और भी बोझल जान पड़ने लगा। शैल ने उसे कुछ और सुनाने के लिये कहा—"वाह, भाड़े पर आई हूँ ?" उलाहने से नैनसी ने उत्तर दिया—"तुम भी गाओ !" अपने गले और कला के चमत्कार के गर्व से उसका हृदय इस समय उत्साह की हिलोरें ले रहा था।

"अरे, इतना जानते तो तुम्हें कहने की ज़रूरत होती ?"
शैल ने अनुरोध किया। "आओ दोनों मिलकर पंजाबी ढोलक का गीत गायें ?"—नैनसी ने प्रस्ताव किया ; शैल तैय्यार हो गई। उसी समय नैनसी ने मिराजकर की ओर देखकर पूछा—"पर, यह क्या समझेंगे ?"

"मैं समझता हूँ, काफ़ी समझता हूँ"—हरीश ने उत्तर दिया "आप चलिये, नहीं स्वर तो सुनूँगा।"

नैनसी रॉबर्ट का हैटकेस उठा लाई और उसे ढोलक की तरह घुटनों में दबा उसने बजाना और गाना शुरू किया—

"मैं तेरी ते तू मेरा फुल्लवे, चन्नावे............"

गाते-गाते रुककर हरीश की ओर देख उसने पूछा—"क्या मतलब समझे आप ?"

हरीश ने कहा समझ गया—"मैं तेरी हूँ, तू मेरा है, तू फूल है ?"

शैल को सम्बोधन कर नैनसी ने कहा—"ठीक है, लेकिन ग्रामर (व्याकरण) ज़रा कम जानते हैं। तीनो जने हँस पड़े। हरीश ने भी शर्माकर मुस्करा दिया। नैनसी पर उत्साह का नशा चढ़ रहा था।

एक गाना समाप्त कर शैल के साथ उसने दूसरा गाना शुरू किया—
"चीची वाला छल्ला मैनूँ देजा निशानी..........."

इस बीच में हरीश का ध्यान दूसरी जगह पहुँच गया था। वह सोच रहा था—साहबी ढंग से रहनेवाली, अंग्रेज़ी बोलनेवाली यह मिस साहब, सिलवार पहरे और घुटनों में ढोलक दबाये पंजाबी गीत गा रही है। पश्चिम की सभ्यता का इतना मुलम्मा होने पर भी इसकी भारतीयता और पंजाबीपन उसके ख़ून में वैसे ही मौजूद है।

सहसा रुककर नैनसी ने फिर हरीश से पूछा—"इसका मतलब बतलाइये, समझे?"

"हाँ-हाँ" हरीश ने हामी भरी—"अँगूठी माँगती है; निशानी।"

"चीची का क्या मतलब?" अगर आप यह बता दें तो जो आप चाहें दे दूँ।"

शैल ने कहा—"मौक़ा है मिराजकर, इसी को माँग लो!"

रॉबर्ट ने हँसकर कहा—"प्राचीन भारत में ऐसे ही तो स्वयम्बर हुआ करते थे।"

नैनसी ने बिना झेंपे ललकारा—"यह बतायें तो?.......क्या मतलब है साहब चीची का?.......क्या चाची?" उसने उँगली ठोड़ी पर रखते हुए पूछा।

चिन्ता का भाव दिखा हरीश ने उत्तर दिया—"देखिये, इसका मतलब है...........नग, नगवाली अँगूठी, नहीं क्या?"

नैनसी ने शैल और रॉबर्ट की तरफ़ देखकर कहा—"बस जीत लिया स्वयम्बर?"

शैल हँसी से लोट पोट हो गई। उससे रहा न गया। रॉबर्ट के पास से उठ हरीश का हाथ पकड़ उसे खींच वह दीवार के पास ले गई और आहिस्ता से कहा—"ख़ूब बनते हो, कमाल कर दिया?" उसी तरह आहिस्ता से हरीश ने हँसकर उत्तर दिया—"न बनूँ तो अभी

भेद खुल जाय !" हँसते-हँसते शैल वापिस आ बैठ गई और मिराजकर कुछ झेंप दिखाते हुए आकर बैठा ही था कि नैनसी ने उसे सम्बोधन कर कहा—"ए हज़रत ! चीची का मतलब चाची नहीं, और न नग-वाली अँगूठी है, इसका मतलब है—यह उँगली !" अपनी छोटी उँगली हिलाते हुए दिखा उसने कहा—"समझे ? अरे कुछ भी तो नहीं समझते !"

रॉबर्ट और शैल आपस में बात कर रहे थे। उस ओर संकेत कर नैनसी ने मिराजकर से कहा—"कुछ समझा कीजिये·······इन्हें बात करने दीजिये, समझे ! आइये आपको चाँद दिखाऊँ ? सर्दी लगती है ?·······ओवरकोट जो नही लाये ? समझा होगा, बम्बई जा रहे हैं। यह लीजिये, इसे पहन लीजिये !" अपना ओवर कोट उसने उतार दिया। हरीश के मना करने पर उसने एक शाल उठा ओढ़ लिया और फिर हरीश की ओर देखकर बोली—"वाह कैसे अच्छे जँचते हैं ? एक साड़ी और निकाल दूँ ?·······चलिये अब तो !" शैल हँसने लगी।

वे दोनों बरामदे के काँच से बरफ़ पर चाँद की रोशनी देख रहे थे। हरीश ने कहा—"कितनी शान्ति है !"

नैनसी ने उत्तर दिया—"भयंकर सुनसान !·······सर्दी !"

लगभग दस मिनट तक दोनों उस शान्ति, सुनसान और ठण्ड को सहते रहे। हरीश मस्तिष्क में एक शून्य का अनुभव कर रहा था। नैनसी शून्य का अनुभव कर रही थी हृदय में। निराशा ने उसे फिर आ घेरा। मिराजकर को बरामदे में छोड़ वह लेटने के लिये चली गई।

× × ×

"रूबी जब जीवन में कोई रुकावट अनुभव नहीं होती, ज़िन्दगी ढलवां पर बहते जल की तरह बहती चली जाती है। कभी अनुभव भी नहीं होता, हम जी रहे हैं, जीवन की कोई समस्या या अधिकारों का भी कोई प्रश्न है ? और जब जीवन में चाह और इच्छा पूरी नहीं होती,

तब सब बातों की ओर ध्यान जाने लगता है, समाज में अव्यवस्था दिखाई देने लगती है।" शैल ने अपनी अधमुँदी आँखों के सामने कल्पना में न जाने क्या-क्या देखते हुए कहा।

अपनी दाईं बाँह शैल के कंधे पर रख राबर्ट ने शांत तटस्थ भाव से लम्बा श्वास ले उत्तर दिया—"समाज और संसार का आरम्भ होता है व्यक्ति से। जब व्यक्ति अपने जीवन में रुकावट अनुभव करता है, तभी वह समाज में संकट के प्रति सहानुभूति करने लगता है। व्यक्तिगत और समाजिक अधिकार की बात सोचने लगता है।"

"पर यह बात हरीश....मेरा मतलब मिराजकर, के जीवन में कहाँ है....? मेरा मतलब, उसका अपना जीवन है ही क्या,....वह जीवन में कुछ पाने की आशा कर ही नहीं सकता!"—शैल ने पूछा।

"यह बात नहीं...."—रॉबर्ट ने मुस्करा कर शैल की ओर देखा—"जो आदमी देश और समाज के लिये अपने आपको मिटा देना चाहता है, वह भी स्वार्थी ही है। फरक़ इतना ही है कि वह सन्तान से मोह करने वाली माँ की तरह है जो यह अनुभव करती है कि अपनी सन्तान के बिना वह जी नहीं सकती! परन्तु दूसरे की सन्तान के लिये कौन मर जाना चाहता है? कुछ लोग ऐसे भी हैं जो मनुष्य मात्र के लिये मर जाना चाहेंगे वास्तव में उन्हें निस्वार्थ न कह कर समझदार ही कहना चाहिये क्योकि वे समझते हैं कि उनका स्वार्थ केवल निजी संकट दूर करने के प्रयत्न से हल नहीं हो सकता........मैंने तो अपने जीवन में यही देखा है....।"

रॉबर्ट की बाँह पर हाथ रख शैल ने दरवाज़े के काँच से बरामदे में झाँक कर पूछा—"रूबी, मिराजकर को भी बुला लूँ....वह देखो, पागल की तरह सिर उठाये अकेला कोल्हू के बैल की तरह चक्कर काट रहा है?'

रॉबर्ट ने सिर हिलाकर अनुमति दे दी। शैल ने मिराजकर को भीतर पुकार लिया। भीतर आ उसने पूछा—"क्यों, क्या है?"

"होने को क्या है, यहाँ आदमियों में बैठो·······क्या कठघरे में बन्द जानवर की तरह चक्कर काट रहे हो····तुम क्रान्ति-क्रान्ति चिल्लाते फिरते हो। व्यक्ति के मार्ग में आने वाला सामाजिक अत्याचार तुम्हें नहीं दिखाई देता ? जीवन के सब मार्ग समाज में बन्द पाकर मुझे तो सबसे अधिक खिजलाहट समाज ही के प्रति होती है····"

रॉबर्ट ने सहयोग दिया—"जैसे ईंटों के बिना इमारत नहीं बन सकती उसी तरह बिना व्यक्तियों के समाज भी नहीं बन सकता। समाज अपनी रक्षा या व्यक्तियों के विकास के लिये ही व्यवस्था करता है। परन्तु मनुष्य के जीवन में परिवर्तन आजाता है, उसकी आवश्यकतायें बदल जाती हैं और पुरानी व्यवस्था में उसे रुकावट अनुभव होने लगती है। जैसे बचपन में कोई कपड़ा शरीर पर सी दिया जाय तो उम्र बढ़ने पर दम घोंटने लगेगा, वही हालत हमारी सामाजिक व्यवस्थाओं की भी है।····स्वयम् मेरे अपने अनुभव की बात देखिये ! मैं अपनी पत्नी को ही क्या दोष दूँ ? जिस समय कॉलेज से एम० ए० पास किया, मुझ पर बाईबिल का रंग इतना गहरा था कि संसार को प्रभु मसीह के चरणों में ले आने के सिवा और कोई चिन्ता न थी। मेरी धर्मनिष्ठा देख मेरे विशेष चिन्ता न करने पर भी मिशन कॉलेज में मुझे प्रोफ़ेसरी दे दी गई। मेरा यह हाल, कि सब काम छोड़ सुबह शाम मज़दूरों और भंगियों में जा मसीह के भजन गाये बिना, उन्हें मसीह का उपदेश सुनाये बिना चैन न था। उन्हीं दिनों फ़्लोरा से मेरा परिचय हुआ। मेरे धर्मोपदेशों में उसे अमृत बरसता जान पड़ता वह प्राय: मेरे साथ भजन गाने जाती, मेरे व्याख्यानों में हाज़िर रहती। धर्म के प्रति उसके प्रेम से मैं उसका आदर करने लगा। मुझे मालूम नहीं हुआ किस दिन उस आदर ने प्रेम का रूप धारण कर लिया। मानसिक प्रेम और शारीरिक आकर्षण की सीमा एक दूसरे से मिलीही रहती है। इस पार श्रद्धा, प्रेम और भक्ति है, दूसरी ओर तृप्ति की

चेष्टा। और फिर यह सीमा कोई ठोस पदार्थ नहीं। भावना और विचारों में ही यह सीमा रहती है। इसलिये भावना, विचार या इच्छा की तरंग इसे कहीं पहुँचा सकती है, मिटा भी सकती है।

"मैंने स्वयम ही फ़्लोरा से विवाह का प्रस्ताव किया। मेरे प्रति उसकी श्रद्धा और प्रेम—जो केवल चाह और पसंद का दूसरा नाम है—इतना प्रबल था कि इनकार कर सकना उसके लिये सम्भव न था। मेरा ख़्याल है, उस समय यदि हम दोनों में से कोई एक मर जाता तो दूसरा भी, जीवन असम्भव समझ, मर जाता या मरने की चेष्टा करता। परन्तु जब प्रेम और आकर्षण का कारण न रहा, प्रेम और आकर्षण भी न रहा।

फ़्लोरा ने मुझे जो कुछ समझकर प्रेम किया था, उसकी दृष्टि में, मैं वह नहीं रह गया तो फिर क्यों न वह मेरे प्रति विरक्त हो जाती? उन दिनों मुझे गांधीवाद का चस्का लगा। गांधी मुझे ईसा के सब से बड़े क्रियात्मक भक्त जान पड़ते थे। कई दफ़े गांधी जी को ईसाई बनाने की धुन सवार हुई। उनका आचरण ईसाई धर्म के अनुसार आदर्श है, केवल भगवान के पुत्र मसीह में विश्वास न होने के कारण वे स्वर्ग और मुक्ति न पा सकेंगे, यह सोच दुख होता। राम, कृष्ण आदि मिथ्या अवतारों में मुझे उनकी श्रद्धा सह्य न थी। अहिंसा और प्रेम में ही मुझे सब धर्मों का सार दिखाई देता और अहिंसा और प्रेम का सार मुझे दिखाई देता था भगवान के पुत्र मसीह में। उन्हीं दिनों—भला हो एक मेरे प्रोफ़ेसर मित्र का, उसने मुझे एक पुस्तक "हिस्टोरिकल मैटिरियलिज़्म"—बुखारिन की, पढ़ने के लिए दी। उस पुस्तक को दो दफ़े पढ़ा। उसके बाद हैक्ल की पुस्तक "रिडल आफ़ दी यूनिवर्स" फिर यत्न करने पर भी मैं बाईबिल छू न सका।

मेरी यह नास्तिकता फ़्लोरा के लिए असह्य थी। मैं उसे अपने विचार समझाने का यत्न करता परन्तु धर्म के विषय में तर्क करना ही

उसकी दृष्टि में पाप था। एक नास्तिक के साथ पति रूप में एक मेज़ पर भोजन करना उसे नागवार था। मेरे गिरजा न जाने पर वह दुख से उपवास करती। कई दिन तक उसे प्रसन्न करने के लिए पालतू कुत्ते की तरह उसके साथ गिरजा गया परन्तु मन में ग्लानि होती थी। मुझे यह कायरता जान पड़ती।

"एक दिन हद होगई। मेरी मेज़ के नीचे एक पुस्तक काले चमड़े की जिल्द की पड़ी थी। नज़र पड़ने पर उसे उठा फ़्लोरा ने चूमा, सिर से लगाया और मुझे क्रोध में सम्बोधन कर कहा—"अब पतन सीमा तक पहुँच गया है कि बाईबिल पैरों तले ठुकराई जाती है !"

"उसकी आँखों में आँसू देख हँसकर उत्तर दिया—"यह बाईबिल नहीं। यह वह चीज़ है जिसका सत्य जूतों की ठोकरों से भी अपवित्र नहीं हो सकता। यह कार्ल मार्क्स का "कैपिटल है !" क्रोध में उसके होंठ फड़फड़ाने लगे। "वह नास्तिक मार्क्स !"—उसने कहा—"और मैंने इसे सिर से लगाया चूमा ?"

"तुम्हारे भगवान की ऐसी ही इच्छा थी।" खिलखिला कर मैंने उत्तर दिया।

"भगवान की नहीं, शैतान की ! तुम शैतान हो !........भगवान मसीह के भोले मेमने का रूप धारणकर तुमने मुझे धोका दिया है।" क्रोध से पैर पटकती पुस्तक लिए वह रसोई-घर की ओर चली गई। वहाँ से पुकारकर उसने कहा—"यह देखो !"

"जाकर देखा, भभकती हुई अँगीठी पर से देग़ची उठा वह पुस्तक रख दी गई है और उसमें से लपटें उठ रही हैं। मेरी ओर घृणा से देख फ़्लोरा ने ललकारा—"यह देखो, तुम्हारे मार्क्स की आत्मा दोज़ख की आग में जल रही है।"

"फ़्लोरा की असहिष्णुता और कट्टरपना दिन-प्रतिदिन असह्य होता गया। मैं कुछ कह न सकता। कुछ दिन पूर्व की अपनी धर्मान्धता

मेरी स्मृति में आ खड़ी होती। उस दिन इस घटना से मुझे क्रोध आ गया। कोशिश की चुप रहूँ पर रह न सका, कहा—"तुम्हारे भगवान की इच्छा से एक दिन नीरो के दरबार में इसी तरह ईसाई सन्तों को जलाया जाता था। मुहम्मद गोरी ने भी इस देश में वेदों को इसी प्रकार जलाया था परन्तु वे दोनों आज भी जीवित हैं और मार्क्स के विचार भी जीवित रहेंगे। आज जल गई केवल हमारी आपस की सहानुभूति! अब हम दोनों एक-साथ नहीं रह सकते!" उस दिन वह कपड़े-लत्ते सम्भाल घर से चली गई।

"खबर मिली, वह काँगड़ा ज़िला में अछूतों को ईसाई बनानेवाले मिशन में चली गई है। हस्पताल में नर्स का काम कर संकट से जीवन बिता रही है। सोचा, अपने ग़ुरूर की वजह से यदि वह कष्ट उठाती है तो मेरा क्या कुसूर! फिर ख़याल आया, रोटी कपड़े के लिए मेरी मुँहदेखी कहती रहती तभी क्या मुझे उसका आदर करना चाहिए था? उसे मैंने एक पत्र लिखा—"क़ानूनन तुम्हें मेरी आमदनी पर अधिकार है। अनावश्यक आर्थिक कष्ट सहने की तुम्हें ज़रूरत नहीं। परन्तु मेरा सौ रुपये का मनीआर्डर इस उत्तर के साथ लौट आया—"नास्तिकों के पैसे पर मुझे श्रद्धा नहीं।"

"उन दिनों ईसाई समाज में मेरी खूब निन्दा हुई। लोगों ने कहना शुरू किया, नौकरी और बीबी के लिये मैंने धर्मात्मापन का ढोंग किया था। उस निन्दा से डर नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया। शायद न देता, परन्तु जानता था, गुज़ारा चल ही जायगा। ठेकेदारी कर पिता कई मकान बना गये हैं। समाज का यह माना हुआ क़ायदा है, बाप के या स्वयम् हमारे सम्पत्ति जमा कर रख लेने से हम बिना हाथ-पैर हिलाये भी मज़े में ज़िन्दगी गुज़ार सकते हैं। किसी समय यदि यह क़ायदा न बनाया जाता तो लोग न सम्पत्ति इकट्ठी करते और न पैदावार के बड़े-बड़े साधनों का विकास ही हो पाता! लेकिन आज भी

वह क़ायदा चला आ रहा है। व्यक्तिगत रूप से मैं उससे लाभ उठा रहा हूँ। लेकिन यह भी देखता हूँ, जब अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमाने के लिये सम्पत्ति या पैदावार के अधिक से अधिक साधन व्यक्तिगत रूप से जमा किये जाते हैं तो लाखों करोड़ों बिना किसी साधन के भी रह जाते हैं। और फिर यह लोग साधनों के मालिकों या सम्पत्तिशालियों के उपयोग की वस्तु मात्र ही बन सकते हैं........तुम हमारे इन दो नौकरों को ही देख लो ! यदि अपने आराम के लिये हमें इनकी ज़रूरत न हो और पैसे वाले दूसरे आदमी भी हमारी तरह सोचें तो इस श्रेणी के लोग जीवित कैसे रहेंगे ?........जीवित रहने का कोई साधन इनके हाथ में नहीं यदि इनकी सेवा की हमें आवश्यकता न हो ! लेकिन जनाब यह न समझ लीजिये कि मैं मार्क्सवाद का प्रचार करने चल दूँगा ! अब तो मैं बहुत सुविधा और आराम से जीवन बिता देना चाहता हूँ.........

"हाँ, तो फ़्लोरा का यह हुआ कि पिछले अगस्त में उसका एक रजिस्टर्ड पत्र आया ! वह चाहती है कि मैं हिन्दू धर्म ग्रहण करलूँ ताके उसका और मेरा विवाह सम्बन्ध टूट जाय। आज डेढ़ बरस से हम दोनों एक दूसरे से अलग हैं। उसे मैंने लिख दिया, वह मुझे अदालत में तलाक़ दे सकती है। इसमें उसे अपमान जान पड़ता है। वह मुझसे पीछा छुड़ाना चाहती है परन्तु सम्मानजनक उपाय से। समाज का यह दूसरा नियम है कि स्त्री का सम्बन्ध जीवन भर एक पुरुष से रहे। बताइये ; अब यह नियम मेरे, फ़्लोरा और उस पुरुष जिससे फ़्लोरा विवाह करना चाहती है और उस स्त्री जिससे मैं विवाह करना चाहता हूँ, के जीवनों को मुसीबत में डाल रहा है या नहीं ? जब तक स्त्री-पुरुष की सम्पत्ति समझी जाती थी, उसका एक पुरुष की बने रहना ज़रूरी था परन्तु आज जब स्त्री को पुरुष के समान अधिकार देने की बात आप कहते हैं तो इस प्रकार के नियम क़ानून की ज़रूरत ?........स्त्री पुरुषों

का जीवन सुख शान्ति से चले इसीलिये तो समाज नियम क़ानून बनाता है ? आप इनकार नहीं कर सकते कि विवाह एक बन्धन है। बन्धन उस समय लागू किया जाता है जब अव्यवस्था का डर रहता है। मैं हैरान हूँ, समाज में इस बन्धन का इतना आदर क्यों है ? और बन्धनों की तरह इसे भी आज़ादी का शत्रु समझना चाहिये परन्तु तमाशा यह है कि लोग इस बन्धन में बँधने के लिये बेताब रहते हैं।

"न न, विवाह बन्धन नहीं"—बीच में टोककर हरीश ने कहा—"विवाह एक लाइसेंस या परवन्ना है। बन्धन तो वास्तव में यह है कि समाज में कोई पुरुष किसी स्त्री से कोई सम्बन्ध नहीं रख सकता। परन्तु जब इस ढंग से काम नहीं चलता तब एक पुरुष को एक स्त्री के लिये परवन्ना या लाइसेंस दे दिया जाता है कि वे परस्पर सम्बन्ध पैदा कर सकते हैं।"

रॉबर्ट और शैल दोनों हँस दिये। रॉबर्ट ने स्वीकार किया—"हाँ, आपने अधिक अच्छे ढंग से कहा। या यों कहिये जिस तरह पराई सम्पत्ति लेना पाप है, उसी तरह दूसरे की औरत से बात करना भी पाप है। परन्तु औरत ऐसी सम्पति है, जिसके अपने हाथ पैर और सिर हैं इसलिये उसे समझाया गया कि अपने मालिक से चिपके रहने में ही तेरा कल्याण है, तू पतिव्रता बनी रहना !"

शरीर को कुर्सी पर ढीला छोड़ एक सिगरेट सुलगाते हुये हरीश ने कहा—"स्त्री की पूर्ण स्वतंत्रता का अर्थ है, विवाह की प्रथा को दूर कर देना........।"

"वाह ! तो फिर हो क्या ?"—शैल ने आशंका से चौंककर पूछा।

"क्यों, होने को क्या है ?"—उत्तेजित हो हरीश ने उत्तर दिया—"तुम्हारे देश में यदि दमनकारी क़ानून दूर कर दिये जायँ तो क्या होगा ? इसी तरह विवाह का दमनकारी बन्धन दूर कर देने पर स्त्री-पुरुष अपनी स्वाभाविक अवस्था में रहेंगे।"

"यह मैं नहीं मानती"—शैल ने विरोध किया—"एक सीमा तो होनी ही चाहिये।"

"मैं जानता हूँ, तुम क्यों नहीं मानतीं"—मुस्कराते हुए हरीश ने उत्तर दिया—"बुरा मत मानना, तुम चाहती हो पति बनाकर पुरुष का शोषण करना, उससे काम निकालना। तुम चाहती हो, पति कमाकर लाये और तुम उड़ाओ। मैं पूछता, हूँ यदि स्त्री संतान चाहती है तो उसके पालन की ज़िम्मेवारी से क्यों डरती है ?"

"कैसा गुस्ताख़ है यह ?"—राबर्ट को सम्बोधनकर वात्सल्यपूर्ण स्वर में शैल ने कहा और फिर भँवे टेढ़ी कर हरीश को सम्बोधन किया—"क्यों सन्तान के प्रति पिता की जिम्मेवारी नहीं ?"

"है क्यों नहीं, परन्तु उतनी ही तो जितनी कि माँ की ? पुरुष एक सन्तान पैदा करता है, इसका यह अर्थ नहीं कि वह उम्रभर बच्चे और उसकी माँ का पेट भरा करे !"—हरीश ने उत्तर दिया।

"स्त्रियाँ जैसे कुछ करती ही नहीं ?"—शैल ने नया प्रश्न किया।

"स्त्रियाँ तीन तरह की होती हैं"—कुर्सी पर आगे बढ़ हरीश ने कहा—"एक किसान-मज़दूर श्रेणी की औरतें। वे पति के बराबर ही काम करती हैं और पति की गुलामी करती हैं, घाते में। दूसरी हैं, सफ़ेदपोश लोगों की औरतें। यह लोग घर का वह काम करती हैं जिसे आठ दस रुपये माहवार का नौकर बख़ूबी कर सकता है, हाँ सन्तान पैदा करने के काम को अलग रहने दीजिए........।"

संकोच से मुख पर हाथ रख रॉबर्ट की ओर देख शैल ने पूछा—"क्यों, वह कुछ काम ही नहीं ?"

"काम है ज़रूर।"—रॉबर्ट ने स्वीकार किया—"परन्तु सन्तान पाने के लिये ही हमारे समाज में आज दिन कितने लोग विवाह करते हैं ? सन्तान हो जाती है, फिर प्राकृतिक मोह उसे पालने के लिये विवश कर देता है। इस देश में साधारणतः विवाह होता है इसलिये

कि विवाह होना ही चाहिये। विवाह की ज़रूरत महसूस होने से पहले ही वह हो जाता है। जैसे आग लगने से पहले, आशंका के ख़्याल से ही सरकारी इमारतों में आग बुझाने के लिये लाल रंग की बाल्टियाँ लटका दी जाती हैं, या रात में सोने से पहले सिरहाने पानी का गिलास रख दिया जाता है; उसी प्रकार समाज में विवाह हो जाता है। और फिर लोग अपने प्रेम या आसक्ति को तृप्त करने के लिये जब अपने आपको भूल जाते हैं उस समय भी उनके सामने पलने में चाँद से हँसते—खेलते बालक का चित्र नहीं होता। सन्तान तो बाद में आ कूदती है। असल बात तो यह है कि आज का सभ्य समाज सन्तान से डरता है। परन्तु प्रकृति उन्हें धोखा देती है, ठीक उसी तरह जैसे चिड़ीमार जाल में चारा फैलाकर पक्षियों को धोखा देता है। प्रेमियों को दिखाई देता है, केवल शारीरिक आकर्षण का चारा, परन्तु इस चारे में छिपे रहते हैं सन्तान के जाल के फंदे!"

"मुझे अपनी बात कह लेने दीजिये"—अपनी कुर्सी पर असंतोष से और आगे खिसकते हुए हरीश ने कहा—"हाँ, तीसरी हैं अमीर श्रेणी की औरतें। पुरुष के मन बहलाव और सन्तान प्रसव करने के अतिरिक्त वे कुछ नहीं करतीं। अमीर लोग इन्हें बैठा-बैठा कर अपने शौक़ और शान के लिये खिलाया करते हैं जैसे तोता मैना या गोद के पालतू कुत्ते को खिलाया जाता है। आप बताइये ऐसी स्त्री समाज के उपयोग के लिये क्या करती हैं? और समाज उसका पालन पोषण क्यों करे? वह समाज पर बोझ हैं इसीलिये वह पुरुष की कृपा पर निर्भर रहती है, उसकी ग़ुलामी करती है। इस समाज की स्त्रियाँ यदि छतरी और बटुआ हाथ में लेकर मनमानी साड़ियाँ और ज़ेवर ख़रीदने की स्वतंत्रता पा जाती हैं तो अपने आपको स्वतंत्र समझती हैं। परन्तु यदि वे स्वतंत्रता से अपना घर बसाना चाहें, या स्वतंत्रता सन्तान पैदा करना चाहें तो क्या ये स्वतंत्र हैं?"

यह तो मैं नहीं मान सकती कि भद्र श्रेणी की औरतें कुछ करती नहीं"—शैल ने एतराज़ किया और फिर हँसकर कहा—हाँ, तुम तो ऐसा कहोगे ही, समाजवादी जो बन रहे हो !"

अँगड़ाई लेते हुए रॉबर्ट ने मज़ाक किया—"करती क्यों नहीं; नौकरों पर शासन करती हैं, घर सम्भालती हैं, पति से रूठती हैं और पति के दोस्तों से हाथ मिलाती हैं। इस ज़माने में तो औरत बनने में ही फ़ायदा है, शर्त इतनी है कि पती भद्र और अमीर हो और ज़रा अपनी शक्ल अच्छी हो"—और आँख से शैल की ओर संकेत कर दिया।

रॉबर्ट के मज़ाक से बहस में आती उत्तेजना दूर होगई। हँसकर हरीश ने कहा—"अच्छा, आप ही बताइये, क्या यह उचित है कि एक आदमी की सेवा के लिये चार-पाँच आदमी रहें ? इसका अर्थ हो जाता है कि उस आदमी का जीवन सेवा करने वाले चार-पाँच आदमियों के जीवन से अधिक महत्व का है। यदि हमारे समाज में सब आदमियों के लिये शिक्षा और पढ़ाई का अवसर समान रूप से रहे तो केवल रोटी पर तमाम ज़िन्दगी बिताने के लिये कोई तैयार न होगा। ऐसी अवस्था में स्त्री की स्थिति क्या होगी ? क्यों न स्त्री भी पुरुष की योग्यता के समान ही काम करे और ब्याह कर साथ ही रहना हो तो दोनों कमाई कर अपना निर्वाह चलायें !"

हरीश को निरुत्तर करने के लिये कुछ विद्रूप के स्वर में शैल ने कहा—"और खाना कहाँ खायँ ?"

अरे चाहे जहाँ खाइये"—विद्रूप की परवाह न कर हरीश ने उत्तर दिया—"होटल में खाइये या दोनों मिलकर पकाइये और बर्तन मलिये। मैं आप ही से पूछता हूँ ; यदि कम से कम मज़दूरी फ़ी आदमी दो रुपये रोज़ हो जाय तो आप कितने नौकर रख सकेंगी ?"

"ऐसा भी कहीं हो सकता है ?"—शैल ने बेपरवाही से कहा।

"हो क्यों नहीं सकता ? आप तो चाहती होंगी न हो, पर हो खूब

सकता है।"—हरीश ने उत्तर दिया—"फ़र्ज़ कीजिये, देश में बहुत से रोज़गार खुल जायँ, रोज़गारों का मुनाफ़ा मज़दूरों के ही हाथ रहने से उनकी आमदनी बढ़ जाय तो फिर चोचलों के लिये आपको नौकर कहाँ से मिलेंगे? इंगलैण्ड में ही कितने भले आदमियों के घर नौकर रहते हैं?"

"वाहरे तुम्हारा समाजवाद!"—शैल ने मुस्कराते हुये ताना दिया।

नींद को दूर भगाये रखने के लिये सिर खुजाते हुये रॉबर्ट ने कहा—"समाजवाद दो तरह का होता है, एक तो यह कि बड़े आदमी ग़रीबों पर दया कर उनकी अवस्था सुधारने की बात सोचें अपनी स्थिति क़ायम रखते हुये। दूसरा वह जो ग़रीब आदमी अधिकार अपने हाथ में लेकर कायम करना चाहें। पहला हुआ गांधीवादी—समाजवाद और दूसरा रूसी-समाजवाद! यह तुम्हारा 'दादा' अब 'कामरेड' बन रहा है, बचा सकती हो तो बचालो!"

"सुनो हरीश!"—शैल ने कहा—"तुम अपनी पहले वाली क्रान्ति ही जारी रखो। दो गोलियाँ इधर चलाओ, दो बम्ब उधर! लोग तुम्हारे साहस की तारीफ़ करेंगे और शहादत के गीत गायेंगे। और जो तुमने यह नई क्रान्ति चलाई कि नौकर को मालिक के खिलाफ़, स्त्री को पुरुष के ख़िलाफ़ भड़काना शुरू किया तो भले आदमियों में तुम्हारे लिये जगह नहीं।"

"हाँ, कांग्रेसी तो तुम्हारा साथ देने से रहे।"—हँसकर रॉबर्ट ने समर्थन किया! रॉबर्ट की बात से शैल का विद्रूप और ताने का स्वर बदल गया। "रूबी इसका भी क्या जीवन है? सरकार इसे जंगली जानवर की तरह खोजती फिरती है। साथी इसकी जान के पीछे पड़े हैं!"—वह एकटक हरीश की ओर देखती रह गई।

हरीश कुर्सी से उठ खड़ा हुआ—"तो तुम्हें भी मुझपर [illegible] आती है, मेरे विचारों से कोई सहानुभूति नहीं।"

"नहीं, नहीं"—रॉबर्ट ने विरोध किया—"दया नहीं मुझे तुम्हारे विचारों से पूरी सहानुभूति है परन्तु क्या करूँ; मैं केवल सोचा करता हूँ, कर कुछ नहीं सकता।"

हरीश ने मुस्कराकर शैल की ओर संकेत कर कहा—"नहीं, मैं इनकी बात कह रहा था।"

"यदि स्त्रियाँ इतनी चैतन्य हो जायँ तो फिर पुरुष उन्हें प्यार करना छोड़ उनसे डरने लग जायँ"—कह रॉबर्ट ज़ोर से हँसकर उठ खड़ा हुआ।

"सुन लिया ?"—कह हरीश अपने कमरे की ओर जा रहा था। पुकार कर शैल ने पूछा—"सो जाओगे या सुला जाऊँ थपकी देकर ?"

हरीश उत्तर देने के लिये लौट आया। सब विद्रूपों का बदला लेने के लिये उसने कहा—"जब तक स्त्रियाँ और किसी योग्य नहीं हो पातीं तब तक अपना सम्मोहन उन्हें इसी प्रकार बनाये रखना चाहिए !"

शैल कोई उत्तर दे पाती, इससे पहले ही वह लम्बे कदम रखता हुआ चला गया। परन्तु शायद बरामदे में पहुँच उसके कानों तक आवाज़ गई होगी। शैल रॉबर्ट से कह रही थी—"देखो तो, कैसे चिड़-चिड़कर काटने दौड़ता है !" यदि हरीश ने इतना सुन भी पाया तो भी शैल के स्वर में वात्सल्य की स्निग्धता उसे अनुभव नहीं हो सकती थी।

अपनी बात पूरी करते न करते शैल का मनोभाव बिलकुल बदल गया। रॉबर्ट के सन्मुख भी दूसरे युवक के प्रति अपने वात्सल्य का भाव प्रकट कर सकने की स्वतंत्रता के कारण वह कृतज्ञता में डूब-सी गई। वह सोचने लगी, परन्तु क्या यह उचित होगा; समझदारी होगी········ विवाह के बाद भी ?········

× × ×

चौथे दिन तक बरफ़ बहुत कुछ पिघल गई थी। मंसूरी के आस-पास के हरियावल से शून्य पहाड़ नीचे घाटी से ऊपर चोटी तक केवल चट्टानें और पाले से जली हुई घास का विस्तार दिखाई पड़ने लगे।

नैनसी लाहौर लौट चलने के लिये व्याकुल होने लगी। रॉबर्ट के कहने से वह दो दिन और ठहरी फिर रॉबर्ट को ही उसके कहने से चलने के लिये तैयार होना पड़ा। शैल को रॉबर्ट के इतनी जल्दी लौट जाने से दुःख हुआ परन्तु उसने हरीश के साथ कुछ दिन और ठहरने का निश्चय किया।

उन्हें बँगले में छोड़ कुलियों के सिर पर बोझ लदवा नैनसी और रॉबर्ट के चले जाने पर जब बहुत यत्न करने पर भी शैल के आँसू न रुक सके तो हरीश उन्हें रूमाल से पोंछकर सुखाने का यत्न करने लगा। हरीश उसके आँसुओं को जितना पोछता उतना ही अधिक मात्रा में वे निकलते चले आते। सहसा हरीश को समझ आया इन आँसुओं को रोककर वह अन्याय कर रहा है। हृदय में एक गहरी वेदना अनुभव कर शैल को देवदार के तने के समीप अकेली छोड़ वह बँगले के दूसरी ओर जा एक पत्थर पर बैठ संध्या के इंगुर से रंगे पहाड़ के ढलवानों में दूर गहरी खाई की ओर नज़र दौड़ाने लगा। कोई भी लक्ष्य न पा उसकी दृष्टि अधर में ही रह गई। बेसुधी में वह सूखी लम्बी घास के तिनके तोड़ दाँतों से काट-काटकर फेंक रहा था।

मनुष्य का कोई आचरण निरर्थक नहीं होता। आचरण भाव का प्रकट रूप है। जैसे हरीश के दाँत घास के तिनकों को काट रहे थे, उसी तरह उसके हृदय को स्मृति के दाँत काट रहे थे। बरसों से दबा दी गई एक स्मृति उसके मनमें जाग उठी थी। आख़िर वह भी तो मनुष्य है। उसके मनुष्य शरीर में भी तो हृदय है। दबा देने से भी उसका अस्तित्व मिट नहीं गया है, उसकी खुली आँखें उस समय जड़ थीं परन्तु मन की आँखों के सामने भुलाई हुई स्मृति सजीव हो रही थी। जैसे रॉबर्ट चला गया, वैसे ही एक दिन वह भी........

अपने कंधे पर बोझ अनुभव कर उसने सुना—"उठो! यहाँ क्यों आ बैठे?"..............क्या सोच रहे हो?"

"कुछ नहीं"—कह हरीश ने सिर हिला दिया।

कुछ कैसे नहीं !" उसकी बाँह झिझोंड़ते हुए शैल ने कहा—"बताते क्यों नहीं ?"

"तुम क्या सोच रही थीं ?"—हरीश ने उत्तर दिया—"सोचने में ही तो मनुष्य स्वतंत्र है ? और सब जगह तो परिस्थितियों के बन्धन हैं……… इसीलिये मैंने तुम्हारे सोचने में विघ्न डालना उचित न समझा।"

"हाँ,… ………और आकर ख़ुद भी सोचने लगे।"

"हाँ"

"क्या सोच रहे थे, सच बोलो ?………यही बी० एम० दादा……… आगे काम कैसे होगा ?"

"नहीं,………तुम क्या सोच रही थीं ?"

एक गहरा श्वास ले शैल ने कहा—"सोच रही थी पिछली ठोकरें और आनेवाली रुकावटें !"

"मैं भी कुछ ऐसा ही सोच रहा था"—हरीश ने उत्तर दिया।

"बताओ, उठो !" शैल ने उसकी बाँह खींच आग्रह किया।

हरीश उठकर टहलने लगा। शैल चुपचाप उसके साथ-साथ चल रही थी। कभी इस पहाड़ पर, कभी उस पहाड़ पर वह किसी वस्तु की ओर ध्यान दिलाती। हरीश देखकर केवल "हूँ" कर देता। शैल ने उपालम्भ के स्वर में कहा—"क्या आदमी हो, बात का उत्तर भी नहीं देते।"

"देखो शैल, दुनिया के सामने अपने आपको छिपाकर जो वे चाहते हैं, वही मुझे बनना पड़ता है। आज तुम्हारे समीप अपने को छिपाये रहने का कोई कारण न होने से मैं अपनी ही बात सोच रहा हूँ, बिना आडम्बर किये।"

"क्या ?" शैल ने उसके हाथ को अपने दोनों हाथों में ले पूछा।

"यही, व्यक्ति का जीवन भी एक चीज़ है ? तुम तो जानती हो हरीश मेरा असली नाम नहीं ?"

"हाँ, पहले तो तुम सिक्ख थे। यह तो जेल से भागने के बाद का नाम है.......बी० एम० ने मुझे बताया था।"

"हाँ देखो, सात बरस पहले ऐसे ही एक जाड़े की रात में गाँव का अपना घर चुपचाप छोड़ चला आया था। मेरा विवाह हुए दो बरस हुए थे और मेरा गौना अगले दिन होने जा रहा था।

"तुम बड़े निष्ठुर हो!"

"मैं निष्ठुर; शायद!"

"तुम्हें उसकी याद आती है?"

"यही तो मैं सोच रहा था। आती भी है और नहीं भी! जब सोचता हूँ पुरुष के जीवन में स्त्री का एक प्राकृतिक स्थान है, तब याद आती है, मेरी भी एक थी। तब बहुत याद आती है..........वरना नहीं आती?

"अच्छा तुम उससे कैसा व्यवहार करते?" कुछ सोच शैल ने पूछा।

"तुम पागल हो!"

"नहीं बताओ!"

"ठीक नहीं कह सकता.......शायद मैं उसे देखता कि वह सुन्दर है.......।"

"और यदि वह सुन्दर न होती?"

"ऐसा भी होता है कि स्त्री सुन्दर न हो?"

"क्या सभी स्त्रियाँ सुन्दर होती हैं, इधर देखो!"

"देख जो नहीं सकता!"

हरीश सूर्य की अंतिम किरणों में सुदूर हिम श्रेणी के शृंगों की ओर देख रहा था। जो अग्नि की स्थिर ज्वाला की भाँति दीप्त थे! ख़ूब ठण्डी हवा चल रही थी परन्तु उसे परवाह न थी।

शैल ने उससे भीतर चलने को कहा। उसकी ओर बिना देखे ही उसने जवाब दिया—"तुम जाओ।"

शैल उसके समीप ही खड़ी रही। देखते-देखते हिम शिखरों पर से सूर्य का प्रतिबिम्ब विलीन हो गया और एक श्यामल नीलिमा छा गई। शैल ने फिर कहा—"अबतो चलो।"

"क्यों ?"

"अब क्या है ?........वह शोभा तो गई ?"

"हाँ, जिन वस्तुओं में आकर्षण नहीं रहता, वे उपेक्षित रहती हैं।"

"जैसे ?"

"मैं स्वयम्।"

कुछ देर चुप रह शैल ने दोहराया—"चलो आओ सर्दी लग जायगी, नौकर खाना लिये इंतज़ार कर रहा है।"

हरीश की चुप शैल के दिल का बोझ बन रही थी। वह सोचती थी, न जाने कौन दुःख इसके दिल को कोंच रहा है। खाने के बाद कुछ देर चुपचाप बरामदे में चहल कदमी कर हरीश अपने बिस्तर पर जाना चाहता था परन्तु शैल उसे अपने ही कमरे में ले आई। उसने कहा—"तुम्हें एक बात सुनाऊँ, तुमने नैनसी को नाराज़ कर दिया। वह कहती थी, बड़ा गुरूर है। इतनी दफ़े इससे बोलने का यत्न किया पर सदा ऐसे बात करता है, जैसे एहसान कर रहा हो। मैं बरफ़ में फिसलने लगती तो ऐसे बाँह थामता था मानो मेरी बाँह में छूत का रोग हो।

"अच्छा ?"—हरीश ने उत्तर दिया—"मैंने ख़ास ख्याल नहीं किया। मेरा ख्याल था, तुम्हारी तरफ़।"

"हैं ?"—शैल ने उसकी आँखों में देख पूछा।

"हाँ"—दीवार की ओर देख उसने कहा—"मुझे रॉबर्ट से ईर्षा होती है........परन्तु द्वेष नहीं।........तुम मेरा मतलब ग़लत तो नहीं समझीं ! देखो शैल, तुमने जीवन में प्यार करके देखा है। तुम्हें कोई अच्छा लगता है तो उसके लिये चाह होने लगती है और चाह होने पर उसे प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है। तुमने यह सब अनुभव

किया है।.......इसमें जब बाधा आती है तो उस व्यथा को भी तुम जानती हो?........"अच्छा अब मैं जाऊँगा।"

शैल ने उसका हाथ थाम बैठा लिया—"नहीं, बैठो।" उसे चुप होते देख उसने आग्रह किया—"बोलो!.......आगे कहो!"

"कुछ नहीं"—हरीश ने कहा—"मैं सोचता हूँ, क्या चाह जीवन का आवश्यक अंग है?"

"शायद........" शैल ने जवाब दिया—"देखो, पिछली दफ़े ठोकर खा मैंने सोचा था, अब मनमें चाह का अंकुर उगने न दूँगी। रॉबर्ट के कॉलिज से इस्तीफ़ा देने की बात पर सहानुभूति प्रकट करने गई थी। वहाँ फ़्लोरा की बात सुनी रॉबर्ट की उदारता और महानता ने मन पर कुछ ऐसा प्रभाव डाला कि रोज़ जाने लगी। उसकी उदासी का ख़याल आते ही उसे देखे बिना मन न मानता। जब सोचा क्यों जाती हूँ, उत्तर मिला—इस शांत तटस्थ व्यक्ति की शान्त गति के साथ ही मेरे जीवन की यह शिकस्ता गाड़ी चल सकेगी। यह मेरे कलंकों की लिस्ट में एक और वृद्धि हुई। उसे ही मैंने अपना लक्ष्य बना लिया। और उसके बाद, किस्मत का मारा बी० एम० जाने कहाँ से तुम्हें ले आया। तुम्हें पहचानने के बाद ऐसा जान पड़ा, मानो बहुत दिन से तुम्हारी प्रतीक्षा में थी। जैसे पूर्व जन्म का बिछड़ा कोई साथी आ मिला। समझ नहीं सकी, भाई, मित्र 'सन्तान या पति तुमसे कौन सम्बन्ध था? बी० एम० की वह बात............"कर लो किसी को अपना या हो रहे किसी के" मैं तो सम्भव नहीं देख पाती। क्या संसार भर की अच्छाई एक ही व्यक्ति में समा सकती है? और जगह अच्छाई दिखाई देने पर उसे कैसे अस्वीकार कर दिया जा सकता है? क्या मनुष्य हृदय का स्नेह केवल एक ही व्यक्ति पर समाप्त हो जाना ज़रूरी है?.......हरि, चुप हो गये, क्यों? दुखी क्यों होते हो?"

उसके सिर पर गाल रख शैल ने पूछा।

"सिर कुछ भारी जान पड़ रहा है"—अपने सिर के बालों को पकड़ हरीश ने कहा—"तुम्हारी गोद में सिर रखकर लेटूँगा ।"

"लेट जाओ न !"—उसे लिटा शैल ने उसके माथे पर हाथ रख दिया ।

"देखो, यदि सात बरस पूर्व उसकी जगह तुम होतीं और मैं तुम्हें यों पहचान पाता, तो क्या मैं तुम्हें छोड़कर जा सकता ?"—हरीश ने आँखें मूँदे हुए पूछा ।

"ज़रूर, नहीं तो तुम 'तुम' न होते !"

आँखें खोल हरीश ने देखा, शैल की पलकों से दो बूदें लटक रही थीं । "तुम रो रही हो"—उसने पूछा । सिर हिला शैल ने इनकार किया । हरीश ने दोनों बाँहें उठा उसके गले में डाल उसका माथा झुका अपने होठों पर रख लिया शैल ने प्रतिकार न किया । अपने माथे पर शैल की आँसुओं की बूदें बहती अनुभव कर सिर उठा उसने कहा—"यह क्या ? तुम तो रो रही हो ?"

शैल ने फिर इनकार से सिर हिलाया । व्याकुल हो हरीश ने उसके होठ चूम लिये । शैल के शरीर में बिजली-सी दौड़ गई, वह काँप उठी । घबराकर हरीश उठ खड़ा हुआ । लज्जा से आँखें झुका उसने कहा—"क्षमा करना········मुझसे ज्यादती हो गई········मेरा अभिप्राय तुम्हें कष्ट देने का नहीं था ।" शैल की आँखों से मोटे-मोटे आँसू गिर रहे थे । उसकी गालें लाल हो रही थीं । उसकी ओर देख लज्जा से संकुचित हो हरीश अपने कमरे में चला गया ।

क्षोभ और घबराहट की अवस्था में कपड़े पहने ही वह अपने बिस्तर पर जा लेटा । वह बिजली के तीव्र प्रकाश में सामने की सफ़ेद दीवार पर टकटकी लगाये पड़ा था । मीलों दूर तक के उस सुनसान में केवल अपने सिर की नाड़ियों के रक्त के वेग की सॉय-सॉय ही सुनाई दे रही थी । बरामदे में शैल के क़दमों की चाप भी उसे सुनाई न दी,

दरवाज़ा खुलने की आहट से उसने उस ओर देखा। शैल मुस्कराती हुई आरही थी। अत्यन्त मधुर स्वर में उसने पूछा—"नाराज़ होगये ?"

'मैं ?" विस्मय से हरीश ने पूछा। उसे अनुभव हुआ मानों अथाह जल-प्रवाह में डूबते हुए अचानक उसके पैर पृथ्वी पर आ लगे हों।

"उठ क्यों आये ?"—शैल उसके बिस्तर पर बैठ गई।

"तुम डर गई थीं !"

"पागल !" शैल उसके बालों में उँगलियाँ चलाने लगी।

"स्त्रियों को पुरुषों से डर क्यों लगता है ?" हरीश ने उसके मुख की ओर देख प्रश्न किया।

"कौन कहता है डर लगता है ?........और शायद लगता भी हो, जब वे पशु रूप धारण कर लेते हैं।"

"क्या मैं पशु बन गया था ?"

"पागल ?........इसीलिए मैं यहाँ आई हूँ ?"

हरीश ने शान्ति का श्वास लिया—"देखो शैल ! ऐसा जान पड़ता है, सात वर्ष पूर्व तुम्हें छोड़ आया था और अब फिर तुम्हारे पास आ पहुँचा....मेरा अभिप्राय है नारी के रूप में"....शरमाकर उसने बात सम्भाली—"पति के रूप में नहीं........साथी के रूप मे। तुम पूछती थीं, मुझे उसकी याद आती है परिपूर्ण सुन्दरी नारी के रूप में जो अग्नि की सिन्दूरी लपट के समान मेरे सामने खड़ी है और मैं उसमें समा जाना चाहता हूँ। नारी शायद यही है....और तुम उसका एक उत्कृष्ट रूप हो।"

शैल के गाल और आँखें गुलाबी हो रही थीं, मुख से शब्द निकलना कठिन था। केवल एक मुस्कराती नज़र से हरीश की ओर देख उसने प्रकट किया कि वह नाराज़ नहीं।

भयंकर उलझन में से निकलने के लिये हरीश ने कहा—"सुनो शैल, क्या स्त्री हमेशा ही पुरुष को पीछे हटाती है ? फर्ज करो यदि उन दोनों का मार्ग एक ही हो........उन दोनों का उद्देश्य एक ही हो ?"

क्यों; "आगे भी ले जा सकती है"—शैल ने उत्तर दिया।

"स्त्री को तो पुरुष के जीवन की पूर्ति करनी चाहिए। उन दोनों को एक साथ आगे बढ़ना चाहिये! नहीं क्या?"

"ज़रूर!" शैल ने उत्तर दिया।

यदि पुरुष के जीवन-विकास में स्त्री का आकर्षण विनाशकारी होता तो प्रकृति यह आकर्षण पैदा ही क्यों करती? जिन वस्तुओं से मनुष्य के जीवन को भय है, उनसे वह डरता है, दूर भागता है। परन्तु पुरुष स्त्री की ओर दौड़ता है, मानो उसके जीवन में कोई कमी है, जिसे वह पूर्ण करना चाहता है। क्या स्त्री भी पुरुष के प्रति ऐसा ही अनुभव नहीं करती?"—हरीश ने पूछा। उसके स्वर से भावोद्रेक की तरलता दूर हो यथार्थ की दृढ़ता आती जा रही थी। उसका रुख़ व्यक्तिगत से साधारण की ओर होता जा रहा था।

"क्या मालूम?"—आँखे झुकाकर शैल ने उत्तर दिया। शैल के इस उत्तर ने हरीश को यथार्थ के तर्क से फिर व्यक्तिगत अनुभूति में बदल दिया।

"तुम नहीं अनुभव करतीं·······इसीलिये मैं सोचता हूँ मैं अच्छा आदमी नही हूँ"—निराशा से हरीश चुप होगया।

नारी की स्वाभाविक अनुभूति से शैल को जहाँ शक्ति की प्रत्याशा करनी चाहिये थी, वहाँ उदासी देख करुणा से अपना सम्पूर्ण साहस एकत्र कर आँखें झुका उसने कहा—"शायद····स्त्रियाँ कहती नहीं।"

डूबते हुए दूसरी दफ़े सहारा पा हरीश ने कहा—"तुम्हें बुरा तो नहीं मालूम होगा यदि मैं एक बात कहूँ?"

शैल के सिर हिलाकर इनकार करने पर काँपते हुए स्वर में उसने कहा—"मुझे तुम्हारे प्रति आकर्षण अनुभव होता है·······नाराज़ तो नहीं हुई न?·······बोलो!"

शैल की आँखों में फिर आँसू आना चाहते थे; परन्तु ऐसे व्यक्ति

के सामने जो क्रोध और संतोष के आँसुओं में अन्तर नहीं समझता, ओठ दबाकर उसे कहना पड़ा—"आदर से भी कोई नाराज़ होता है।"

एक बड़ी भारी विजय के आह्लाद से हरीश के नेत्र चमक उठे—। "शैल मेरी एक बात मानोगी ?"

"क्या ?"

"पहले वायदा करो !"

शैल के सिर झुकाकर स्वीकार करने पर हरीश ने कहा—"देखो शैल—उसके स्वर में कम्पन था—"मैं कुछ भी न करूँगा.......मैं केवल जानना चाहता हूँ, देखना चाहता हूँ, स्त्री कितनी सुन्दर होती है ? मैं स्त्री के आकर्षण को पूर्ण रूप से देखना चाहता हूँ।"

रोमांचित हो शैल ने पूछा—"कैसे ?"

श्वास के वेग के कारण अटकते हुए हरीश ने कहा—"तुम्हें बिना कपड़ों के देखना चाहता हूँ।"

शैल ने दोनों हाथों से मुख छिपा लिया। हरीश ने फिर कहा—"जीवन में एकबार मैं देखकर जान लेना चाहता हूँ, वह प्रबल आकर्षण है क्या ? मेरे जीवन में किसी और स्त्री से यह प्रार्थना करने का न तो अवसर आयेगा और न मुझे साहस ही होगा ?" शैला अब भी दोनों हाथों में मुख छिपाये थी। हरीश ने काँपते हुए स्वर में फिर पूछा—"नाराज़ हो गई ?"

मुख को हाथों से ढाँपे ही सिर हिला उसने फिर इनकार किया। हरीश आगे बढ़कर उसके मुख से हाथ हटाने लगा। शैल ने अपनी दोनों बाहें हरीश के गले में डाल दीं। हरीश ने अनुरोध किया—"नहीं कर सकतीं इतना ?"

मुख दूसरी ओर कर उसने पूछा—"कैसे करूँ ?" और फिर हरीश की ओर देख वह बोली—"बड़ा कठिन है.......मैं नहीं कर सकूँगी।"

निराशा से सिर झुका हरीश ने कहा—"तुम्हारी इच्छा।"

"पर मैं कैसे करूँ ?" गर्दन झुका अपनी बाँहों को आपस में बल देते हुए उसने पूछा। उसी समय उसे स्मरण हो आई हरीश की वह बात ; जीवन में किसी और स्त्री से तो····! "तुम तो सामने बैठे हो।" उसने बेबसी से कहा।

हरीश ने उत्तर दिया—"मैं बरामदे में चला जाता हूँ तुम बुलाओगी तो आ जाऊँगा।"—वह उठकर चला गया।

हरीश के बरामदे में चले जाने के बाद शरीर से कपड़े उतारना शैल के लिये अपनी त्वचा उतारने के समान कठिन जान पड़ने लगा। परन्तु हरीश के निराशा से सिर लटका लेने की बात सोचकर वह स्वयम् अपने ऊपर ज़बरदस्ती करने के लिये विवश थी। मृत्यु के मुख में फँसा हुआ यह लड़का जो बात कहता है, उसकी उपेक्षा कैसे की जाय ? एक-एक कर अपने कपड़े उतार शरीर को शाल में लपेट लिया परन्तु हरीश को बुलाये वह किस तरह बिजली का स्विच दबा उसने अँधेरा कर दिया।

संकेत समझ शनैः-शनैः क़दम रखते हुए हरीश स्विच के पास पहुँचा। प्रकाश होने पर उसने देखा शैल के सब वस्त्र उसके बिस्तर पर पड़े हैं और वह सिर झुकाये, दीवार के सहारे शाल में लिपटी बैठी है।

दो कदम दूर ही खड़े हो हरीश ने कहा—"यह शाल काँच का तो बना नहीं है।" शैल की आँखें मुँदी थीं। शाल का एक छोर उसने छोड़ दिया। उसकी पीठ दिखाई देने लगी। हरीश ने कहा—"खड़ी हो !" हरीश के दो दफ़े अनुरोध करने पर वह धुयें की बल खाती लट की तरह सीधी खड़ी हो गई। उसकी आँखें मुँदी हुई थीं। हरीश ने फिर कहा—"एक दफ़े आँखें खोलो !"

शैल ने अधमुँदी आँखों से हरीश की ओर देखा और फिर तुरन्त बैठ शाल ऊपर ले बोली—"जाओ बाहर !"

हरीश चला गया। दो मिनट में पूरे कपड़े पहन शैल अपने कमरे

की ओर जा रही थी। हरीश उसके पीछे गया। वह अपने बिस्तर पर लेट गई जैसे वह बहुत थक गई हो।

उसके तकिये के पास खड़े हो हरीश बोला—"देखो शैल, मुझे ऐसा अनुभव होता है जैसे बहुत कुछ पा लिया। एक पूर्णता सी······ जैसे तुम मेरी हो और मैं तुम्हारा! और इसी भरोसे मैं अपने बीहड़ मार्ग पर बढ़ता चला जाऊँगा। नहीं तो तुम्हारे सामने अपराधी होऊँगा।"

उसका हाथ थाम अपने बिस्तर पर बैठा शैल ने उसकी गोद में सिर रख दिया।

हरीश ने कहा—"अब यदि और कोई मुझे न समझ सके, तो तुम्हारी सहानुभूति तो मेरे साथ रहेगी न?"

आत्मतुष्टी और संतोष में एक दूसरे की उपस्थिति अनुभव करते हुए वे चुपचाप बैठे रहे। हरीश ने शैल के सिर पर हाथ रख पूछा—मैंने जो पाया, वह तो मैं जानता हूँ,·······तुमने क्या पाया?"

"क्या बताऊँ हरीश,·······शायद सब कुछ, जो कुछ चाहा जा ता है·······अपने अस्तित्व को अनुभव करने की तृप्ति·······अवरुद्ध ना के लिये मार्ग·······देखो तुम चाहते हो केवल शासन में क्रान्ति तु समाज की व्यवस्था के बन्धन में व्यक्ति के अवरुद्ध प्राण कैसे टाते हैं,·······इसे तुमने जाना·······? क्या व्यक्ति के जीवन में ना पूर्ति का अधिकार नहीं चाहिए·······? मैं तो सबसे समीप यही न अनुभव करती हूँ!"

७

गृहस्थ

"जे० आर० शुक्ला" और "हरीश" यह दो नाम अमरनाथ के मस्तिष्क में बारी-बारी से चमक जाते। अपनी स्मरण शक्ति पर सन्देह करने की कोई गुंजाइश न थी;......ठीक याद था, बिलकुल ठीक! उसने अपना नाम जे० आर० शुक्ला बताया था और यशोदा उसका नाम बताती है, "हरीश"। वे सोचते रहे, वह आदमी यशोदा से परिचित है और इनका परिचय शैलबाला के मकान पर हुआ है। यशोदा शैलबाला के यहाँ आती-जाती है, इस बात का ज़िक्र उसने पहले कभी क्यों नहीं किया? शहर भर में पाँच-सात परिवारों में ही यशोदा का आना जाना था; उन्हें वे जानते थे! शैलबाला से उसका क्या सम्बन्ध? कहाँ का परिचय? शैलबाला कांग्रेस के जलसों में आती-जाती है। दूसरे सार्वजनिक कामों में भाग लेती है। सार्वजनिक कार्य के लिहाज़ से वह चाहे जैसी काम करने वाली हो, लेकिन गृहस्थ के घर में आना-जाना उसका कुछ बहुत ठीक नहीं। फिर उनसे ज़िक्र न करने की वजह? हरीश या शुक्ला को उनके यहाँ देख यशोदा सकपका क्यों गई?

उस घटना को चार-पाँच दिन बीत चुके थे। जे० आर० शुक्ला बीमे के लिये स्वयम् उनके यहाँ आने का वायदा कर गया था और आया नहीं। अपना पता बताने की बात वह टाल गया! अपना बीमा स्वयम् उनके यहाँ कराने कोई व्यक्ति आया हो, ऐसा भी यह पहली बार ही हुआ! उन्होंने यशोदा से तीन-चार बार पूछने की कोशिश

की—"कबसे तुम उसे जानती हो, शैलबाला के यहाँ कै बार उससे मिली हो ?" "एक बार"—यशोदा ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

—"कितने दिन की बात है ?"

—"महीना भर हुआ होगा।"

—"क्या बातचीत हुई थी ?"

—"यही कांग्रेस के काम की।"

अमरनाथ हैरान थे। शहर में कांग्रेस का काम करनेवाला ऐसा कौन है, जिसे वे नहीं जानते ? अपनी पार्टी के सभी आदमियों को वे जानते थे ; सोशलिस्ट और गरम दल के लड़कों को भी। शैलबाला तो जिधर आठ-दस जवान लड़के रहते थे, उसी ओर रहती थी। ऐसे लफंगे लड़कों को भी वे जानते ही थे परन्तु इस नौजवान को उन्होंने कभी नहीं देखा। कांग्रेस में काम करनेवाला यह आदमी ; सूट, नेकटाई पहने हुए ? वह अपने आपको 'जिरेमी-जानसन कम्पनी' का ट्रैवलिंग इञ्जीनियर बताता था।

अमरनाथ ने फिर एक दिन यशोदा से पूछा—"तुम भी कांग्रेस में काम करती हो ? तुम तो कांग्रेस की मेम्बर नहीं हो !"

"मैं हूँ"—यशोदा ने उत्तर दिया।

"कबसे ?"

"कई दिन से !"

यशोदा जो उत्तर देती, बहुत संक्षिप्त ; आँखें झुकाकर। पिछले आठ वर्ष में यशोदा का ऐसा भाव उन्हें कभी अनुभव नहीं हुआ। यशोदा के व्यवहार से जान पड़ता था जैसे उसके मनमें कुछ भरा हो, वह अपने आपको कुछ समझने लगी हो। मन की अशांति से वे उद्विग्न से रहने लगे। उनके पड़ोसी गिरधारीलाल को बैंक की मार्फत प्रायः सभी बड़ी-बड़ी कम्पनियों के नाम-धाम मालूम थे। अमरनाथ ने 'जिरेमी जानसन' की बाबत उनसे पूछा। गिरधारीलाल ने कई दूसरी

इञ्जीनिरिंग कम्पनियों का नाम सुनाकर कहा—"जिरेमी जानसन का नाम तो कभी नहीं सुना !" अमरनाथ ने कई दूसरे परिचित लोगों से 'जिरेमी जानसन' के बारे में पूछा। टेलीफोन की डायरेक्टरी में भी देखा परन्तु यह नाम उन्हें कहीं न मिला !

यशोदा स्वभाव से ही कम बोलती थी, अलबत्ता अमरनाथ से बात करते समय वह सदा आँखों से मुस्कराती रहती। परन्तु जिस दिन से अमरनाथ ने हरीश के बारे में खोद-खोद कर प्रश्न पूछे, बात करते समय एक संकोच का भाव यशोदा के चेहरे पर आजाता, आँखें झुक जातीं अमरनाथ भी जहाँ तक सम्भव था, न बोलते। दोनों के बीच एक अदृश्य अन्तर आगया।

एक सप्ताह और गुज़रने पर अमरनाथ ने फिर साहस कर पूछा—"उसका नाम हरीश था ?" मुझे तो उसने अपना नाम बताया था, जे० आर० शुक्ला !"

"होगा, मुझे शैल ने और उन्होंने हरीश नाम ही बताया था।" अपराधी के स्वर में यशोदा ने उत्तर दिया।

"कांग्रेस के कैसे काम की बाबत तुम लोगों में बातचीत हुई थी ?"—अमरनाथ ने पूछा।

"ऐसे ही, जैसे कांग्रेस का काम होता है, स्वराज्य की बात।"—यशोदा ने सिर झुका लिया।

इसके अधिक पूछने के लिये कुछ न था परन्तु अमरनाथ की उदासी और स्वर-संकोच ने, इन प्रश्नों के नीचे मनमें छिपी गहरी आशंका यशोदा के सामने प्रकट कर दी। "इनके मनमें मेरी बाबत सन्देह है ?"—यशोदा दाँयें हाथ की मुट्ठी पर ठोड़ी रक्खे बैठी सोच रही थी। 'सन्देह' का विचार आते ही भय और ग्लानि से उसके होंठ काँप उठे और अन्याय की अनुभूति से क्रोध की भावना ने उठते हुए आँसुओं को दबा दिया। सन्देह आखिर क्यों ? मैंने क्या किया है ? किस बात का सन्देह ?

घंटों छत की ओर देख-देख वह सोचती—यह मेरा अपमान क्यों कर रहे हैं—मुझ पर यह ज़्यादती क्यों कर रहे हैं ?·······आखिर मैंने किया क्या है ? यही न कि एक आदमी से मेरे परिचय का इन्हें पता लगा ?·······मैंने इन्हें यह नहीं बताया कि मैंने कांग्रेस में काम करने की बाबत बातचीत की है ?·······यह आठ बरस से कांग्रेस का काम कर रहे हैं। मैंने तो कभी इनसे नहीं पूछा कि वे क्या और क्यों कर रहे हैं ?·······इतनी-सी बात पर सन्देह ? केवल इसलिये न कि मैं स्त्री हूँ। मानो स्त्री "सन्देह" के काम के सिवा और कुछ कर ही नहीं सकती ! हरीश को रात भर नीचे के कमरे में टिकाने की बात उसे याद आ जाती ? परन्तु यह तो वे जानते नहीं और जानें तो न जाने क्या समझें ? परन्तु उसमें मैंने कौन बुरी बात की ?

कई दफ़े वह खूब रोई भी परन्तु इस ढंग से कि कोई देख न सके वह अन्याय अनुभव कर रही थी और सह जाने के सिवा चारा न था। इसका उपाय था ही क्या ? वह मुआफ़ी माँगे तो किस बात की ? यही उसके भाग्य में था, सो हो रहा है। जैसे विवाह, सन्तान आदि और बातें हुईं, उसी तरह यह भी होना था, हो रहा है। उसे केवल दुख था, आठ बरस में इन्होंने मेरा ऐसा कौन काम देखा कि यह मुझ पर सन्देह करने लगे।

अपने घर से बाहर जाने का उसे अभ्यास नहीं था। कभी महीने दो महीने में किसी के बुलाने से घंटे दो घंटे को कहीं चली जाती। तबीयत चाहती थी, इस घर को छोड़कर कहीं चली जाय ! या फिर इस ज़ुल्म से उसकी मुक्ति मृत्यु से ही हो सकती है। वह मर ही क्यों न जाय ? उसके मर जाने से हानि ही क्या होगी ? स्त्रियों का मरना-जीना ही क्या ? जब तक पुरुष प्रसन्न हैं, जीती हैं, पुरुष अप्रसन्न होगये, मरना होगया। सास ने कई दफ़े उससे सुस्त रहने का कारण पूछा। समय-समय पर सोंठ या कुछ और गरम या ठण्डी चीज़ खाने की सलाह भी दी। एक

आध दफ़े डाक्टर के पास लेजाने की भी तैयारी की परन्तु यशोदा ने टाल दिया कि उसे कोई तकलीफ़ नहीं।

उदय आकर उससे चिपट जाता। वह उसे गोद में ले लेती। पहले उदय किसी बेमतलब के लिये जिद्द करता तो यशोदा उसे गोद में लेकर घण्टों समझाया करती परन्तु अब संकट से छुट्टी पाने के लिये वह उसकी जिद्द मान जाती या फिर आतुर स्वर में कहती—"बेटा, देखो अब तो तुम बड़े होगये हो, क्यों सताते हो ?" उदय को फुसलाने और मनाने से अब संतोष न होता। परन्तु जब उदय जिद्द में कहता, वह पिता जी के पास चला जायगा तो वह उसे गोद में ले उसके सिर पर हाथ फेरने लगती।

एक ही बात वह उससे पूछती—"बेटा तुम बहादुर बनोगे ?" उदय माँ की गोद से छूटने की कोशिश कर कहता—"हाँ ! अपनी बन्दूक ले आऊँ ?" उसके पास एक हवाई बन्दूक थी। यशोदा ने हरीश के हाथ में देखे हुए पिस्तौल की याद में बेटे के लिये वह ख़रीद दी थी। कभी-कभी यशोदा के मन में इच्छा होती कि जाकर शैल से मिल आये। इस भय से कि पति कहीं इस बात से और अधिक नाराज़ न हो जायँ, वह मन मार रह जाती। वह पीली पड़ती गई। उसे निश्चय हो गया, अब इसी तरह बिसूर-बिसूर कर वह एक दिन समाप्त हो जायेगी।

अमरनाथ को घर का अपना जीवन बिलकुल नीरस जान पड़ने लगा। बीमे के काम में ही वे अपना सब समय लगा देते। ऊपर अब वे सिवा भोजन और सोने के समय के न जाते। काम करते समय भी प्रायः फाउण्टेनपेन दाँतों में दबा खिड़की से बाहर देखने लगते। हरीश सूट पहने सिगरेट पीते हुए उनकी आँखों के सामने नाच जाता। "यह शख़्स कौन है ?"—वे सोचने लगते। उसका वह हँस-हँसकर बातें बनाना, शैल के साथ उसका गाड़ी में बैठकर चला जाना, सब उन्हें उसके घुटे हुए बदमाश होने का सुबूत जान पड़ता।

यशोदा के बारे में वे सोचते, आठ बरस तक मैंने उसका अंध-विश्वास किया। आख़िर हरीश से क्या उसका एक ही दिन का परिचय है? तब फिर वह उसकी याद में इतनी उदास क्यों रहती है। मैं आठ वर्ष में कुछ न हुआ और वह एक ही दिन में इतना हो गया? अपनी ही आँखों के सामने वे अपने आपको अपमानित और निकृष्ट जीव अनुभव करते। जिस मनुष्य को स्त्री उसे निकम्मा समझे, उस मनुष्य का जीवन भी क्या? कभी यशोदा को दण्ड देने की भावना उनके मन में आती। उसे उसके मायके भेज दें और कभी न बुलायें। या घर से निकाल दें? दूसरे आदमियों से दोस्ती करने का मज़ा उसे मिल जाय। अनेक असती स्त्रियों के दण्ड पाने की बात उन्हें याद आ जाती। परन्तु इससे भी अन्त में उन्हीं का तो अपमान था। यदि स्त्री असती है तो इसमें स्त्री का जितना अपमान है, उससे सौगुना अधिक उसके पति का। वे सोचते—स्त्री स्वभाव से ही चंचल होती है। यशोदा तो कभी चंचल दिखाई नहीं दी परन्तु स्त्री का क्या विश्वास? स्त्री पतन और अनाचार का मूल है, उसका कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। इस प्रकार की बातों पर वह पहले विश्वास नहीं करते थे परन्तु अब उन्हें मालूम पड़ा, उनकी ग़लती थी। अब उनकी आँख खुली है और अब उन्होंने दुनियाँ को पहचाना है। स्वयं अनेक सुन्दर स्त्रियों को समय-समय पर देखा था। उनके प्रति अत्यन्त सूक्ष्म आकर्षण भी उनमें पैदा हुआ तो क्या, अपने मन को उन्होंने सदा वश में रक्खा। परन्तु स्त्री भी क्या है? एक लड़के को देखा, वह कुछ सुन्दर भी नहीं, बातूनी ज़रूर है और उसके साथ फँस गई।

कभी उनके मनमें विचार आता-जो हुआ सो हुआ, वे यशोदा को समझायें कि उसका ख़याल छोड़ दे। फिर ख़याल आता—न जाने उनका सम्बन्ध कहाँ तक बढ़ चुका है? यदि सम्बन्ध केवल मानसिक हो तो एक बात है और यदि वे आगे बढ़ चुके हैं?·······परपुरुष से

अपनी स्त्री के शारीरिक सम्बन्ध की बात सोचते ही सिर चक्कर कर उनकी आँखों में ख़ून उतर आता। इसके बाद उन्हें केवल एक ही बात दिखाई देती.......मृत्यु.......यशोदा की...अपनी....दोनों की!

हरीश से यशोदा के मानसिक और शारीरिक सम्बन्ध की कल्पना अनेक बेर मस्तिष्क में आने पर वे सोचने लगते। इन दोनों में से कौन अधिक पाप है? तर्क ने उत्तर दिया—मानसिक सम्बन्ध का क्या है; विचार आते हैं और चले जाते हैं परन्तु शरीर तो एक स्थूल पदार्थ है। शरीर के साथ जो कुछ हो गया वह तो मिटाया नहीं जा सकता। इसके बाद तर्क कहता—शरीर का क्या है; अनेक पदार्थों को हम छूते हैं हाथ साफ़ कर डालते हैं। वे हमारे शरीर का अंग तो नहीं बन जाते! मनुष्य है क्या? भावों और विचारों का पुतला ही तो? जब भावों और विचारों में परिवर्तन आ गया तो वह व्कक्ति पहला व्यक्ति ही नहीं रहा। उसे समाप्त समझ लेना चाहिये! अकेले में बैठकर वे प्रायः लम्बी साँसें लेते। परन्तु प्रत्यक्ष व्यवहार में सामर्थ भर उन्होंने अन्तर न आने दिया। उन्होंने सोचा, क्यों न एक दिन वे यशोदा से इस विषय में बात करें? परन्तु इसके साथ ही ख़्याल आता, क्या वह मुझे सच्ची बात बतायेगी? यदि मेरे प्रति उसका वह विश्वास होता तो दूसरे पुरुष के प्रति उसका आकर्षण ही क्यों होता?

अँधेरे में वे दोनों अपने-अपने पलँग पर पड़े छत की ओर आँखें लगाये रहते। नींद दोनों को ही बहुत देर से आती परन्तु वे बात न कर सकते! अनेक बार अमरनाथ के होठों तक बात आकर रह जाती। एक-दो बेर कह डालने के लिये उन्होंने पुकारभी लिया—"देखो!...." यशोदा ने उत्तर दिया—"जी।" परन्तु फिर अमरनाथ को साहस न हुआ। सोचा—क्या लाभ? कह दिया—"उदय को अब स्कूल में भरती करा देना ठीक होगा।" यशोदा ने उत्तर दिया—"जैसा ठीक समझें!"

× × ×

किसी भी काम में उत्साह और रुचि न होने के कारण यशोदा एक शाल ओढ़ खाट पर पड़ी पतंगों से भरे आकाश की ओर आँखें गड़ाये सोच रही थी, आख़िर जीवन का क्या होगा? बिशन (नौकर) ने ख़बर दी—

"बीबीजी, नीचे एक बीबीजी मिलने आई हैं?"

"कौन बीबीजी?" यशोदा ने आलस्य से लेटे-लेटे पूछा। उसे शैल का ख़याल आया परन्तु उसके आने की कोई सम्भावना न समझ वह अपने दूसरे सम्बन्धियों की बात सोच ही रही थी कि ज़ीना चढ़, आ शैल ने प्रश्न किया—"कहो कैसे लेटी हो?"

यशोदा तुरंत उठ बैठी—"ऐसे ही कुछ नहीं आओ!" यशोदा ने आत्मीयता से चारपाई पर उसे बैठा लिया—"बहुत दिनों में दर्शन दिये। कई दफ़े सोचा तुम्हारे यहाँ जाऊँ, जा नहीं सकी। अच्छी हो? वह तो दीख रहा है, ख़ूब अच्छी हो।" यशोदा से बिलकुल सटकर बैठी शैल ने उत्तर दिया—"मैं कुछ दिन के लिये पहाड़ चली गई थी। हाँ, तुम्हें यह क्या हुआ? तुमतो बिलकुल पीली पड़ गई? बात क्या है?" यशोदा को चुप देख उसका हाथ अपने हाथ में ले शैल ने अनुरोध किया—"बोलो.......।"

इस आत्मीयता और सहानुभूति से छलक कर यशोदा का निराश हृदय आँखों की राह बह जाना चाहता था परन्तु कृत्रिम हँसी से उसने उसे रोक लिया। अपना हाथ उसके कंधे पर रख शैल ने पूछा—"अच्छा, उस रोज़ कोई बात तो नहीं हुई, जिस रोज़ तुम नीचे जल लेकर गई थीं?"

कुछ उत्तर न दे यशोदा सिर नीचे किये मुस्कराने का यत्न कर रही थी। शैल के प्रश्न दुबारा दोहराने पर उसने कहा—"होना क्या है?.......क्यों तुम्हें कैसे ख़याल आया?"

"ऐसे ही पुरुषों के मन में सन्देह बहुत जल्दी पैदा होजाता है।

शैल ने उत्तर दिया—"हरीश को बहुत चिन्ता हो रही थी। कई दफ़े उन्होंने तुमसे मिलकर पूछने के लिये कहा परन्तु कुछ ऐसे झमेले में रही कि आ नहीं सकी!..........हाँ बताओ! उस रोज़ मेरी ही भूल समझो। हरीश तुम्हारे यहाँ आने को तैयार नहीं थे। एक तरह से मैंने ही उन्हें यहाँ आधे घण्टे के लिये भेज दिया था और ऊपर से आगई तुम.......हाँ तो कोई बात तो नहीं हुई? हरीश ने अपना नाम इन्हें जे० आर० शुक्ला बताया था। तुमसे इन्होंने बाद में पूछा होगा—क्यों?

एक गहरा साँस ले यशोदा ने कहाँ—"हाँ?"

"अच्छा, तुमने बताया हरीश!.......फिर?"

"फिर क्या"—यशोदा ने मुँह फिरालिया—"स्वयम ही कह चुकी हो, पुरुष सन्देह के लिये बहाना ढूँढ़ते फिरते हैं।"

"तुमसे और कुछ नहीं पूछा? सन्देह कैसा? तुमसे यह नहीं पूछा, यह हरीश कौन है? क्या समझ गये कि क्रान्तिकारी है?"—शैल ने चिन्ता से पूछा।

"नहीं!.......बश मन-मन में घुला करते हैं। हथेली पर गाल रख-कर यशोदा ने कहा—"बस यही कि एक जवान मर्द है?"

"और उसी गम में तुम्हारा यह हाल होगया? बहन तुम्हें कोई ग़लत समझ ले तो इसमें तुम्हारा क्या कुसूर?"—शैल ने दुखी होकर कहा—"उसके लिये तुम अपने आपको गलाये डाल रही हो?"

"इतना ग़लत समझ लेने पर रह ही क्या जाता है?"

"बहन, दुनिया में क्या केवल मर्द का रूठना हँसना ही सब कुछ है?.......और यदि मर्द ज़्यादती करे तो?"

"ज़्यादती तो बहिन हो ही रही है। परन्तु समझ नहीं आता, करूँ तो क्या?" यशोदा की आँखों में आँसू आ गये।

उसका हाथ अपनी गोद में ले शैल बोली—"मैं तो कहती हूँ,

परवाह मत करो·········या फिर उन्हें बता दो हरीश कौन है ?·········झगड़ा मिटे !"

यशोदा के आँसू टपकने लगे, उसने कहा—"आठ बरस से क्या मुझे वे पहचान नहीं सके ? मैं उन्हें अब एक दिन में क्या समझा दूँ ?····बताने को कहती हो····सन्देह और ईर्षा ही जाग उठी है, जानकर यदि वे कहीं बदला लेने का ही ख़्याल कर बैठें····और बताऊँ क्या ?···· तुम्हें शायद उन्होंने बताया नहीं, जिस रात जेल से भागे थे, अचानक यहीं आ गये थे। रात भर नीचे के कमरे में छिपे बैठे रहे····यदि यह भी बताऊँ तो फिर सिवा सन्देह बढ़ने के और क्या होगा।"

यह नई बात सुन शैल चकित रह गई। यशोदा के प्रति भक्ति प्रकट करने के लिये उसका हाथ हृदय पर रख बोली—"बहन, यों तो तुम बड़ी हो परन्तु एक बात कहूँगी—पुरुषों के सन्देह और बेमतलब नाराज़गी की बहुत परवाह करने से या तो केवल उनके जेब के रुमाल की तरह रहो, स्वयम् सोचना, अपने जीवन की बात करना छोड़ दो ! या फिर उन्हें सोचने दो·········अपने आप समझ जायँगे !·········मैंने अपनी बाबत कम बातें नहीं सुनी·········तुम्हारी तरह चिन्ता करने लगती तो कभी की मर गई होती ! परन्तु उसमें सचाई कितनी है, यह तो मैं ही जानती हूँ·········अब तक स्त्रियाँ रही हैं मर्दों के व्यक्तिगत इस्तेमाल की चीज़। यदि वे अपने व्यक्तित्व को ज़रा भी अलग से खड़ा करने की चेष्टा करेंगी तो उँगली तो ज़रूर उठेगी। लेकिन थोड़े दिन बाद नहीं। ·········ज़रा हिम्मत करो। पुरुषों को सहने का अभ्यास होना चाहिये कि स्त्रियाँ भी अपना व्यक्तित्व रखती हैं। जो कोई उन्हें देख लेगा या छू लेगा, वे उसी की नहीं हो जायँगी !····ज़रा घर से बाहर भी निकलो ! ज़रा और तरफ़ ध्यान दो ! फिर केवल पुरुष के सन्देह पर ही प्राण दे देने की इच्छा न रहेगी। वे जो समझते हैं, क्या वही ठीक है ?—तुम भी तो कुछ समझो ?"

"करूँ क्या—?" बेबसी से यशोदा ने उत्तर दिया।

"बस यही, बेमतलब बातों की पर्वाह कम और कुछ मतलब की बात·······! मालूम तो हो, तुम भी कुछ हो? मर्द की नाराज़गी के सिवा किसी और बात की भी चिन्ता हो?"—शैल ने हंस दिया।

"बताओ न, क्या करूँ?"

"आज ही मेरे साथ चलो! हम एक सभा कर रहे हैं, कि कांग्रेस के कार्यक्रम में जनता की आर्थिक माँगों को स्थान दिया जाय? मेरे पास एक भाषण लिखा रखा है, तुम उसे पढ़ देना। पहले एक दो दफ़े पढ़ लेना।·······झिझको नहीं। शुरू ऐसे ही होता है। मैं भी बोलूँगी·······"

"ये न जाने क्या समझ बैठेंगे?"—यशोदा ने घबराकर कहा।

"बस यही तो चाहिए·······और सुनो, दो औरतें बीच में बोलनेवाली होंगी तो पचास की जगह पाँच सौ आदमी आयेंगे। इसी तरह हमारा काम चल निकलेगा।"

संकोच से मुस्करा यशोदा ने कहा—"बड़ी वैसी हो तुम! आदमियों को खींचने के लिये मुझे ले जा रही हो?"

"पर तुम्हारा हर्ज़? नोच थोड़े ही लेंगे·······वो तुम्हें देखेंगे तुम उन्हें देख लेना। हमें अपनी बात सुनाने से मतलब। सौ सुनेंगे, दस समझेंगे, एक करने भी लगेगा।·······तुम्हारा क्या जायगा? आख़िर कुछ करोगी कैसे?·······आज, कल, परसों जब भी तुम मर्दों के सामने निकलोगी, वे घूरेंगे·······फिर किया क्या जाय?"

बहन यह तो मुझसे हो न सकेगा"—हँसकर हाथ हिलाते हुए यशोदा ने कहा।

—"और मैं तुम्हें लेकर जाऊँगी·······हरीश ने भी कहा है?"

—"मुझे इनसे बहुत डर लगता है।"

"कुछ चोरी करने जा नहीं रही हो......उन्हें ठीक करने का यही तरीक़ा है।"

शैल के जिद्द करने पर यशोदा को उठना पड़ा। इस शर्त पर कि वह सभा में बोलेगी कुछ नहीं; केवल चली चलेगी। अमरनाथ घर पर थे नहीं। उसकी सास से शैल ने स्वयम कहा—"माँ जी, मैं इन्हें ज़रा लिये जा रही हूँ, आकर छोड़ जाऊँगी।"

यशोदा शैल के साथ जाने के लिये साड़ी बदल रही थी। परन्तु उसका शरीर बीच-बीच में काँप उठता था, मानो वह पति के विरुद्ध घोर विद्रोह करने की तैयारी कर रही है......परन्तु वह करे क्या? इस समय मानो उसने अपनी नाव शैल के हाथों सौंप दी थी। चलते समय उसने आदत से साड़ी पर शाल ओढ़ लिया।

शैल ने कहा—"यहीं से माताजी बनकर न चलो! शरीर ढकने के लिये यह साड़ी काफी है। शाल ओढ़ना है तो इसमें गठरी तो न बनो!" यशोदा ने शैल की बात न मानी, वह अपने ही ढंग से चली।

यशोदा अपनी विद्रोह यात्रा पर कदम उठाकर घर की कुर्सी की सीढ़ियाँ उतर रही थी। उसने देखा शैल की मोटर के ड्राइवर से अमरनाथ खड़े कुछ पूछ रहे हैं। उसे अनुभव हुआ, मानो गिर पड़ेगी। उसी समय शैल की निस्संकोच आवाज़ सुनाई दी। वह बेतक़ल्लुफ़ी से अमरनाथ से कह रही थी—"भाई साहब, इन्हें ज़रा लिये जा रही हूँ। ख़ुद आकर छोड़ जाऊँगी।"

अमरनाथ के कुछ कह सकने के पहले ही शैल ने यशोदा को मोटर में धकेल दिया और ख़ुद उसके साथ बैठ ड्राइवर को गाड़ी चलाने का हुकुम दे, अमरनाथ को 'नमस्ते' कर दी।

यशोदा को जब होश आया तो अनुभव हुआ—उसकी नाव लंगर तुड़ा प्रबल धार में बही चली जा-रही है; किसी एक दूसरे संसार में, जिसका उसके पहले संसार से कोई सम्बन्ध नहीं......अब उसका क्या

होगा ?·······पीछे लौट चलने का कोई उपाय नहीं·······लौटने की इच्छा भी उसे न थी।

अपने घर पहुँच शैल ने लिखा हुआ भाषण यशोदा को पढ़ने के लिये दिया। जैसे जज के मुख से मृत्युदण्ड का फैसला सुन लेने के बाद छोटे-मोटे कष्टों की ओर अपराधी का ध्यान नहीं जाता, उसी तरह यशोदा एक सीमा तक अनुभूतिहीन और संज्ञाहीन हो चुकी थी। दो तीन दफ़े वह भाषण पढ़ने के बाद उसे अनुभव होने लगा—यह सब बातें सही हैं, उसे वे कहनी ही चाहिये। और जब वह पति के सामने यों साहस कर चली आई है तो उसे कुछ करना ही होगा।

सभा में भाषण पढ़ने के लिये वह खड़ी हुई तो अनुभव हो रहा था कि उपस्थित लोगों की आँखें उस पर प्रहार कर रही हैं परन्तु वह प्रहार उसे सहना ही है। उसने भाषण पढ़ दिया। उसका शरीर और मस्तिष्क इतना विक्षिप्त था कि अपने मुख से निकले शब्द उसे स्वयम् सुनाई न दे रहे थे। अपना भाषण पढ़ चुकने के बाद जब वह बैठ गई तब दूसरे व्यक्तियों द्वारा कही जाने वाली बातें उसे समझ आने लगीं। और व्यक्तियों ने जो उत्तर दिये, वह भी उसे समझ आये। उसे अनुभव हुआ, कुछ और भी कहा जाना चाहिये परन्तु वह उसके सामर्थ्य के बाहर की बात थी। शैल को बिना विशेष संकोच के बोलते देख उसे संतोष हुआ कि वह अत्यन्त भयानक अवस्था में नहीं आपड़ी है।

इतना सब कुछ होजाने के बाद जिस समय शैल यशोदा को उसके घर छोड़ने के लिये गाड़ी में लारही थी, उसे जान पड़ा सबसे बड़ी कठिनाई अब सामने आयेगी। परन्तु अब तो कठिनाई का सामना करने या बचने का प्रश्न नहीं था। वह तो आही चुकी थी। अमरनाथ क्या कहेंगे ?·······अधिक से अधिक क्या कहेंगे ? यशोदा का मन चाह

रहा था, वे उसे अधिक से अधिक कड़ी बातें कहें और वह उन्हें सहे। अब तो उसे सहना ही है।

यशोदा ने बैठक में पहुँच देखा अमरनाथ कुर्सी पर बैठे हैं। मानो वे उसके लौटने की प्रतीक्षा घण्टों से कर रहे थे। अमरनाथ वास्तव में यशोदा को शैल के साथ जाते देख विक्षिप्त होगये थे। क्या यशोदा हरीश से मिलने जा रही है, इस विचार से घोर प्रतिहिंसा उनके मन में जाग उठी। उनसे रहा न गया। वे मामला स्पष्ट कर देने के लिये शैल के घर पहुँचे। बहुत देर तक कोठी के सामने टहलने के बाद वे भीतर गये। दरयाफ़्त करने पर मालूम हुआ, शैल एक सभा में 'गंगा हाल' गई है। अमरनाथ बाबू विक्षिप्त अवस्था में 'हाल' पहुँचे और उन्होंने देखा यशोदा को वक्तृता पढ़ते हुए।

लोग उन्हें पहचान कर क्या कहेंगे—इस विचार से वे तुरंत लौट आये। घर आ वे सोचने लगे, अब यशोदा उनसे कितनी दूर पहुँच गई है। जो काम उसके लिये अत्यन्त कठिन था, उसे भी वह हरीश की उँगलियों के इशारे पर कर रही है। और वे स्वयम् कितने अकिंचन हैं!............अपनी क्षुद्रता का यह भाव बदलकर फिर उन्हें क्रोध चढ़आया!............अगर उसे इस घर में रहना है तो जैसे मैं कहूँगा वैसे रहने होगा।

उनसे बिना कुछ कहे ही वह ऊपर किस प्रकार चली जाय? यह होता पति का अपमान और विद्रोह और वैमनस्य का एलान। परन्तु उसने तो विद्रोह और वैमनस्य किया नहीं। उसने आज सभी काम साहस के किये थे। एक दफ़े और उसने साहस किया। पति की ओर देख उसने पूछा—"क्या तब से यहीं बैठे हो? ऊपर चलो?"—वह कहती चली गई—"बहुत थके जान पड़ते हो............दूध गरम कर दूँ?"

प्रायः तीन मास बाद यशोदा ने पति से इस तरह बात की थी।

अमरनाथ बहुत कुछ कहने के लिये तैयार बैठे थे। परन्तु यशोदा के पहले इतना अधिक कह जाने से वे निर्बल पड़ गये। फिर से पहल करने का मौका अपने हाथ में लेने के लिये उन्होंने स्वीकार—"अच्छा चलो!"

जितनी देर तक यशोदा दूध गरम करके लाये, अमरनाथ पलँग पर बैठ अपना वक्तव्य दृढ़ निश्चय से फिर तैयार करने लगे।

यशोदा दूध का गिलास ले आई। अपनी दृढ़ता क़ायम रखने के लिये अमरनाथ ने गिलास साथ की तिपाई पर रख दिया और दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँधते हुए बोले—"तुमसे कुछ कहना है?"

यशोदा इसी समय की प्रतीक्षा कर रही थी। उत्तर दिया—"जी?"

"बैठ जाओ"—अमरनाथ बोले यशोदा नीचे की ओर देखती सामने बैठ गई।

—"तुम कहाँ गई थीं?"

—"शैलबाला के साथ एक जलसे में।"

—"यह कैसा जलसा था?"

—"इन्हीं लोगों ने किया था।"

—"हूँ, पहले तो तुम जलसों में नहीं जाती थीं?"

—"जी हाँ....अब सोचा है कि जाया करूँ....कुछ करूँ।" सिर झुकाये ही यशोदा ने उत्तर दिया।

"हूँ, वहाँ वो जे० आर० शुक्ला.........हरीश भी आया था?"—तिर्छी नज़र से यशोदा के मुख की ओर देख अमरनाथ ने पूछा।

"कह नहीं सकती?.........देखा नहीं।".........यशोदा ने उत्तर दिया और हृदय में उठता ज्वार रोकने के लिये होठ चबा लिये।

"हूँ, मैं यह समझता हूँ"—अमरनाथ ने फिर दृढ़ता से हाथों की मुट्ठी बन्द कर कहा—"स्त्रियों का स्थान घर के भीतर है.........एक मर्यादा के भीतर रहने से सब काम ठीक चलता है। ख़ास तौर पर

यह लड़की शैलबाला शहर में कितनी बदनाम है, शायद तुम्हें नहीं मालूम.......और तो मैं कुछ नहीं कहना चाहता, परन्तु हमारे समाज का आचार जैसा है वह मैं जानता हूँ। स्त्रियाँ यदि सार्वजनिक कामों में भाग लें तो उनके बारे में कितनी बातें बनती हैं ; उनकी ओर कितनी उँगलियाँ उठती हैं, इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए।.......मैं अपनी स्त्री की बाबत ऐसा देखना-सुनना पसन्द नहीं करता।"

अमरनाथ के चुप हो जाने पर यशोदा ने कहा—"घर के काम के बारे में कोई त्रुटि न हो, इस बात का मुझे ध्यान है। शैलबाला को तो मैं बहुत अच्छा समझती हूँ। यों तो किसी भी स्त्री पर लोग ख़ामुख़ाह सन्देह कर सकते हैं.......स्त्रियों पर पुरुषों को सदा ही अविश्वास रहता है।.......कोई यो ही उँगली उठाये या बातें बनाये तो उसके लिये क्या किया जा सकता है?.......जब मुझे पिताजी ने पढ़ने के लिये भेजना शुरू किया था तब भी कितने ही लोगों ने बातें बनाई थीं। आप पहले कांग्रेस में काम करनेवाली स्त्रियों की प्रशंसा करते थे...यदि मुझमें ही कोई खास बात आपने देखी हो तो मुझे बताइये.......शेष आप यह चाहें कि दूसरों की स्त्रियाँ कांग्रेस का काम करें परन्तु मैं न करूँ तो मुझमें ही कोई दोष है.......आप मेरा दोष बताइये। इज्जत तो सभी की एक सी है.......यदि आप समझते हैं, स्त्रियाँ इस विश्वास के योग्य नहीं कि वे घर से बाहर निकल सकें तो घर में ही उनका क्या विश्वास है..........यदि आपको मुझ पर विश्वास नहीं तो कहिये......."

अब भी यदि अमरनाथ यशोदा पर बन्धन लगाते तो वह बन्धन केवल शारीरिक हो सकते थे। उसका मतलब होता कि उन्होंने स्वीकार कर लिया है कि उन्हें यशोदा से भय है। वे उसकी आँखों में गिर गये है। उन्हें अपने ऊपर विश्वास नहीं। केवल एक ही राह थी। उन्होंने कहा—"नहीं यह मेरा मतलब नहीं, मेरा मतलब

केवल इतना था कि सोच लो ? मेरी और तुम्हारी भलाई एक ही बात में है।"

जितनी देर यशोदा उनके सामने बैठी रही, अपने होंठ काटकर आँसुओं को रोक रखा। फिर गुसलख़ाने में जा वह खूब रोई। उसने निश्चय कर लिया कि क़दम उठा लेने के बाद वह पीछे नहीं हटेगी वर्ना उसका अब तक का यह सब काम पापाचरण हो जायगा।

अमरनाथ सोच रहे थे........क्या हरीश की बाबत उनका सन्देह निराधार ही है........अनेक प्रकार अपने आपको समझाने पर भी उन्हें संतोष न होता। एक बात से इनकार की गुंजाइश न थी—अब यशोदा के हृदय के केवल एकमात्र स्वामी वे ही नहीं। जो हो, अब वह अपने आप को उनके चरणों की धूलि न बनाकर स्वयम् मनुष्य बनने की बात सोच रही है........। यशोदा में कुछ दोष न पा सकने पर भी अब यशोदा केवलमात्र उनकी ही वस्तु नहीं रह गई थीं। अब यशोदा के लिये केवल वही सब कुछ नहीं रह गये थे। घर में पैर रखने पर सभा-सोसाइटी और जुलूस में शामिल होनेवाली यशोदा को अपने सुख की सामग्री समझ उसे पुचकारने की हिम्मत न पड़ती। उन्हें जान पड़ता, अब वे मालिक न रहकर एक साधारण और मामूली व्यक्ति रह गये हैं।

पहेली

बँगले के सामने फुलवाड़ी में बेत के कौंउच पर रॉबर्ट और शैल बैठे हुए थे। रॉबर्ट के एक हाथ में सिगरेट था और दूसरे हाथ में एक पत्र। अनेक दिन बाद फ़्लोरा का पत्र आया था। रॉबर्ट पढ़कर शैल को सुना रहा था—

"........यद्यपि जीवन को मैंने मसीह के चरणों में अर्पित कर दिया है परन्तु भगवान की इच्छा को टाल नहीं सकती। तुमने मुझे धर्मसंकट में डाल दिया है। मैं अपने पहले दो पत्रों में तुम्हें लिख चुकी हूँ, जब भगवान और उनके पुत्र मसीह के उपदेश में तुम्हें विश्वास नहीं तो तुम्हारा क्रिश्चियन बने रहना केवल एक धोखा है। मेरा और तुम्हारा शारीरिक और आत्मिक सम्बन्ध टूट चुका है फिर उसे बनाये रखने का आडम्बर करने से क्या लाभ? जीवन एक साथ बिताने की जो शपथ बाइबिल हाथ में ले हम लोगों ने ली थी, उसे पहले तुमने ही बाइबिल में अविश्वासकर, तोड़ दिया। मैंने तुमसे छः मास पूर्व ही प्रार्थना की थी कि तुम हिन्दू बनकर हमारे विवाह सम्बन्ध को समाप्त कर दो। मसीह में श्रद्धा न रहते हुए भी मुझ पर अपना क़ानूनी अधिकार बनाये रखने के लिये तुमने मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। तुम्हारी यह जिद्द मेरे लिये जीवन-संकट हो गई है। जीवन का उद्देश्य धर्म की सेवा होते हुए भी मैं स्त्री हूँ। आर्थिक कठिनाइयों की पर्वाह मैंने नहीं की। परन्तु उससे भयंकर कठिनाई

मेरे लिये थी अपने उस साथी के भावों को ठुकराना, जिसने अपना जीवन प्रभु के प्यारे दीनों और दुखियों की सेवा में अर्पण कर दिया है। मुझे भी जीवन में एक साथी की ज़रूरत है। मसीह को अपना साथी मानकर भी इस पृथ्वी पर बहुत कुछ शेष रह जाता है। जिससे मुख मोड़ने पर भी हृदय की प्रवृति से मनुष्य विवश हो जाता है।....

तुम मुझे दोषी और पापिन कह सकते हो परन्तु वास्तव में दोष तुम्हारा ही है। यदि छः मास पूर्व तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार कर हिन्दू बन गये होते, मैं शान्तिपूर्वक दूसरी जगह विवाह कर सकती थी परन्तु तुमने निर्दयता दिखाई। आज मैं तीन मास से गर्भवती हूँ। तुम मुझे लिखते हो कि मैं स्वयं तुम्हें तलाक दे सकती हूँ। ऐसी अवस्था में मेरा देने जाना कहाँ तक सम्भव है? ऐसी अवस्था में मेरा यहाँ रहना भी कहाँ तक सम्भव है? इससे मेरी और मेरे साथी की जो बदनामी होगी उससे भविष्य में समाज में रहकर धर्म की सेवा करना भी मेरे और मेरे साथी के लिये असम्भव हो जायगा। मुझे अपने जीवन की विशेष चिन्ता नहीं। मुझे मृत्यु का भी भय नहीं परन्तु आत्महत्या कर मैं निरन्तर नरक की ज्वालाओं में नहीं जलना चाहती। इससे अधिक मुझे ख्याल है, प्रभु के उस प्यारे का जिसे इन सब कारणों से अपमान और कष्ट भोगना पड़ेगा। उसने मसीह की सेवा में जीवन अर्पण कर दिया है। आज उसके पास इतना धन नहीं कि मेरी सहायता इस समय कर सके। मेरे गर्भ की सन्तान को लोग ग़ैर क़ानूनी और पाप की सन्तान कहें, यह मैं सहन नहीं कर सकती। तुम्हारी हिन्दू न हो जाने की ज़िद् के कारण ही यह सब कुछ हुआ। मेरा आत्मा, मेरे साथी का आत्मा और प्रभु मसीह जानते हैं कि मेरे गर्भ की यह सन्तान निर्दोष है। हमारी परिस्थितियों और कठिनाइयों में उसका कुछ भी अपराध नहीं। फिर उसकी हत्या का पाप मैं अपने सिर क्यों लूँ। मैं चाहती हूँ, उसके उत्पन्न होने तक क़ानूनी तौर पर मुझे तुम्हारी पत्नी

कहलाने का हक़ रहे और इस कठिनाई के समय तुम किसी एकान्त स्थान में रहने के लिये मेरा प्रबन्ध कर दो। सन्तान के जन्म के बाद हम लोग तलाक़ दे दें। सन्तान के पालन के लिये मैं तुम से किसी प्रकार का दावा न करूँगी। इससे पूर्व तुमने मुझे आर्थिक सहायता देनी चाही थी परन्तु मैंने उसे स्वीकार नहीं किया। आज मैं स्वयम उधार की भीख माँग रही हूँ केवल उस निर्दोष सन्तान की रक्षा के लिये जो मेरे गर्भ में है। आशा है तुम मुझे निराश न करोगे प्रभु मसीह तुम्हारे हृदय में दया भाव उत्पन्न करेंगे........"

राबर्ट को अनुभव हुआ कि उसकी उँगली जल रही है। सिगरेट समाप्त हो उसकी उँगली को जला रहा था। सिगरेट फेंक वह अपनी उँगली की ओर देखने लगा।

उसकी उँगली अपने हाथ में ले शैल ने पूछा—"जलाली ? हाय........!" और फिर उँगली को अपने मुँह में ले पूछा—"कुछ ठण्डक पड़ी ?"

रॉबर्ट हँस दिया—"यहाँ तो दिल ही जला पड़ा है।"

शैल ने रॉबर्ट के गले में बाँह डाल उसके कंधे पर सिर टिका पूछा—"रूबी, अब क्या करोगे........?"

"करना क्या चाहिये ?"—शैल की ठोडी को ऊपर उठा उसने पूछा—"सोचो तो सही इस समय वह कैसे संकट में होगी ?"

"हूँ........परन्तु इसका मतलब यह है, अभी आठ-दस मास तक हम अपने विवाह की बात नहीं सोच सकते ?"

"हाँ, यदि मैं उसकी बात मानूँ तो नहीं ही सोच सकते"—दूसरा सिगरेट जला रॉबर्ट ने उत्तर दिया।

"लेकिन रूबी, इसमें तुम्हारा क़ुसूर क्या है ? तुमने उसे तभी तलाक़ दे देने के लिये राय दे दी थी।"—शैल ने भौं चढ़ाकर कहा।

"क़ुसूर शैली है क्या ?"—लम्बा कश छोड़ रॉबर्ट ने उत्तर

दिया—"किसी को मुसीबत में देख उसकी पर्वाह न करना भी तो क़ुसूर है। यदि फ़्लोरा मेरी जगह होती और मैं फ़्लोरा की जगह, तो वह कहती—तुमने पाप किया है, तुम उसकी सज़ा भोगो! और वह स्वयम् भगवान् से प्रार्थना कर लेती—हे भगवान् तू दयामय और न्यायकारी है, मुझे संकट से बचा। और उसका कर्तव्य समाप्त हो जाता, उसका आत्मा और मन शान्त हो जाते। परन्तु मैं क्या करूँ? मैं तो इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकता कि वह भयंकर संकट की परिस्थिति में है। न्याय की बात कहो तो न्याय के विचार से किसी भी व्यक्ति को दूसरे के संकट से कोई मतलब नहीं। न्याय केवल स्वार्थ की रक्षा के लिये है।

"मेरे जीवन में तो सदा कोई-न-कोई रुकावट आती ही रहेगी" निराशा के स्वर में शैल ने कहा—"अच्छा करोगे क्या?"

"कर यह सकता हूँ कि मंसूरी, नैनीताल या शिमला में उसे एक मकान किराये पर ले दूँ और माहवार ख़र्च देता जाऊँ लेकिन नैनसी को यह सब मालूम नहीं होना चाहिये; वर्ना वह शोर मचा देगी। उसने अभी तक जीवन की कठिनाइयों को देखा नहीं इसलिये उचित-अनुचित की धारणा उसके मनमें बहुत कठोर है। फ़्लोरा से वह नाराज़ भी कम नहीं क्योंकि उसकी वजह से हम लोगों की बदनामी भी बहुत हुई है।"

रॉबर्ट का दायाँ हाथ हाथों में ले शैल ने कहा—"तुम्हारी बाबत जब मैं सोचती हूँ, हैरान रह जाती हूँ·······तुम्हारा हृदय कितना विशाल है?"

"ज़रा फ़्लोरा से पूछो!"—रॉबर्ट हँस दिया।

"डैम फ़्लोरा"—सिर झटककर शैल ने कहा और कुछ देर चुप रहकर पूछा—"रूबी आत्महत्या क्या सचमुच पाप है?"

"पाप क्या है, यह तो मैं अभी तक समझ नहीं सका। यदि एक

व्यक्ति अपने जीवन से घृणा करने लगा है तो वह जिये क्यों ? कम से कम मैं यदि जीवन में कोई उत्साह न पाऊँ तो जीना नहीं चाहता।"

"और रूबी, गर्भपात ?"—शैल ने पूछा।

"किसी भी जीव को समाप्त कर देना निर्दयता ही है। यह सोचो, फ़्लोरा की सन्तान उसकी गोद में खेलेगी तो उसे जीवन में कितना उत्साह, कितनी शांति मिलेगी ? परन्तु यह भी सोचो, यदि यह सन्तान फ़्लोरा के जीवन को केवल संकटमय बना दे ; और स्वयम उसके जीवन के लिये समाज में कोई स्थान न हो ; तो उसे केवल घृणा और धिक्कार का पात्र बनाने के लिये संसार में लाना कितना अन्याय है ? सब कुछ समाज की अवस्था पर निर्भर करता है। ईसामसीह को पूजकर भी समाज आज और 'मसीह' पैदा होना सहन नहीं कर सकता क्योंकि उसके लिये समाज में कोई स्थान जो नहीं। मैं समझता हूँ, मौजूदा समाज में गर्भनिवारण (Birthcontrol) के बिना निर्वाह नहीं। यदि समाज की अवस्था पहले जैसे होती, अर्थात एक पुरुष कई-कई स्त्रियाँ रखता और समाज में यूनान, भारत और दूसरे देशों की प्राचीन सभ्यता के अनुसार पुरुषों के विनोद के लिये मंगलामुखियों की सेनायें होतीं, समाज में बेकारी का भय न होता जितनी सन्तान हो जाती, ईश्वर का वरदान ही होता। परन्तु अब वह अवस्था तो है नहीं। और मनुष्य की अवस्था ऐसी नहीं कि दिन भर पेट भरने के सिवा और बात के लिये उसे अवसर न मिले। प्रकृति उसे भोग की ओर धकेलती है। मनुष्य के पास साधन और समय है तो वह भोग की ओर क्यों न जाय ? तुम व्यर्थ संकोच मत करना........एक स्वस्थ युवती यदि प्रत्येक बार गर्भवती होने लगे तो उसके लिये जीवन में भोग का अवसर कितनी बेर आ सकता है ? या तो वह प्रति वर्ष एक सन्तान उत्पन्न करेगी, जिसके लिये पृथ्वी पर जगह नहीं। या जीवन भर में केवल दो-तीन दफ़े से अधिक उसे इस ओर ध्यान न देना चाहिये ! ब्रह्मचर्य का उपदेश

देनेवाले कितने महात्मा हैं जो स्वयम् इस कसौटी पर पूरे उतरेंगे ? इसी आवश्यकता को पूरा करने के लिये सभ्यता ने वेश्याओं को जन्म दिया। इस नई सभ्यता के ज़माने में जब स्त्री को पूर्ण समानता का अधिकार देने की बात कही जाती है, उसके भोग की स्वाभाविक प्रकृति को कैसे रोका जा सकता है ? हमारे समाज में गर्भवती हो जाना हो तो स्त्री की सबसे बड़ी पराधीनता और कमज़ोरी है। पुरुष तो हाथ झाड़ सिगरेट पीता हुआ चल देता है परन्तु स्त्री को तो मुसीबत पड़ जाती है ?……… वह क्या करे ? भोग की प्रवृत्ति प्रकृति की प्रबल प्रवृत्ति है। संसार के सब धर्मों ने इसका विरोध किया परन्तु यह जैसी की तैसी बलवान बनी है। जब तक जीवन की शक्ति है, इसे रोका नहीं जा सकता। इसके परिणाम जो हमें भोगने पड़ते हैं, वह हैं सामाजिक परिस्थिति के कारण। जब-जब भोग की प्रवृत्ति होती है तब सदा ही सन्तान की इच्छा नहीं होती, फिर सन्तान क्यों हो ? जिस सन्तान का स्वागत करने के लिये परिस्थियाँ न हों, उसे संसार में लाना ही अन्याय है। जीवन में ऐसा समय भी आता है जब सन्तान की इच्छा होती है तभी उसे आना चाहिए। बहुत से लोग कहते हैं गर्भ-निवारण प्रकृति-विरुद्ध है ! मैं पूछता हूँ—जब प्रकृति तीव्र इच्छा उत्पन्न करती है तो उसे रोकना प्रकृति-विरुद्ध है या नहीं ? और जिन जीवों के लिये समाज में स्थान नहीं, उन्हें पैदा कर देना भी प्रकृति-विरुद्ध है या नहीं ?………"

रॉबर्ट की बात के संकोच से उसकी दृष्टि बचाने के लिये शैल उसका सिगरेट केस खोल सिगरेटों से खेल रही थी। एक सिगरेट निकाल उसने मुँह में लगा लिया। रॉबर्ट ने कहा—"जलाओ तो ?"

सिर हिला शैल ने कहा—"नहीं, तुम बात कहो………फिर राह कौन-सी है ? तुमने सभी ओर से प्रकृति का घेरा डाल दिया।"

रॉबर्ट ने अनुरोध के स्वर में कहा—"नहीं सिगरेट जलाओ पहले। ख़ूबसूरत स्त्री को सिगरेट पीते देखने से बहुत भला मालूम होता है।"

"मैं ख़ूबसूरत हूँ ?"—आश्चर्य प्रकट करने के लिये भौंहें तान शैल ने पूछा।

—"तुम जानती हो तुम मुझे बहुत ख़ूबसूरत मालूम पड़ती हो।"

"चक्कर आ जायगा ?"—शैल ने कुछ बेबसी से कहा—"तुम वह बात कहो.......मैं स्वयम कई दफ़े सोचा करती हूँ........"

"तुम सिगरेट जलाओ, धुआँ भीतर न खींचना, चक्कर नहीं आयेगा। अब मुझे तुम्हें सिगरेट पीते देखने का शौक़ सवार हुआ है तो मेरी यह ज़िद माननी पड़ेगी।"

झेंपते हुए शैल ने सिगरेट जलाया। धुएँ का एक क्षीण-सा चक्कर उसके चेहरे के चारों ओर छा गया। रॉबर्ट ने कहा—"बहुत ख़ूब, बस ऐसे ही किये जाओ ? सुन्दर जान पड़ने में भी एक संतोष है न ; क्यों इसी के लिये तो स्त्रियाँ नाक-कान छिदाती हैं।"

सिर हिला शैल बोली"—तुम प्रकृति की बात कहो।"

"हाँ ; तो क्या कह रहा था.......; प्रकृति हमें इस बात का प्रबंध करने के लिये विवश करती है कि हम ऐसी राह निकालें कि भोग को उसके परिणाम से अलग किया जा सके। जब हम चाहें, सन्तान न हो। सन्तान दुख का कारण न बन सुख का ही कारण बने। तुम विश्वास रक्खो, बिना आवश्यकता के मनुष्य कुछ नहीं करता। गर्भनिवारण (Birth control) प्राकृतिक आवश्यकता है। प्रकृति में यह काम दूसरे तरीक़े से चलता है। साँपनी एक हज़ार अण्डे देती है परन्तु जब एक हज़ार बच्चे निकलते हैं तो स्वयम ही पूँछ से घेरकर उन्हें खाने लगती है। जो एक दो बच जाते हैं, वही दूसरे जीवों के लिये आफ़त हो जाते हैं यदि सभी बच जायँ तो प्रकृति में और जीव समाप्त हो जायँ। यही हाल मछलियों और दूसरे जीवों का है। कुछ जीव अपनी संख्या स्वयम कम कर देते हैं, कुछ की दूसरे जीव। परन्तु मनुष्य की संख्या कौन कम करे ? बीमारियाँ आती हैं, उनका

इलाज मनुष्य कर लेता है। अलबत्ता युद्ध की बीमारी का इलाज मनुष्य अभी तक नहीं कर पाया परन्तु लड़ाई भी तो तभी शुरू होती है जब जातियाँ और देश अपने देश में जनसंख्या बढ़ने पर भूखे मरने लगते हैं या जन संख्या के भूखे मरने का बहाना करते हैं। गर्भनिवारण मनुष्यों को उचित संख्या में रख उनके जीवन को सुखी बनाने का एकमात्र उपाय है।"

धुएँ से घबरा शैल ने कहा—"मैं इस सिगरेट को फेंकती हूँ ?" अपने हाथ का समाप्त सिगरेट फेंक रॉबर्ट ने कहा—"लाओ मुझे दे दो !"

—"हाय जूठा ?"

"जूठा नहीं, वह मीठा होगया है। यों तो तुम अपने होठों को दूर रखती हो। इस सिगरेट के नाते ही सही।"

मुस्कराती हुई आँखों से शैल ने अपना सिर रॉबर्ट के कंधे पर रख दिया। धीमे स्वर में रॉबर्ट ने कहा—"यह मँजूरी है ?"

"तुम बड़े शरारती हो"—पीछे हट शैल कह रही थी कि रॉबर्ट ने उसे चूम लिया।

दरवाज़े पर मोटर के भोंपू की आवाज़ सुन शैल ने उस ओर देखा। नैनसी आई होगी—"रॉबर्ट ने बताया बाज़ार गई थी। हरीश और उसके साथियों के आने में भी देर नहीं, साढ़े छः बज रहे हैं।"

नैनसी कार में बरामदे की ड्योढ़ी की ओर जा रही थी।

शैल ने पुकारा—"यहाँ आओ न, नैना ?" और रॉबर्ट से पूछा—"बड़ी चुप रहती है नैना आज कल !"

"उसकी अपनी उलझनें हैं"—राबर्ट ने उत्तर दिया—"बीस बरस की हो गई, आशा और कल्पना के संसार में मन चला जाने पर जाहिरा विरक्ति और चुप्पी आ ही जाती है, मुझसे कई दफ़े मिराजकर का पता पूछा। तुमसे भी तो कई दफ़े पूछा था न ? मैंने उचित

समझा, बात बहुत आगे बढ़ने से पहले ही समझा दूँ। मैंने बता दिया, मिराजकर की क्या अवस्था है। पत्र उसे लिखा नहीं जा सकता। ऐसे ही घूमते घामते जब आ निकले।"

"ठीक तरह समझा दिया है न? कहीं कुछ कह न बैठे"—शैल ने चिन्ता पूछा—"खूब अच्छी तरह! वह जानती है कि उसके ख़तरे में पड़ने का अर्थ है, हमारा खतरे में पड़ना। लेकिन असर कुछ और ही हुआ है। अब वह उसकी बहादुरी और त्याग की बात सोचा करती है। पहले इसकी मित्रता डेविड से थी। अब उससे मिलना बन्द कर दिया। आज कल वायलिन भी बन्द है। और जानती हो, आज-कल कौन जुमला ज़ुबान पर चढ़ा है;—"जो किसी के काम न आ सके वो एक मुश्त ग़ुबार हूँ!"

दो तीन मिनट में नैनसी आगई, कुछ दिन से गाउन पहनना छोड़ उसने निरंतर साड़ी पहनना शुरू कर दिया था और साड़ी का आँचल भी इस बेपरवाही से गले में डाल रखा था मानों घर के काम में बहुत व्यस्त रही हो! उसे सम्बोधन कर शैल ने कहा—"नैनसी तुम्हारे यह स्वीटपीट गज़ब के हुए हैं?"

"क्या है, अच्छे हैं बेचारे!"—नैनसी ने बेपरवाही से कहा।

"चाय के लिये कह दिया नैन? हमने भी तुम्हारी प्रतीक्षा में नहीं पी।"—रॉबर्ट ने कहा।

"पाँच सात मिनट और न ठहर जाओ—मिराजकर भी आते ही होंगे।" शैल ने सलाह दी—"पौने छः से पहले आने की बात थी।"

"बहुत अच्छा"—नैनसी सामने की कुर्सी पर बैठ गई।

उसी समय हरीश साइकल पर आता दिखाई दिया। ड्योढ़ी मे साइकल रख हरीश इन लोगों की ओर आ गया। आते ही उसने पहले नैनसी से ही पूछा—"कहिये मज़े में हैं?"

"जी हाँ बहुत मज़े में।"

हरीश रॉबर्ट और शैल से हाल चाल पूछ रहा था। नैनसी ने उठते हुए कहा—"मैं चाय के लिये कह आऊँ !"—

हरीश ने शैल और रॉबर्ट की ओर देखकर कहा—"वे लोग सात बजे के बाद आयेंगे। मि० रॉबर्ट, मेरा मतलब ज़रा जल्दी आने का था कि मैं आपसे पहले ही अपना विचार कह दूँ। रफ़ीक मज़दूरों और दूसरे लोगो में केवल आर्थिक प्रश्नों को उठाने पर ही ज़ोर रहा दे है। मज़दूर लोग यदि इस ढंग पर चलेंगे तो उनका रुख़ राजनैतिक नहीं हो सकेगा और उनका आन्दोलन बिलकुल संकुचित हो जायगा। मैं चाहता हूँ कि भिन्न-भिन्न पेशे के मज़दूरों की केन्द्रीय कमेटी में कुछ आदमी मध्यम श्रेणी के भी रहें, जो उनके आन्दोलन को राजनैतिक रूप दिये रहें, क्यों ठीक है न शैल ?"

"अरे सब ठीक है, तुम्हारा काम तो हमने शुरू कर ही दिया। तीन जलसे हम तुम्हारे करा चुके हैं जिनमें कपड़े की मिलों के मज़दूरों और बिजली घर के मज़दूरों के साथ सहानुभूति के प्रस्ताव पास करा दिये हैं। यशोदा भी अब तो जलसों में जाती है और नैनसी भी ! कॉलिज के बीसियों लड़के आने लगे हैं। तुम्हारा बाज़ार-कर्मचारी संघ भी कायम होगया है, अब इसे छोड़ो। तुम अपना बताओ, नये मकान में ठीक से बस गये ?"

"हाँ !" हरीश जेब से पेन्सिल से लिखा एक कागज़ निकाल देखने लगा।

शैल ने मुस्कराती हुई आँखों से रॉबर्ट की ओर देखकर कहा—"अरे नैना........" रॉबर्ट ने आँखों से इशारा कर उसे चुप करा स्वयम बात पूरी कर दी "........नैना ने बड़ी देर करदी........नहीं आती ही होगी........हरीश यह मटर के फूल देखे इधर।"

हरीश ने काग़ज़ जेब में रख उत्तर दिया—"इन्हें तो आते ही देखा था........कमाल है, सुगन्ध कैसी फैल रही है। हरीश उठा और

दो बहुत सुन्दर फूल ला एक उसने एक रॉबर्ट को दे दिया और दूसरा शैल को। फूल अपने बालों में खोंस लिया। रॉबर्ट ने अपना फूल सूंघ शैल के ही बालों में लगा दिया।

नैनसी बैरे के हाथों चाय की ट्रे लिवाये आरही थी। उसके आते ही रॉबर्ट ने शिकायत की—"नैन, देखो, तुम्हारे दो फूल मिराजकर ने तोड़ लिये!"

"क्यों, क्या फूल तोड़ने की सख्त मनाही है?"—हरीश ने नैनसी की ओर देखा। "लाओ मैं चाय बनाऊँ"—शैल ने ट्रे अपनी ओर खींच ली। मटर के फूलों की बेलों की ओर जा नैनसी ने हरीश से पूछा—"आपको कौन रंग पसन्द है?"

"सभी अच्छे हैं।"—हरीश ने कहा—"मैं क्या करूँगा?"

नैनसी को हतोत्साह होते देख रॉबर्ट ने कहा—"इसे तो अपना लाल रंग ही पसन्द आयेगा, क्यों मिराजकर?"

कुछ झिझककर नैनसी ने केवल लाल रंग के फूल लम्बी-लम्बी टहनियों से तोड़कर एक गुलदस्ता बना चुपचाप हरीश के सामने कर दिया।

"धन्यवाद!"—फूलों को एक हाथ में आदर से ले हरीश अपना प्याला पीता रहा। प्याला समाप्त कर उसने नैनसी को सम्बोधन कर कहा—"अब इन फूलों को जहाँ चाहूँ रख सकता हूँ?"

"क्यों नहीं?"—नैनसी ने अपने प्याले से घूँट लेकर कहा।

हरीश उठा और नैनसी की पीठ पीछे जा उसने एक-एक कर वे फूल नैनसी के केशों में पंखे की तरह लगा दिया। नैनसी चुप बैठी रही परन्तु उसका गन्दुमी चेहरा गुलाबी होगया। हरीश सोच रहा था—मंसूरी की यह उदण्ड लड़की कुछ कहेगी परन्तु नैनसी चुप थी।

हरीश के अपने स्थान पर आ बैठने पर नैनसी ने कहा—"आप को लौटा देना खूब आता है।"

"प्रत्येक वस्तु अपनी ठीक जगह पर ही अच्छी लगती है"—हरीश ने उत्तर दिया। शैल ने नैनसी की ओर देखकर कहा—"मिराजकर ने तुम्हें रानी बना दिया! ज़रा शीशे में देखो तो मालूम हो!....मिराजकर तुम्हें ऐसे शौक़ भी हैं?"

हरीश कुछ उत्तर न दे केवल हँस दिया। रॉबर्ट ने उठकर फूलों की क्यारी के पास जा एक सिगरेट और जलाई और टहलता हुआ दूर जा निकला। वहाँ जा उसने पुकारा—"शैल ये डियान्थस देखे हैं तुमने?" शैल उठकर चली गई। हरीश को तीसरा प्याला लेने के लिये चायदानी की ओर हाथ बढ़ाते देख नैनसी स्वयम प्याला तैयार करने लगी। हरीश ने उसकी ओर देखकर पूछा—"आप इतनी चुप क्यों हैं?"

"ऐसे ही.......कुछ नहीं"—नैनसी ने उत्तर दिया—"आप को शायद यह डर हो कि मैं विश्वास के योग्य नहीं! आज-कल आप हरीश हैं या मिराजकर?....मंसूरी में तो आप खूब बने?"—उसकी ओर आँख उठाये बिनाही नैनसी ने पूछा।

"आप बुरा मान गईं? इसमें अविश्वास की तो कोई बात नहीं!"

"नहीं, बुरा मानने का मुझे क्या अधिकार है?"—नैनसी ने प्याला हरीश की ओर बढ़ाते हुए कहा।

"आप ही बताइये, मुझे इस बात का क्या अधिकार है कि बिना उसकी अनुमति के किसी व्यक्ति पर अपने भेदों को छिपाये रखने का बोझ डाल दूँ?" मुआफ़ी माँगने के से ढंग से हरीश ने पूछा।

उत्तर में नैनसी ने बिस्कुट की प्लेट उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"लीजिये आपने खाया तो कुछ भी नहीं।"

इधर-उधर फूलों की ओर देखते हुए हरीश बिस्कुट और चाय समाप्त कर रहा था। नैनसी ने रॉबर्ट का सिगरेट केस बढ़ा सिगरेट पेश कर दिया। हरीश के सिगरेट ले लेने पर एक माचिस जलाकर उसने आगे कर दी।

"शुक्रिया" झुककर हरीश सिगरेट सुलगा रहा था, उसका सिर

नैनसी के सिर से टकरा गया। "मुश्राफ़ कीजिये"—हरीश ने संकोच से क्षमा माँगी।

"कुछ नहीं"—नैनसी फिर चुप हो गई।

"आज आप इतनी चुप क्यों हैं ?"—हरीश ने फिर पूछा।

"बहुत बोलने से लोग समझ लेते हैं, व्यक्ति छिछोरा है।" नैनसी ने अपनी उँगलियाँ मोड़ उत्तर दिया। उसकी लम्बी पतली गोरी उँगलियों की ओर देख हरीश ने उसके शेष शरीर की ओर देखा। उसका बहुत महीन और मुलायम बालों से भरा सिर जिसमें तेल की चिकनाई नहीं, केशों की स्वाभाविक कोमलता स्वयं प्रकट हो रही थी और मटर के लाल फूलों का लगा हुआ पंखा, उसका पतला लम्बा मुख, लम्बी गर्दन, महीन साड़ी में से उसके शरीर की आकृति का झलकता ढाँचा, उसका तनिक उभरा हुआ वक्ष, उसकी पतली कमर और फिर कुछ दूर बहकर नीचे गिरती जल की धारा की तरह घुटनों से नीचे गिरती उसकी टाँगें, अंत में सैंडल में मढ़े उसके कोमल श्वेत पाँव जिनके चारों ओर साड़ी का घेरा पराग को घेरे रहनेवाली फूल की पंखुड़ियों की तरह फैला हुआ था। कंधे से कुछ नीचे सफ़ेद ब्लाउज़ से बाहर निकल पीलापन लिये, हाथी के दाँतों की तरह चिकनी और कोमल बाँहें उसकी गोद में आकर टिकी हुई थीं जिन पर केवल एक-एक बहुत महीन काली चूड़ी के अतिरिक्त कुछ न था। एक अस्पष्ट सी सुगंध उसके शरीर से आ रही थी। यह सब था फूल की एक कली की भाँति जो खिलकर फैल नहीं गई परन्तु स्फुटोन्मुख हो चुकी है। और फिर नैनसी की हरीश की उपेक्षा के प्रति नाराज़गी! यह सब मिलकर हरीश को अनुभव हो रहा था—उसके सन्मुख एक अनुपम सौन्दर्य उपस्थित है। वह सोच रहा था—इससे अधिक सुन्दर रुचिर रूप उसने नहीं देखा। परन्तु अजायबघर में रखी उर्वशी की मूर्ति के समान वह केवल देखकर स्तुति करने योग्य वस्तु है। शैल ने जिस वास्तविकता का परिचय उदारता से उसे

दिया था, उससे बेशक यह कहीं सुन्दर है परन्तु शैल पर जो अधिकार उसे है, वह तो यहाँ नहीं। शैल के प्रति अनुराग और कृतज्ञता से उसका मन भर गया। एक क्षण के लिये उसे नैनसी के स्थान पर शैल ही बैठी दिखाई देने लगी। उसने अपने मन को सचेत किया—यह शैल नहीं! सब शैल नहीं हैं, जिसके आगे उसकी उच्छृङ्खलता अपराध न हो!

'चुप' के उस संकट से निकलने के लिये हरीश ने पूछा—"शैल ने आपको भी इस काम में घसीट लिया ?"

"कोई किसी को ज़बरदस्ती नहीं घसीट सकता है"—उसी तरह सिर झुकाये नैनसी ने उत्तर दिया।

हरीश के इस प्रश्न ने शैल की जिस श्रेष्ठता की ओर संकेत किया और उससे ईर्षा की जो चिनगारी नैनसी के मन में चटक उठी, हरीश का ध्यान उस ओर न गया। और कुछ कहने को न पा हरीश ने कहा—"आपके फूल वास्तव में ही बहुत सुन्दर हैं। तबीयत चाहती है, इन्हें निरन्तर देखते ही रहें।"

नैनसी ने कोई उत्तर न दिया। वह अपनी उँगलियाँ उसी तरह तोड़ती रही परन्तु उसका अभिमानी हृदय सोच रहा था—मैं केवल दिखावे और दिलबहलावे की बात के ही योग्य हूँ। कोई गम्भीर और उत्तरदायित्व की बात थोड़े ही मुझसे की जा सकती है ? उसी तरह अपनी कोमल उँगलियों पर मन का असंतोष प्रकट कर उसने बिना सिर उठाये ही कहा—"आपको इन छोटी-छोटी बातों से मतलब थोड़े ही है, यह तो हमारे जैसों के लिये है, जो किसी काम के नहीं।"

यह तीखा विद्रूप हरीश के मन में बिंध गया। जिस अधिकार की माँग के लिये यह विद्रूप किया गया था, उसे न समझ उसने सफ़ाई देना शुरू की—"यह तो परिस्थिति की बात है, परन्तु जीवन की चाह तो मनुष्य में होती ही है, सौन्दर्य को वह अनुभव करता ही है।"

अपनी बात ठीक स्थान पर लगते न देख नैनसी ने करुण दृष्टि से

हरीश की ओर देखा। नैनसी को आशा थी, जिह्वा जिस बात को स्पष्ट नहीं कर सकी, उसकी दृष्टि उसे कर देगी परन्तु हरीश दूसरी ओर देख रहा था। नैनसी ने फिर कहा—"आपका जीवन यहाँ इतने संकट में है, आप विदेश क्यों नहीं चले जाते ?"

"कैसे चला जाऊँ ?"—उत्तर में हरीश ने प्रश्न किया।

"आपके लिये ऐसा कठिन क्या है ? वहाँ आप कितना अधिक अनुभव प्राप्त कर सकते हैं ? और फिर समय आने पर लौटकर आपके लिये अपना काम करना अधिक आसान होगा। उसके लिए रुपये का प्रबन्ध हो जाना कौन बड़ा कठिन है ? कभी-कभी मैं भी कुछ दिन के लिये योरुप जाने की बात सोचती हूँ ?"

सिगरेट से धुआँ खींचते हुए हरीश ने उत्तर दिया—"विदेश में पहुँच जाने से मैं ख़तरे से तो बच जाऊँगा परन्तु ख़तरे से बचने के लिये ही तो मैं घर से निकला नहीं था। जिस काम के लिये ख़तरे को स्वीकार किया है, वह तो पीछे रह जायगा।"

"तो फिर आप स्वयम् पीछे रहिये, आप बताते जाइये और दूसरे आदमी आगे आकर काम करें।"—नैनसी ने कहा।

"लेकिन जो भी आदमी आगे आकर काम करेगा, ख़तरे से खाली नहीं रहेगा और फिर मैं ही न करू तो दूसरे क्यों करेंगे ?"—हरीश ने उत्तर दिया।

"आपने क्या काम किया है ?............इस तरह आपका स्वास्थ्य कैसे रहेगा ?............न समय पर खाना, न सोना। आप यहाँ ही क्यों नहीं रहते ? यहाँ तो किसी प्रकार का सन्देह भी नहीं हो सकता।" आत्मीयता से नैनसी ने कहा।

"सन्देह की बात नहीं।........यों तो अब आप आगे बढ़कर जनता में काम करेंगी तो सन्देह आप पर भी होगा ही। आप भी ख़तरे से खाली न रहेंगी। और फिर मैं चाहता हूँ, मज़दूरों की ही बस्ती में

रहना। बल्कि मैं तो कोशिश कर रहा हूँ कि किसी मिल में नौकरी मिल जाय तो अच्छा हो। यों अपने ख़र्च का बोझ लगातार दूसरों पर डालते रहना भी अच्छा नहीं मालूम होता।"

"बोझ इसमें क्या है?·······आपको रुपयों की ज़रूरत है?"—नैनसी ने पूछा।

"नहीं, अभी तो नहीं।"

"न हो लेजाइये, मेरे पास रक्खे हैं·······आपको किसी से कहने की भी ज़रूरत नहीं। नैनसी ने कहा।

"जब ज़रूरत होगी, ज़रूर कह दूँगा·······आपसे कोई संकोच मुझे नहीं है····आप मेरी बहिन की तरह हैं।"

हरीश के इतना समीप आजाने पर भी नैनसी को संतोष न हुआ। अभी आती हूँ कहकर वह भीतर चली गई अपना बक्स खोल उसने देखा साठ रुपये थे। नोटों को मरोड़कर हाथ में लिये वह बाहर आई। वह हरीश के पास पहुँची ही थी कि बँगले के दूसरी ओर के दरवाज़े से एक पुलिस सार्जेण्ट और कुछ कानस्टेबल भीतर आते दिखाई दिये। हरीश ने आहिस्ता से कहा—"तुम परे हट जाओ! मुझे गोली चलानी होगी।"

बजाय पीछे हटने के नैनसी और भी समीप आगई। हरीश ने फिर कहा—"परे हट जाओ, तुम्हें खामुख़ाह चोट आजायेगी।" नैनसी दृढ़ता से हरीश के सामने होगई। उससे आगे बढ़ने के लिये अपनी जेब में पिस्तौल के घोड़े पर हाथ रक्खे हरीश पुलिस सार्जेण्ट की ओर बढ़ रहा था। पुलिस सार्जेण्ट को अपने रिवाल्वर पर हाथ रखते न देख वह अपना हाथ रोके रहा। काफ़ी समीप आजाने पर सार्जेण्ट ने कहा—"गुड ईवनिंग, मुआफ़ कीजिये बिना पूछे चले आने के लिये·······आपकी कार का नम्बर क्या है?·······मैं ज़रा आपकी कार देख सकता हूँ?"

मोटर का नम्बर बता नैनसी ने कार की ओर इशारा कर दिया। हरीश ने पूछा—"क्यों बात क्या है ?"

सार्जेण्ट ने उत्तर दिया—"घण्टा भर हुआ, मालरोड पर एक कार गवर्नर की कार के मेडगार्ड से टकराकर इसी सड़क पर निकल आई थी, उसका पता नहीं चल रहा।" सार्जेण्ट और सिपाही मुआफ़ी माँगकर चले गये।

पुलिस को बँगले में आते देख शैल और रॉबर्ट के हृदय भी धड़कने लगे थे। पुलिस को बाहर जाते और नैनसी और हरीश को परस्पर हँसते देख वे समीप आ गये। पुलिस के आने का कारण जान सभी हँसने लगे।

नैनसी ने मुस्कराकर हरीश से कहा—"आप तो और सबको कायर ही समझते हैं !" नैनसी के मुख पर उस रोज़ यह पहली दफ़े हँसी आई।

हरीश ने उसकी आँखों में देख पूछा—"आप तो बिलकुल मृत्यु का आलिंगन करने के लिये ही आगे बढ़ी थीं ?"

चिड़िया की तरह दूसरी क्यारी की ओर फुदककर नैनसी ने कहा—"अहा ! यह नर्गिस तो आपने देखे ही नहीं।"

उसकी रक्षा के लिये अपने आपको गोली का निशाना बनाने के लिये नैनसी की तत्परता और उसकी बात का उत्तर न देने में नैनसी की लापरवाही को हरीश न समझ सका ; नैनसी उसे एक क्यारी से दूसरी क्यारी की ओर ले जा रही थी। अपने जेब में कुछ खसकाहट अनुभव कर हरीश ने हाथ डालकर कुछ काग़ज़ से अनुभव किये। निकालकर देखा, वे नोट थे। हरीश ने नैनसी की ओर देखा परन्तु वह कह रही थी......."आपको कुछ, परख तो है नहीं, न फूलों की, न किसी और चीज़ की !"

शुरू में हरीश ने नैनसी की चुप्पी की शिकायत की थी अब वह उसकी चहचहाहट को समझ न पा रहा था।

रफ़ीक और उसके साथी के आजाने पर रॉबर्ट, हरीश और उनमें बहुत देर तक बहस होती रही। हरीश ने शैल को भी उस बहस में बुला लिया। उस विचार-सभा में न बुलाई जाने पर अपमान और निराशा से साढ़े सात बजे ही शाल लेकर नैनसी अपने बिस्तर पर जा लेटी। प्राणों की बाज़ी लगा देने पर भी जब उपेक्षा ही मिले तब रोने और मर जाने की इच्छा के अतिरिक्त और क्या किया जा सकता है?

हरीश अपनी बात पर ज़ोर दे रहा था कि मज़दूरों और दूसरे परिश्रम करनेवाले लोगों के आर्थिक सुधार का प्रश्न अवश्य उठाया जाय परन्तु उनके सामने मुख्य प्रश्न रखा जाय राजनैतिक उद्देश्य से संगठन। उसी के ज़रिये वे अपनी माँगे उठायें, कांग्रेस के संगठन द्वारा ही उनकी लड़ाई लड़ी जाय। उसका कहना था—राजनैतिक शक्ति प्राप्त करके ही हम दलित और शोषित वर्ग की कठिनाइयों को दूर कर सकते हैं।

हरीश की बात से सहमत न हो रफ़ीक कह रहा था, शोषित और दलित लोगों के सामने पहले उनकी रोज़मर्रा की कठिनाई का प्रश्न उठाना ही ज़रूरी है। राजनैतिक प्रश्नों पर उन्हें संगठित और सचेत करना सम्भव नहीं। जो समस्यायें उनके जीवन में सामने मौजूद हैं उनको हल करने की कोशिश से ही उनमें शक्ति और चेतना आयेगी, मोटे-मोटे राजनैतिक नारे पूर्ण स्वतंत्रता और औपनवेशिक स्वराज्य उनकी समझ में नहीं आ सकते। कांग्रेस जिस श्रेणी के लोगों की बनी है वे लोग साधारणतः न तो मज़दूर श्रेणी की कठिनाइयों को समझते हैं और न उनके साथ वे सहानुभूति ही रखते हैं। कांग्रेस पर जिस श्रेणी का कब्जा है, उनके और मज़दूरों के हितों में विरोध है। कांग्रेस चलती है महात्मा गांधी की नीति पर। उस नीति का आधार है कि भगवान् की इच्छा से ही मालिक मालिक बने हैं और मज़दूर मज़दूर। मालिक मालिक रहेंगे और मज़दूर रहेंगे मज़दूर! मालिकों की दया सेही मज़दूरों की अवस्था सुधर सकती है। हम तो मालिक मज़दूर का

सम्बन्ध ही मिटा देना चाहते हैं। हम मालिक को मालिक ही नहीं रखना चाहते तो फिर कांग्रेस की मालिक श्रेणी हमें कैसे सहन कर सकती है, कैसे हमें सबल बनने दे सकती है ?"

रॉबर्ट ने समझाने का प्रयत्न किया—"कांग्रेस को ही हमें उस श्रेणी के हाथ से लेकर मज़दूरों और किसानों के हाथ देना है।"

रफ़ीक ने कहा—"यह स्वप्न की बातें हैं। कांग्रेस जिस श्रेणी के हाथ में है, वह उस पर से अपना कब्ज़ा नहीं छोड़ सकती। तुम अपने मेम्बरों की संख्या बढ़ाकर कांग्रेस पर कब्ज़ा करना चाहते हो। तुम नहीं जानते कांग्रेस ऐसे क़ानून पास कर देगी कि तुम्हारा बहुमत प्रकट हो ही नहीं सकेगा ? फर्ज़ करो, मेम्बरी की शर्त चवन्नी से हटाकर फिर चर्खा कातना रख दी जाय....; तुम बड़े अज़ीब आदमी हो, तुम मज़दूरों का संगठन पूँजीपतियों के अखाड़े में जाकर करना चाहते हो ?—मज़दूरों, किसानों का अपना संगठन हो, उस संगठन के ज़रिये वे कांग्रेस पर कब्ज़ा कर लें तो एक बात है। परन्तु वे कांग्रेस के भीतर जाकर ही अपना संगठन करें, यह विचित्र बात है। मज़दूरों को संगठित करने के लिये उनके पेट के सवाल के सिवा और कोई चारा नहीं। उन्हें अपनी शक्ति का ज्ञान केवल हड़ताल के रूप में ही हो सकता है। यों संगठित हो जाने के बाद ही मज़दूर राजनैतिक शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। पहले मज़दूरों, सब पेशों के मज़दूरों को आर्थिक प्रश्नों पर संगठित करना फिर उनके संयुक्त मोर्चे के हाथ में राजनैतिक शक्ति देना, यही हमारी लाइन है। तुम चाहते हो, पहले राजनैतिक चेतना बाद में आर्थिक माँग ! यह हो कैसे सकता है ? जिसके हाथ में आर्थिक साधन हैं वही राजनैतिक शक्ति का मालिक होगा। तुम या कांग्रेस इस तरीक़े को बदल नहीं सकते। कपड़ा मिल में इस समय ऐसी स्थिति है कि हम मज़दूरों को खड़ा कर सकते हैं, उन्हें लड़ा सकते हैं। उनकी यह सफलता दूसरे सब मज़दूरों को संगठित करने के लिये हमारा मोर्चा होगा। मज़दूरों

को कांग्रेस का मेम्बर बनना ठीक है परन्तु कांग्रेस में उनका संगठित प्रतिनिधित्व भी आवश्यक है।"

रॉबर्ट ने फिर कहा—"सिद्धान्त और नीति में मैं तुम्हारी प्रत्येक बात मानता हूँ परन्तु इस हड़ताल के बारे में मैं यह चाहता हूँ कि कांग्रेस ही इसका नेतृत्व करे। मैं मानता हूँ कि कांग्रेस पर कब्जा रखनेवाली शक्ति के हितों और मज़दूरों के हितों में विरोध है परन्तु मनुष्यता के नाते हम उन्हें अपने साथ ले जा सकते हैं।"

हरीश ने कहा—"हटाओ जी इस झगड़े को, हड़ताल हमें करनी है और रॉबर्ट, स्ट्राइक कमेटी में हम तुम्हें और शैल दोनों को रखेंगे। इसके इलावा शहर के चार-पाँच आदमियों को और रखा जाय ताकि कांग्रेस के ऐसे आदमी जिन्हें अपने सार्वजनिक सम्मान का ख़याल हो, समय पर हमें धोखा न दे जायँ।"

रफ़ीक ने हरीश से कहा—"और हम, तुम और कृपाराम, अख़्तर वगैरा सब लोग मिलों के सब विभागों की कमेटियाँ करनी शुरू कर दें। अप्रैल की पन्द्रह तारीख़ को मिल के मैनेजर को नोटिस देना है तो उससे पहले सब तैयारी हो जानी चाहिये। मज़दूरों के सामने उनकी हालत रखी जाय, हम क्या चाहते हैं, यह सवाल रखा जाय। हड़ताल की बात अभी केवल उन लोगों को मालूम हो जो बिलकुल अपनी पार्टी के मेम्बर हैं। नोटिस देने से पहले जो मीटिंग की जायगी उससे पहले सब आदमी पक्के हो जायँ। हड़ताल की ख़बर अगर मालिकों तक पहले ही पहुँच गई तो वे ज़रूर कोई-न-कोई दंगा करा देंगे। मद्रास की 'लक्ष्मी-कमलम' मिल में ऐसा हो चुका है।"

तय हुआ कि आइन्दा हरीश मिल के कार्टरों में ही रहेगा और कपड़ा मिल के सेक्रेटरी का काम करेगा। शैल, रॉबर्ट और रफ़ीक पर आवश्यक ख़र्च जुटाने की ज़िम्मेवारी दी गई।

× × ×

सभा समाप्त हो जाने के बाद हरीश बराम्दे में खड़ा चलने की तैयारी कर रहा था और नैनसी शाल के भीतर आँसू बहाती हुई गूढ़ निराशा में सोच रही थी, क्या वह किसी भी काम नहीं आ सकती? उसे बराम्दे से बातचीत सुनाई दे रही थी—शैल कह रही थी—"हरीश, अपनी साइकल तुम यहीं रहने दो, तुम्हें गाड़ी में जहाँ तक कहोगे छोड़ आऊँगी।"

हरीश की आवाज़ सुनाई दी—"नहीं, साइकल की तो मुझे अभी जाकर ही ज़रूरत होगी। मैं साइकल पर ही चला जाऊँगा।.........हाँ नैनसी क्या अभी से सो गई।"

शाल परे फेंक नैनसी उठ खड़ी हुई। आँसू पोंछ और सिर के बालों पर आइने में एक नज़र डाल वह आँचल सम्भालती हुई बाहर आई। उसे दिखाई दिया—एक ओर रॉबर्ट की और दूसरी ओर साइकल थामे हरीश की बाँहों में अपनी बाँहें डाले शनैः-शनैः कदम उठाती हुई शैल कोठी के फाटक की ओर जा रही है।

नैनसी का हृदय शैल के प्रति घृणा से भर गया। उसने सोचा, "इसका सम्पूर्ण सार्वजनिक कार्य केवल उच्छृङ्खलता का बहाना है। हरीश पर डोरे डालने के लिये हमारी कोठी को अड्डा बना लिया है।.........हमें इस झंझट से मतलब? उसे जान पड़ा—हरीश बिलकुल मूर्ख है, जो उसके फरेब में फँसा है और उसे हरीश से ही क्या मतलब है? उसे ख्याल आया, अभी कुछ घण्टे पूर्व उसने ही कैसी मूर्खता की थी, जब वह स्वयं पिस्तौल की गोली से छिद जाने के लिये हरीश के सामने जा खड़ी हुई थी! बराम्दे में खड़े, उसका मस्तिष्क कुहासे से घिर गया। वह समझ नहीं सकी, वह क्या चाहती है? वह स्वयं अपने सन्मुख एक पहेली बन गई।

९

सुलतान ?

पंजाब-मिल, सितारा-मिल, डाल्टन-मिल आदि कपड़ा मिलों में डेढ़ मास से हड़ताल जारी थी। हड़ताल समाप्त होने के आसार नज़र न आते थे। जून की गरमी में जब लू, धूल उड़ा-उड़ा कर, राह चलने वालों के चेहरे झुलसा देती थी रॉबर्ट, रफ़ीक, शैल और उनके साथी सुबह शाम लाहौर की गलियों में जुलूस निकालते और चारदिवारी के बाहर जलसे कर हड़तालियों के साथ सहानुभूति के प्रस्ताव पास कराते। नैनसी और यशोदा भी उनका साथ देतीं। हड़तालियों के बाल-बच्चों के कई-कई दिन से भूखे होने के चित्र जनता के सामने खींचे जाते। हड़तालियों का पेट भरने के लिये चन्दा इकट्ठा किया जाता। बाज़ार कर्मचारी संघ के बहुत से नौजवान और कॉलिजों के विद्यार्थी भी हड़तालियों की मदद के लिये इनके साथ फिरते। जनता की सहानुभूति प्रायः इनके साथ थी। कांग्रेस के नाम पर भी अनेक जलसे हड़तालियों की सहानुभूति में किये गये परन्तु मालिक न पिघले। रॉबर्ट हड़ताल कमेटी की ओर से मालिकों से लिखा पढ़ी कर रहा था। कोई फल निकलता दिखाई न देता था। मिलों के फाटकों पर लगातार धरना दिया जा रहा था। सुलतान कपड़ा-कर्मचारी कमेटी का सेक्रेटरी था। दिन भर इस मिल से उस मिल वह साइकिल पर चक्कर लगाता रहता। मिल-मालिकों ने जाबरों की मार्फ़त एक हज़ार के करीब नये मज़दूर अमृतसर, धारीवाल, कानपुर-नागपुर आदि से मँगा लिये थे।

वे मिलों में काम पर जाने के लिये तैयार थे। ऊँची मज़दूरी पानेवाले मिस्त्री वगैरा: भी काम पर जाना चाहते थे परन्तु पुराने मज़दूर मिल के दरवाज़ों के सामने दूर-दूर तक लेटकर उन्हें भीतर जाने से रोके रहते। चार-चार घण्टे लेटने के बाद मज़दूरों की ड्यूटी बदलती। किराये पर लाये गये मज़दूर लेटे हुए मज़दूरों के शरीर पर पैर रखकर भीतर जाने की कोशिश करते। इससे झगड़ा हो जाता, पुलिस को लाठी चार्ज करने पड़ते, कई मज़दूरों को जेल भेज दिया गया। उनकी जगह धरना देने के लिये दूसरे मज़दूर आगये। झगड़ा चल रहा था।

कपड़ा-मज़दूर-कमेटी कहती थी, मज़दूर अपनी माँगों से एक क़दम भी पीछे नहीं हट सकते। जितने मज़दूरों को मन्दी के बहाने निकाला गया है, उन्हें मिलों में काम देना होगा। मज़दूरी में किसी प्रकार की कमी वे बर्दाश्त नहीं कर सकते। मज़दूरी में समय के साथ तरक्की की दर मुकर्रर होनी चाहिये? किसी मज़दूर को सज़ा देनी हो तो मज़दूरों की 'जाब-पंचायत' में उसका फैसला करना होगा।

मालिक यह शर्तें स्वीकार करने के लिये तैयार न थे। उनका कहना था, मिलें उनकी मिलकियत हैं, मज़दूरों की नहीं। उनकी शर्तें जिन मज़दूरों को मंजूर नहीं, वे काम न करें। दूसरे मज़दूरों को काम से रोकने का उन्हें क्या अधिकार? सुलतान रफ़ीक और कृपाराम प्रत्येक मिल के दरवाज़े पर दिन में दो दो बार लेक्चर देते। उनके लेक्चरों की रिपोर्ट पुलिस लेती। उनके लेक्चर होते थे—"मज़दूर भाइयो! यह मिलें तुम्हारे और तुम्हारे भाइयों की मेहनत से खड़ी की गई हैं। तुम्हारे बिना यह मिलें एक सेकण्ड भी नहीं चल सकतीं। इनसे धागे का एक तार भी तैयार नहीं हो सकता। तुम्हारी मेहनत की कमाई से मिलों के मालिक और हिस्सेदार बैठे-बैठे संसार के सब सुख लूटते हैं और तुम सब कुछ पैदा करके भी पेट भर अनाज नहीं पा सकते। मंदी का बहाना कर आज तुम में से कुछ को निकाला जा रहा

है। कल तुम्हें निकाल दिया जायगा और तुम्हारी जगह सस्ती मज़दूरी पर दूसरे मज़दूर भरती कर लिये जायँगे। जब तुम्हारे सैकड़ों भाई बेकार हो जायँगे तो वे रोटी-कपड़ा कहाँ से ख़रीदेंगे ? खरीदनेवाले न होने से फिर और मंदी होगी और तुम्हें निकालने का बहाना बनेगा। तुम्हारी ही मेहनत काट-काटकर पूँजी तैयार की जाती है और नई मिलें खोलकर तुम्हें किराये पर लगाया जाता है और तुम्हारा खून चूसा जाता है। यद्यपि यह मिलें मज़दूर भाइयों की ही मेहनत से तैयार की गई हैं परन्तु मज़दूर मिलों का सब मुनाफ़ा नही माँगते। उनका कहना है, तेज़ी के समय उनकी मेहनत से जो लाभ उठाया गया है, वह कहाँ गया ? मन्दी के समय मालिकों के मुनाफ़े में कमी की जाय। उनके पास गुज़ारे के लिये कमी नहीं। मज़दूरों पर, जिनके पेट पहले ही खाली हैं, ज़ुल्म न किया जाय! मज़दूर भाइयो, हम सूखी रोटी के निवाले माँग रहे हैं और मालिक लोग अपनी ऐशो इशरत के लिये ज़िद्द कर रहे हैं। हम मर जायँगे परन्तु पीछे नहीं हटेंगे......"

कहा यही जाता था कि मज़दूर डटे हुए हैं, परन्तु मज़दूर कार्य-कर्ता भीतरी भेद जानते थे। वे मज़दूरों के पाँव उखड़ने के भय से काँप रहे थे। मज़दूरों के बेकार हो जाने से उन्हें उधार भी न मिलता। तीन-तीन दिन के भूखे मज़दूर आकर सुलतान, कृपाराम और रफ़ीक के आगे रोते—"हम क्या करें ? तुमने हमारा बेड़ा ग़रक़ कर दिया!" स्वयम्सेवक झोलियों में चंदा और आटा माँग-माँगकर लाते। उससे एक लंगर चलाया गया। कुछ मज़दूरों को आटा बाँटा जाता और कुछ को चना-चबेना। दिन भर धूप में घूमने से कई दफ़े सुलतान की नाक से खून बहने लगता। केवल चने और पानी पर रहने से उसे पेचिश हो गई परन्तु वह फिर भी साइकल पर भूत की तरह चक्कर लगाता रहता। कोई और उपाय न देख रॉबर्ट ने अपने मकान की ज़मानत पर रुपया उधार लेकर दिया परन्तु मालिक टस से मस न

हुए। मालिक रॉबर्ट को विश्वास दिलाते थे कि मज़दूर बिना शर्त हड़ताल-समाप्त करदें तो वे उनके साथ सख़्ती न करेंगे परन्तु रफ़ीक, कृपाराम और सुलतान इसके लिये तैयार न थे।

शनैः शनैः हड़ताल विरोधी प्रदर्शन भी होने लगे। हड़तालियों के प्रति सहानुभूति प्रकट करने और उनकी सहायता के लिये चन्दा एकत्र करने के लिये जो सभायें की जातीं, उनमें प्रश्न और शंका करनेवाले खड़े हो जाते। कुछ लोग कहने लगे, यह कम्यूनिस्टों का षड्यंत्र है जो हड़तालियों को भड़का रहे हैं। भला कहीं नौकर मालिक बन सकते हैं। कुछ ने कहा, यह कांग्रेस की शक्ति को कमज़ोर कर मुक़ाबिले में संगठन क़ायम करने की तैयारियाँ हैं। कुछ ने कहा, देश के उद्योग-धन्दे को धक्का पहुँचाना राष्ट्रीय आत्महत्या है। मालिकों की ओर से मिल के क़ार्टरों में रामायण की कथा शुरू की गई जिसमें बताया जाता था, मालिक का नमक खाकर उसका विरोध करना पाप है? कुछ मौलवी भी कहते कि खुदा की कुदरत के खिलाफ़ जानेवाले ये हड़ताली रूसियों के एजेण्ट हैं, इनकी बात सुनना गुनाह है।

हड़ताल के झंझटों की वजह से शैल को घर लौटने में प्रायः देर हो जाती। उसके पिता उसकी प्रतीक्षा में बैठे रहते। पिता को इस प्रकार अपनी प्रतीक्षा में बैठे देख वह शरम से मर जाती परन्तु बेबस थी; देर हो ही जाती। इसमें उसका कुछ बस न था। वे कई दफ़े उसे समझा चुके थे कि इस मामले में उसका उलझना ठीक नहीं। यह भी वह जानती थी कि उसके पिता की सहानुभूति हड़तालियों के साथ नहीं है। स्वभाव से दयालु और न्यायप्रिय होते हुये भी उनकी सहानुभूति मालिकों के साथ ही थी। इसका कारण केवल यही नहीं था कि वे स्वयम् 'पंजाब कपड़ा मिल' के डाइरेक्टर थे बल्कि मज़दूरों की माँग को वे अन्याय समझते थे। एक दिन शैल ने पिता से कुछ रुपयों के लिये जिक्र किया। वे समझ गये, शैल रुपया किस लिये

चाहती है। उस समय उन्होंने केवल इतना कहा—"इस विषय में फिर बात करूँगा।"

पिता को अपनी प्रतीक्षा में बैठे देख शैल ने संकोच से कहा—"पिताजी, आप आराम कीजिये। आपको मेरे कारण बहुत कष्ट होता है परन्तु मैं कुछ ऐसे ही झंझट में फँस गई हूँ·······कल से कोशिश करूँगी समय पर लौट आऊँ।"

पिता ने समझाया—"बेटा तुम अपना खाना मँगा लो। तुम खाना खाओ मैं तुमसे कुछ बात करना चाहता हूँ। तुमने रुपये के लिये कहा था। तुम्हें रुपया जिस काम के लिये चाहिए, वह मैं समझता हूँ। मज़दूरों के प्रति तुम्हारी सहानुभूति को भी मैं समझता हूँ। यह भी मैं जानता हूँ कि वे लोग बहुत कष्ट उठा रहे हैं परन्तु बेटा, जिस प्रकार तुम उनकी सहायता करना चाहती हो, उस तरह उनकी सहायता नहीं हो सकती। मैंने कभी तुम्हारे विचारों पर बन्धन नहीं लगाया मेरे लिये बेटा या बेटी सभी कुछ तुम्हीं हो। तुम्हारे मानसिक विकास पर कोई रोक लगाना मैंने उचित नहीं समझा। परन्तु बेटा, इस मामले में तुम भूल कर रही हो। इस मामले में मज़दूर अन्याय और ग़लत राह पर हैं। इस मार्ग पर चलने में यदि तुम उनकी सहायता करोगी तो वे ग़लत मार्ग पर और आगे बढ़ जायँगे, और इससे अपना और समाज का नुकसान करेंगे। समाज एक क़ायदे पर चल रहा है। जिस प्रकार शरीर के अंगों के अलग-अलग स्थान और काम हैं, उसी प्रकार समाज में भी मनुष्यों के स्थान, कर्तव्य और अधिकार हैं। हड़ताल करने वाले मज़दूर आज मालिक बन बैठना चाहते हैं। परन्तु तुम सोचो, जिन लोगों ने अपनी पीढ़ियों की कमाई लगाकर इन मिलों को तैयार किया है, उनका क्या कुछ अधिकार नहीं? इन मिलों को चलाने वाले मिलों के कितने हिस्सेदारों के प्रति जिम्मेदार हैं; जनता के प्रति उनकी कितनी जिम्मेदारी है? देश के सारे

आर्थिक प्रबन्ध को कुछ चुने हुए पूँजीपति ही चलाते हैं। उनकी जिम्मेदारी को तुम समझ सकती हो। उन्हें एक व्यापार का दूसरे व्यापार से सम्बन्ध देखना पड़ता है, पैदावार का बाज़ार से मिलान करना पड़ता है। एक मज़दूर को सिवा अपना पेट भरने के कोई ज़िम्मेदारी नहीं। तुम सम्पूर्ण समाज की व्यवस्था को चलाने की जिम्मेवारी उनके हाथ में देने के लिये तैयार हो?............"

"परन्तु उनकी मेहनत का फल उनसे छीनकर आप यदि जिम्मेवारी अपने हाथ में लेलें तो मज़दूर क्या करें? उन्हें भी तो अपने प्राण बचाने हैं।"—शैल ने प्रश्न किया।

"बेटा अधिकार और ज़िम्मेवारी एक दिन में छीनकर नहीं ली जाती। वह तिल-तिल कर जोड़ी जाती है और फिर उसकी रक्षा करनी होती है। जो लोग आज मालिक हैं, वे एक दिन में मालिक नहीं बन बैठे। एक प्रकार से यह उनकी श्रेणी की विरासत है और उनका यह कर्तव्य है कि भविष्य के लिये इस विरासत को अपनी सन्तान और श्रेणी के लिये सुरक्षित रक्खें। यदि मैं इस स्थिति में न होता, क्या तुम्हारी शिक्षा का इस प्रकार प्रबन्ध कर सकता? जिन धर्मार्थ कार्यों को मैं चला रहा हूँ, उन्हें चला पाता? हम लोग इस अवस्था में आज इसीलिये हैं कि आर्थिक अवस्था की चाबी हमारे हाथ में है। आज मज़दूर अपनी मज़दूरी स्वयम् निश्चित कर यह चाबी हमसे छीनने का यत्न कर रहे हैं। इसका अर्थ होगा कि समाज के धन का, समाज में पैदा होनेवाली वस्तुओं का बंटवारा मज़दूरों की इच्छा के अनुसार हो। ऐसी अवस्था में हमारी श्रेणी की क्या स्थिति होगी? यह एक आना या दो आना मज़दूरी बढ़ाने का सवाल नहीं। यह समाज की व्यवस्था की चाबी एक श्रेणी के हाथ से दूसरी श्रेणी के हाथ में चले जाने का सवाल है। इसमें दया और सहानुभूति का सवाल नहीं। तुम सोचकर देखो; यह सवाल है जीवन-मृत्यु का हमारी

श्रेणी जो अब तक समाज का नियंत्रण करती आ रही है, उसके मरने-जीने का। यह सवाल है, समाज के प्रति हमारी जिम्मेदारी का। समाज की यह व्यवस्था हमने खड़ी की है, मज़दूरों का स्वेच्छाचार समाज को और स्वयं उन्हें भी नष्ट कर देगा। व्यक्तिगत रूप से मैं बूढ़ा हो गया हूँ, कुछ बरस का मेहमान हूँ परन्तु अपनी श्रेणी के अधिकार पर मज़दूरों के इस आक्रमण का सामना यदि मैं दृढ़ता से नहीं करता तो मैं अपनी श्रेणी के साथ और आनेवाली सन्तान के साथ—तुम्हारे साथ धोखा करता हूँ। बेटा, दान और दया एक बात है और अपनी जड़ काट लेना दूसरी बात। बेटा, मैंने तुम्हें सदा स्वतंत्रता दी है क्योंकि तुम्हें अपना मार्ग खुद निश्चित करना है। इस घर की जो कुछ सम्पत्ति है तुम्हारी है, परन्तु तुम्हें अपने प्रति और समाज के प्रति अपने कर्तव्य को समझना चाहिये। मैं तुम्हारे हृदय की कोमलता और दया की भावना की सराहना करता हूँ, तुम्हारे हृदय में दया देख मुझे सुख होता है। परन्तु यह दया नहीं; यह अपनी हस्ती मिटाना है, साधनहीन होकर तुम दया भी न कर सकेगी। मैं या तुम व्यक्तिगत त्याग कर सकते हैं परन्तु अपनी श्रेणी और समाज के प्रति विश्वासघात नहीं कर सकते। तुम चाहो, मैं दस-बीस हज़ार रुपया इन मज़दूरों के बच्चों की पाठशाला या अस्पताल के लिये दे सकता हूँ परन्तु यह तो युद्ध है। अपने कष्ट स्वयं उन्होंने खड़े किये हैं, हमें मिटा देने के लिये। जिस प्रकार देश के प्रति कर्तव्य है, उसी प्रकार श्रेणी के प्रति भी हमारा एक कर्तव्य है..........."

शैल के सामने भोजन की थाली रक्खी थी, रोटी के कई ग्रास तोड़ उसने कटोरियों में डाल दिये ताकि पिता यह न समझें कि वह खा नहीं रही परन्तु एक भी ग्रास निगलना उसके लिये सम्भव न था। हाथ धो वह पलँग पर जा लेटी। हरीश का सुलतान के भेस में रूप, जो कई दिन से वह देख रही थी, दाढ़ी मूँछ बढ़ाये, फटे कपड़े पहने, बीमारी में चेहरे की हड्डियाँ निकाले, लाल तुर्की टोपी सिर पर रखे उसकी आँखों के सामने

आरहा था—"तुम कुछ नहीं कर सकोगी शैल ?······क्या हम हार जायँगे ?"

वह खूब रोई जब तकिया आँसुओं से भीग गया, उसने उसे पलट दिया। हरीश से कल वह क्या कहेगी ? वह सारी रात रो-रो कर उसने गुज़ार दी। यदि कहीं से कुछ रुपया वह ला सकती तो शायद हरीश को कुछ शांति दे सकती। कई दफ़े उसे ख़याल आया, इस घर में रहना उसके लिये धिक्कार है। सुबह उठ नहाने के बाद जलपान किये बिना ही वह रॉबर्ट के यहाँ जाने के लिये तैयार हो गई। आइने के सामने जा उसने देखा, रातभर रोने से उसकी आँखें सूजकर सुर्ख़ हो गई हैं। ऐसी आँखें ले वह बाहर किस प्रकार जाये ? उसने धूप की ऐनक लगा ली। उसे फाटक के बाहर जाते देख ड्राईवर ने मुआफ़ी माँगने के लिये कहा—"बीबी जी, अभी दो मिनिट में आता हूँ ?"

"गाड़ी नहीं चाहिये !"—वह पैदल ही चली। उसने सोचा आगे टाँगा ले लेगी परन्तु टाँगे वाले को दाम कैसे देगी ? अपना बटुआ भी तो नहीं लाई। उसमें जो दो-चार रुपये थे, वे पिता जी की सम्पत्ति थे। खैर, सवारी के दाम रूबी दे देगा।

× × ×

लगभग दो महीने से और सब काम छोड़ रॉबर्ट हड़ताल के ही झंझट में फँसा था। दिन भर, उसका धूल से भरी लू की आँधी में मोटर पर या पैदल सड़कों के चक्कर काटते बीत जाता। जवानी के आरम्भ में ईसाइयत के प्रचार का जो जोश उसे था, वह स्वयम उसके भीतर से उठा था। परन्तु यह मज़दूरों का राज्य कायम करने का जिहाद, उस पर जबरदस्ती लादा गया था। जवानी के आरम्भ में निष्ठा और जोश से कर्मक्षेत्र में उतर, संसार भर को ईसा के चरणों में घसीट लाने का प्रयत्न कर और स्वयम ही उस प्रयत्न की निस्सारता और बेहूदगी को अनुभव कर अब उसके लिये किसी भी एक ही मार्ग को पूर्ण सत्य मान, उस पर आँख मूँद चले चलना सम्भ

अपने ही विचार और निश्चय को एकमात्र सत्य मानकर उसे दूसरों पर लादने के जोश में उसे बचपन दिखाई पड़ता। उसकी प्रवृत्ति नितान्त अन्तर्मुखी हो गई थी। वह चाहता था केवल विचार करना और प्रत्येक विचार में शंका के लिये स्थान छोड़कर विवेचना करना। स्वयम् चलने के स्थान पर वह दूसरों को चलते देख उनकी वृत्तियों का अनुशीलन करना चाहता था। परन्तु, उसके स्वभाव और प्रवृत्ति के विरुद्ध उसे घसीट लिया गया। मज़दूरों के इस झगड़े में एक मिनट भी चुप बैठ सकने का उसे अवसर न था। कोई न कोई संदेश पहुँच ही जाता—सुलतान ने कहला भेजा है; रफ़ीक ने बहुत जल्दी बुलाया है; शैल प्रतीक्षा कर रही है!—सब से कठिन काम था, लोगों से चंदा माँगते फिरना। इस मुसीबत से बचने के लिये ही उसने स्वयम् उधार ले दो हज़ार रुपया हड़तालियों को दे दिया। पैंतीस हज़ार मज़-दूरों के पेट भरने के लिये यह एक बूँद के बराबर था। परन्तु वह करे तो क्या? चीखते-चिल्लाते चारों ओर से नारे लगाते मज़दूरों के साथ सड़कों पर घूमने में उसे संकोच और ग्लानि भी होती। वह सिरतोड़ प्रयत्न कर रहा था, किसी तरह सुलह हो जाय और वह मुसीबत से बचे। परन्तु रफ़ीक और सुलतान मानें तब? आख़िर उसे इसमें मज़दूरों के नेताओं की ज़्यादती जान पड़ने लगी। उसने सोचा, इन लोगों का तो स्वभाव ही यह है, मैं कहाँ तक इनका साथ दूँ?

× × ×

उस रात अपनी कोठी पर होनेवाली हड़ताल की तैयारी की सभा के बाद से नैनसी को हरीश बिलकुल दिखाई न दिया। हड़ताल के सम्बन्ध में जुलूस और सभायें आरम्भ होने पर नैनसी भी उनमें जाने लगी थी। शैल ने ही उसे साथ देने के लिये कहा सही परन्तु वह दिखा देना चाहती थी शैल से आगे बढ़कर। उसे विश्वास था, हरीश कहीं न कहीं से यह सब देखता होगा और आख़िर अपनी भूल समझ

पायेगा। हरीश का ज़िक्र कभी-कभी वह सुन पाती परन्तु उससे अधिक सुलतान और रफ़ीक का। उसे यह भी सन्देह हुआ कि शैल ने हरीश का उनके यहाँ आना बन्द कर दिया है परन्तु सभाओं और जुलूसों में भी वह कभी दिखाई न दिया। इस बीच में रफ़ीक़ की बातें सुन वह यह भी सोचती ; रफ़ीक़ हरीश से कहीं अधिक विद्वान् और प्रभावशाली है। परन्तु हरीश की वह उपेक्षा की चोट ही नैनसी का ध्यान उसकी ओर से हटने न देती थी, यह उसकी पराजय थी।

संध्या के साढ़े नौ बज चुके थे और रॉबर्ट अभी तक लौटा न था। भोजन के लिये रॉबर्ट की प्रतीक्षा करते-करते नैनसी की भूख क्रोध में बदलती जारही थी। रॉबर्ट ने आते ही हाथ के काग़ज़ मेज़ पर पटक सिर पर हाथ रखकर कहा—"भर पाया इस मुसीबत से !"

"कहाँ थे इतनी देर तक ?"—नैनसी ने पूछा।

"यही हरीश और शैल......."—रॉबर्ट ने उत्तर दिया। नैनसी के एड़ी से चोटी तक आग निकल गई।

"क्या कहते हैं वे लोग ?"—उसने पूछा।

"किसी तरह भी सुलह के लिये तैयार नहीं ! चाहते हैं, आज ही सोवियट क़ायम हो जाय !.......और चाहते हैं रुपया !"

"रुपया शैल क्यों नहीं देती ?"—नैनसी ने पूछा।

"शैल दे ही क्या सकती है ? पिता की इच्छा बिना गाड़ी के पैट्रोल तक के लिये उसे पैसा नहीं मिल सकता.......मैं हैरान हूँ शैल और सुलतान बजाय परिस्थिति सुलझाने की कोशिश के रफ़ीक़ की हड़ताल जारी रखने की ज़िद् का ही समर्थन करते हैं !"—कुर्सी की पीठ पर सिर टिका रॉबर्ट ने बेबसी से कहा।

"यह सुलतान क्यों बीच में कूदता है ?"—नैनसी ने पूछा।

रॉबर्ट ने नैनसी की ओर देखा ; सोचा क्या नैनसी को हरीश के सुलतान बन जाने का भेद नहीं मालूम ? इस प्रश्न का उत्तर न दे

उसने कहा—"परन्तु यह रुपये की जिम्मेवारी मैं कहाँ तक उठा सकता हूँ ? हमारी अपनी ही स्थिति कौन अच्छी है ?"

"जो लोग सुलह न कर हड़ताल चलाने की जिद् करते हैं वे ही रुपया भी लायें ! उठो अबतो खाना खाओ !"—नैनसी ने उत्तर दिया।

रॉबर्ट को नैनसी की यह बात उचित न जँची परन्तु भाव उसका भी यही था। भोजन करते समय दोनों चुप रहे। नैनसी का भाव रुपये के सम्बन्ध में जानकर रॉबर्ट आगे के लिये अपना मार्ग सोच रहा था। और नैनसी क्रोध में सोच रही थी—यदि हरीश किसी की सहायता चाहता है तो उसे स्वयम आकर बात करने में क्या आपत्ति है ? दो मास की इस हड़ताल की चख-चख के प्रति विरक्ति अनुभव कर वह सोच रही थी, उससे पहले के अपने जीवन क्रम की बात !·······वह सब ढंग, आराम और विनोद मानो कहानी होगये और अपने वे सब सज्जन साथी कहाँ बिछुड़ गये·······?

× × ×

रॉबर्ट अभी बिस्तर से उठ पहला सिगरेट जला बरामदे में खड़ा चाय की प्याली की प्रतीक्षा कर रहा था। उसे उठते ही एक प्याली चाय लेने की आदत थी। इतने सुबह शैल को आते देख उसने आश्चर्य से पूछा—"आज इतने सुबह कैसे,·······ख़ैरियत तो है ?"

उसके पलँग के पास ही पड़ी कुर्सी पर बैठ शैल ने उत्तर दिया—"इस हड़ताल के मारे ख़ैरियत कहाँ।"

"ठीक है, तुम्हारा कहना, मैं भी तंग आगया हूँ। बहुत भर पाया ! मैं स्वयम् ही आज तुमसे कहने वाला था·······" सुनकर शैल स्तब्ध रहगई। आँखों से ऐनक उतार उसने पूछा—"रूबी, क्या कह रहे हो ?"

शैल की ओर नज़र बिना किये, जम्भाई ले, अपनी बालों से भरी बाँह को आलस्य से खुजाते हुए उसने कहा—"मेरे सामर्थ्य की हद

होगई। रफ़ीक और हरी........हाँ सुलतान मानते नहीं। जहाँ तक मुझसे बना, किया—अब नहीं होता।"

"मतलब ?"

चाय आगई थी। "तुम भी एक कप लोगी ?"—प्याला हाथ में ले उसने शैल की ओर देखा—"अरे, यह तुम्हारी आँखों को क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं, कल लू से आँखों में गर्द पड़ गई"—शैल ने उत्तर दिया। रॉबर्ट की बात से वह इतना घबरा गई थी कि अपने असमर्थ हो रोने की बात कहने का साहस न हुआ—"हाँ, सामर्थ्य की हद होजाने की बात क्या कह रहे थे ?"

"यही, मैं शुरू से इस हड़ताल के पक्ष में न था। परन्तु तुमने और हरीश ने उसमें फँसा दिया तो निभाना पड़ा। अधिक-से-अधिक मैं इतना कर सका हूँ कि डाइरेक्टर लोग मज़दूरों के बिना शर्त हड़ताल खतम कर देने पर उनकी माँगों पर सहानुभूति से विचार करें। मैं मानता हूँ, यह हमारी जीत नहीं परन्तु हम जीत सकते भी नहीं। यदि मज़दूरों में जीतने लायक शक्ति हो तो वे हड़ताल किये बिना सफल हो जांये। जनता कुछ सहायता दे नहीं रही, देगी भी नहीं। अब वे लोग बिजलीघर और पानी-कल में हड़ताल कराने की धमकी दे रहे हैं। इससे सरकार भी इन्हें अच्छी तरह पीसेगी। मैं दो हज़ार कर्ज़ा ले लगा चुका हूँ। इसके आगे हिम्मत नहीं। तुम जानती हो, फ़्लोरा को सहायता देने का बचन दे चुका हूँ। उसे कम-से-कम एक हज़ार पूजना पड़ेगा। फिर पिता की सम्पत्ति में नैनसी का भी हक़ है। उसे जाने क्या हो गया है ?—अपनी कमज़ोरी छिपाने से क्या लाभ ? हरीश या रफ़ीक जिस तरह चलते हैं वह मेरे बस का नहीं। मुझे निर्वाह के लिये कुछ-न-कुछ रखना ही है ? यदि मैं हड़ताल कमेटी का सेक्रेटरी बना रहूँगा तो मेरा यह नैतिक कर्तव्य होगा कि अपने आपको बेचकर भी इस काम में लगाऊँ। वह मेरे लिये सम्भव नहीं। सिद्धान्त रूप से मैं मानता कि हरीश

श्रौर रफ़ीक ठीक राह पर हैं परन्तु क्रियात्मक नीति में यह बात ठीक नहीं बैठती। जहाँ तक मुझसे निभा, निभाया। मैं उनसे कह चुका हूँ कि इस समय सुलह कर लो! वे लोग एक ज़िद्दी हैं। मर जायँगे, मानेंगे नहीं। इसलिये भाई मेरा सलाम!"

"रूबी क्या कह रहे हो?"—शैल ने आतुर स्वर में पूछा!

"शैल मैं ठीक कह रहा हूँ! तुम शायद मेरी बात से सहमत न होगी यह मैं पहले ही सोच रहा था। इसका कारण है या तो हरीश के प्रति तुम्हारा मोह या तुम भी उन्हीं की तरह सोचती हो।"

शैल चुपचाप उठकर चल दी। रॉबर्ट ने पुकारा—"सुनो तो?" परन्तु उसने पलटकर न देखा। देखना सम्भव भी न था। सड़क पर ताँगेवाले ने पूछा—"लौट के चलना होगा?"

"हाँ!"—शैल ने उत्तर दिया। आधी राह में ख़याल आया, क्यों न यशोदा के यहाँ होती चले। टाँगेवाले को उसने ग्वालमण्डी चलने के लिये कहा।

मकान का दरवाज़ा अभी बन्द था। उसने साँकल खटकाई। प्रायः दो मिनट बाद दरवाज़ा खुला। दरवाज़ा नौकर ने खोला और संकोच से कहा—"जी वो कहते हैं कि यहाँ न आया करें?"

शैल नौकर की ओर देख हैरान रह गई परन्तु साहस कर उसने नौकर से पूछा—"किसने कहा, यशोदा बीबीजी ने कि बाबूजी ने?"

कुछ घबराकर नौकर ने कहा—"जी हाँ उन्हींने।"

शैल समझ गई। एक गहरी साँस ले वह लौटकर टाँगे में बैठ गई। उसे कभी स्वप्न में भी आशा न थी कि वह सब ओर से इस प्रकार दुत्कार दी जायगी।

सब ओर से निराश हो शैल अपने घर जा पड़ी। वह कुछ नहीं कर सकती, यह खबर हरीश को दे आना जरूरी था परन्तु वह किस मुँह से जाय? हरीश के दाढ़ी मूँछ बढ़े, अत्यन्त श्रान्त रोगी मुख के

ध्यान से उसका कलेजा मुँह को आने लगता ! तिस पर यह निराशा का समाचार सुन उसका और उसके साथियों का क्या हाल होगा ? इस काम के लिये क़दम उठाने की उसे हिम्मत न होती परन्तु वास्तविक अवस्था समझा देना भी तो उसका कर्तव्य था। कहीं बेचारे व्यर्थ धोखे में न मारे जायँ। इस मुसीबत में वह क्या कर सकती है, सोचते-सोचते साँझ होगई। आख़िर वह उठी। इच्छा न होने पर भी मोटर लेने के सिवा चारा न था। स्वयम ड्राइव करती वह मिलों की ओर चली।

सब ओर बेरौनकी छा रही थी। मज़दूरों की टोलियाँ जहाँ-तहाँ बैठी थीं। उन लोगों के उदास चेहरे और दुर्बल शरीर देखकर उसका मन और भी निराश हो गया।

एक मिल के फाटक पर रफ़ीक एक कनस्तर पर खड़ा मज़दूरों को डटे रहने के लिये उपदेश दे रहा था। वह उन्हें विश्वास दिला रहा था, दूसरे शहरों कानपुर, बम्बई और अहमदाबाद के मज़दूरों ने उन्हें सन्देश भेजा है कि वे उनकी सब प्रकार से सहायता करेंगे। यह देश भर के मज़दूर भाइयों का मोर्चा है।

शैल समझ गई, हरीश किसी दूसरी जगह होगा। दूसरी मिल की ओर जाने पर उसे कृपाराम आता दिखाई दिया। शैल ने उससे कहा—"सुलतान को आज शाम कुछ देर के लिये भेज दोगे ?"

कृपाराम ने उत्तर दिया—"बल्कि तुम उसे साथ ले जातीं तो अच्छा रहता। उसकी तबीयत बहुत ख़राब होरही है.......पर मालूम नहीं कहाँ मिलेगा !.......अच्छा मैं कह दूँगा।"

"कहियेगा नौ बजे आजाय ! उसी रास्ते ! जैसे पहले आया था।"

× × ×

शैल फिर अपने कमरे में जा लेटी। अपना खाना मँगा वहीं रख लिया। नौ बजे से कुछ पहले वह मोटरखाने का दरवाज़ा खोल आई। पन्द्रह-बीस मिनट में हरीश आ गया। उसकी आँखें लाल और कपड़े

पसीने से तर थे। पलँग के सामने कुर्सी पर बैठ, सिर थाम हरीश ने कहा—"रॉबर्ट भी छोड़ गया ? ख़ैर जो हो ! कैसे मौक़े पर लोग धोखा दे जाते हैं !......शैल, सिर में चक्कर आ रहा है।"

शैल ने साथ का गुसलखाना दिखा कर कहा—"नहा डालो !"

"नहा डालूँ, पर यह कपड़े कैसे पहरूँगा, इनसे कैसी दुर्गन्ध आ रही है ?" शैल ने अपना एक रंगीन रेशमी स्लीपिंग सूट निकाल दिया—"इसे पहनलो, छोटा होगा......क्या हुआ !"

हरीश नहाकर आया। खाना सामने रख शैल बोली—"थोड़ा खालो !"

सिर हिलाकर हरीश ने कहा—"तबीयत नहीं होती। मुँह कड़ुआ हो रहा है।"

"नहीं, थोड़ा खाओ......ऐसे तबीयत और ख़राब हो जायगी।" शैल ने दूध का गिलास सामने कर कहा—"अच्छा यह तो पीलो।"

हरीश ने सिर हिला दिया। शैल ने गिलास उसके मुँह से लगाकर कहा—"मेरा कहा मानो, पीना होगा !" हरीश ने दूध पी लिया।

"सोये कितने दिन से नहीं ?"

समय नहीं मिला और कभी मिलता है तो नींद नहीं आती। पड़ा मिल में कल मिस्त्री ने कुछ हड़तालियों को पीट दिया था। अख़्तर और कुछ दूसरे आदमी उसका ख़ून करने को तैयार हो गये। अगर कहीं उन्होंने यह ग़लती कर दी तो सब किया कराया चौपट हो जायगा। बड़ी मुश्किल से उनके पाँव पकड़ उन्हें रोका।"

"अच्छा तुम लेट जाओ......सो जाओ।"

"जानती हो, सिर में ऐसे आवाज़ हो रही है, जैसे चक्की चलती है। डर लगता है कहीं पागल न हो जाऊँ ?"

"भूख और उनींदी से खुश्की हो गई है। यह नींद आये बिना ठीक न होगा। सो जाओ—लेटो, मैं सुलाती हूँ।"—उसे पलँग पर लिटा उसके सिर पर हाथ फेरते हुए शैल ने कहा। "पर मेरे दिमाग

से तो वह ध्यान नहीं हटता !"......मज़दूर किस तरह बावले हो गये हैं ? बिना किसी शक्ति के इन हज़ारों आदमियों को सम्भालना कैसे सम्भव है ?" हरीश ने परेशानी से उत्तर दिया।

"हरीश थोड़ी देर के लिये सब भूलकर आँखे बन्द कर लो ! हाथ जोड़ती हूँ......मानो !"

"शैल क्या करूँ ? यह मेरे बस की बात नहीं।"

अपने माथे पर टप्प से गिरे आँसू हाथ से अनुभव कर उसने पूछा—"यह क्या तुम तो रोती हो ! कहीं रोने से काम चलता है शैल ?" उसका सिर झुका उसने अपनी बाहों में ले लिया। शैल और अधिक रोने लगी। हरीश उसे पलँग पर अपने समीप खींच चुप कराने लगा। शैल ने उसे अपनी बाहों में ले हृदय से लगा लिया। उसके हृदय की धड़कन हरीश के कानों में गूँजने लगी। उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए हरीश बार-बार उसके बालों को चूमने लगा। कुछ देर में शैल के शरीर के स्पर्श से जाग उठी उत्तेजना में उसकी सब चिन्ता और क्षोभ डूब गया। उसकी चेष्टायें सीमा को लाँघने लगीं। शैल का शरीर सिहर उठता। परन्तु प्रत्येक सिहरन से वह हरीश के और भी समीप हो जाने का यत्न कर उसे आलिंगन में और भी अधिक बल से जकड़ लेती। उसे भय था, हरीश का भटका हुआ मस्तिष्क कहीं फिर उन चिन्ताओं में न फँस जाय ! शरीर की अनुभूति उसकी सब चेतनाओं को डुबा देना चाहती थी परन्तु प्रकृति से लड़कर वह अपनी चेतना बनाये थी। इस समय उसे अपनी नहीं, हरीश की परवाह थी। हरीश उत्तेजना की चरम सीमा पर पहुँच अपने आपको भूल गया। शैल उसकी इच्छा को राह देती गई। कुछ देर में शिथिल हो हरीश बिलकुल बेसुध सोगया। शैल उस समय भी जाग रही थी। वह लगातार टकटकी लगाये हरीश के मुख को देखती रही। एक समय का उसका सुन्दर चेहरा, अब जलकर काला और विरूप हो गया था परन्तु

शैल को वह आज और भी सुन्दर जान पड़ रहा था। शैल की आँखों और होठों पर मुस्कराहट थी। अपनी सफलता से गदगद हो, वह बार-बार हरीश की मुँदी हुई आँखों, माथे और ओठों को चूम रही थी।

उठकर उसने हरीश के मैले बदबूदार कपड़ों को अपने नहाने के सुगन्धित साबुन से धोया और बिजली का पंखा तेज़कर कपड़ों को कुर्सी पर सूखने डाल दिया। वह फिर हरीश के साथ आ लेटी। उसके हाथ हरीश के शरीर पर थे मानो वह सब चिन्ताओं से उसकी रक्षा कर रही है। आँखें उसकी घड़ी की, रेडियम से चमकती, सुइयों की ओर थीं। कितनी देर वह उसे शान्ति से सुला सकती है, यही वह सोच रही थी। तीन बजे उसे हरीश को उठा देना चाहिये था परन्तु वह उसे उठा न सकी। जब साढ़े तीन बज गये! और चारा न था, उसने हरीश के होंठों को चूमकर जगाने की कोशिश की परन्तु वह न जगा। उसकी नींद तोड़ने से उसे दुख हो रहा था परन्तु विवश थी। चूम-चूम कर, प्यार से पुकार कर वह उसे उठा रही थी, हरी···उठो न अब!"

आँखें खोल आश्चर्य से हरीश ने कहा—"हैं?" मानो वह कुछ समझ नहीं सका।

"अब उठो, साढ़े तीन बज गये। यह हैं तुम्हारे कपड़े!"

हरीश ने कपड़ों की ओर देखा—घड़ी की ओर देखा। कपड़े पहन वह तैयार होगया। बीती रात की घटना मस्तिष्क में जाग उठी, अटकते हुए उसने कहा—"शैल, अभी तो जाने को मन नहीं होता!"

"जाना तो है ही, तुम्हारा काम जो है!"—उसका सिर चूमकर शैल ने कहा। कोई झिजक या संकोच उसके मन में शेष न था।

दादा

लाहौर की बड़ी नहर के दाँयें किनारे की सड़क पर दादा साइकल पर चले जा रहे थे। उनसे प्रायः बीस क़दम पीछे दूसरी साइकल पर आ रहा था जीवन। माडलटाउन जानेवाला पुल लाँघ वे नहर के दूसरे किनारे हो गये। कुछ दूर जा दादा साइकल से उतर गये। उनके समीप पहुँच जीवन भी साइकल से उतर गया। जीवन ने दोनों साइकल थाम लिये। दादा ने साइकल के पीछे कैरियर पर बँधे धोती-तौलिये में लपेटे सामान को सावधानी से घास पर रख दिया। धोती-तौलिये को जिस सतर्कता से घास पर रखा गया, उसी से स्पष्ट था कि वह निरा धोती-तौलिया ही नहीं।

जीवन दोनों साइकलों को आपस में भिड़ा खड़ा करने की कोशिश कर रहा था। उसकी ओर झुँझलाहट से दादा ने कहा—"कई दफ़े तो तुम्हें कहा है, साइकलें इस तरह उलझाकर मत रखा करो; जो कभी झपट कर साइकलें उठानी पड़ें तो फिर?"

"भूल गया था दादा!"—जीवन ने उत्तर दिया और साइकलों को घास पर रखे तौलिये धोती के समीप दायें-बायें टिका दिया। धोती तौलिये को बीच में ले दोनों बैठ गये। बहते जल की ओर सतृष्ण दृष्टि से देख जीवन ने कहा—"तबीयत होती है नहा लें।"

"पागल है?"—दादा ने उत्तर दिया—"भीगे कपड़े कहाँ फेंकेगा?"

"नहाने थोड़े ही जा रहा हूँ? सिर्फ़ तबीयत की बात कह रहा था ....बी० एम० आता ही होगा।"

दादा की ओर करवट से लेट जीवन ने गुनगुनाना शुरू किया।

"माँ हमें बिदा दो जाते हैं हम विजयकेतु फहराने आज......."

उसे टोककर दादा ने कहा—"जाने क्यों, शंका होती है, बी० एम०

आयेगा नहीं। जाने क्यों वह इस "मनी-एक्शन" (डकैती) को टाले जा रहा है। पहली दफ़े उसने कह दिया था, उस मुख़बिर को शूट करने का अच्छा मौक़ा है, डकैती हो जाने से मौक़ा निकल जायगा। बाद में कह दिया, मुख़बिर अचानक शहर छोड़कर चला गया। दूसरी दफ़े उसने बहाना कर दिया, उन लोगों के लाहौर के अड्डे पर पुलिस को सन्देह हो गया है, वहाँ किसी का आना-जाना सुरक्षित नहीं, इसलिये वहाँ से तैयारी नहीं हो सकती........"

कलाई की घड़ी की ओर देखते हुए जीवन ने कहा—"मुझे तो यही समझ नहीं आ रहा कि उसके साथ के आदमी दो मौक़ै पर मारे गये, तीसरे मौक़े पर उसके साथ का आदमी गिरफ़्तार हो गया परन्तु उसपर कभी आँच नहीं आती........दादा आ तो रहा है, देखो !........ पर है अकेला ही........।"

पुल पर मुड़ते समय बी० एम० ने घूमकर पीछे की ओर देख लिया। उन लोगों के समीप पहुँच साइकल को नहर की पटरी पर खड़ाकर वह जीवन और दादा के पास आ बैठा।

. प्रश्नात्मक दृष्टि से उसकी ओर देख दादा ने पूछा—"क्यों ?"

रूमाल से माथे का पसीना पोंछ बी० एम० ने उत्तर दिया—"दादा मुश्किल ही दिखाई देता है। कपड़ा मिलों की हड़ताल की वजह से शहर की सड़कों पर पुलिस की संख्या बहुत बढ़ गई है और आढ़त की उस दुकान पर आजकल मिलें बन्द होने से माल भी नहीं आ रहा। आज यह भी ख़बर मिली है कि कम्यूनिस्टों की पार्टी उस दुकान पर धरना देनेवाली है। ऐसी हालत में अभी तो कुछ नहीं हो सकता।"

"लेकिन हम तो देहली में वायदा करके आये हैं कि दस तारीख़ तक रुपया ज़रूर भेज देंगे और सोलह भी हो गई........इस तरह हमारा विश्वास कौन करेगा ?"—जीवन ने दादा की ओर देखकर कहा।

अँगूठे का नाखून दाँत से काटते हुए बी० एम० ने कहा—"दादा,

रुपये के लिये एक तरीक़ा हो सकता है..............पाँच हज़ार तक हमें आसानी से मिल सकेंगे।.......यदि हम यहाँ की हड़ताल को तुड़वाने में थोड़ी-सी मदद कर सकें।"

"क्या?"—विस्मय से दादा ने पूछा—"क्या मतलब?"

"यही यदि हम अपनी पार्टी की ओर से यह पर्चे बँटवादें कि यह हड़ताल कम्यूनिस्टों की शरारत है और देश हित के विरुद्ध है।"—बी० एम० ने उत्तर दिया।

बहते हुए जल की ओर देखकर दादा ने पूछा—"तुम्हारा मतलब है, इन भूखे मरते हज़ारों मज़दूरों के साथ धोख़ा करें? जो लोग अपने पेट की रोटी के लिये लड़ रहे हैं, उनकी टाँग घसीट लें?"

"पर इन हड़तालों से लाभ क्या?.......यह तो महज़ एक शरारत है। आप देखिये इन हड़तालों से देश के नये उगते हुए उद्योग धन्दों को कितना धक्का पहुँच रहा है? यदि मिलें शान्ति पूर्वक चल सकें तो इन्हीं मिलों के मुनाफ़े से दूसरी मिलें बन सकती हैं। आपको मालूम है, यह कम्यूनिस्ट जापानी फर्मों से रुपया खाकर देशी मिलों को नुक़सान पहुँचा रहे हैं, केवल अपनी पार्टी मज़बूत बनाने के लिये। इस समय हमारे लिये भी अवसर है। इन पूँजीपतियों की सहायता से हम अपनी पार्टी की स्थिति सुधार सकते हैं। आजकल इन मिलों को साठ-सत्तर हज़ार का नुक़सान रोजाना हो रहा है।....हड़ताल का तुड़वाना कुछ भी मुश्किल नहीं। देश के व्यापार को लाभ पहुँचने के साथ-साथ हम मनीएक्शन (डकैती) के झगड़े से भी बच सकते हैं।"

"हूँ"—दादा ने अपनी दृष्टि बहते हुए जल से वृक्षों की चोटियों की ओर ले जाते हुए कहा—"इस बारे में दूसरे साथियों से सलाह किये बिना कुछ नहीं कहा जा सकता।.......कम-से-कम अली से पूछना होगा।"

अपनी बात पर ज़ोर देने के लिये बी० एम० ने कहा—"इतना समय कहाँ है?...........जो कुछ करना हो जल्दी ही करना चाहिये।

हड़ताल तो दो-एक रोज़ में यों भी जाने वाली है। यह तो हमारे लिये लाभ उठाने का एक मौका है।........और आप कहें तो 'मनीएक्शन' (डकैती) के लिये मैं दूसरी जगह प्रबन्ध करूँ ?"

"हूँ"—जीवन की ओर मुँह फेर कर दादा ने उत्तर दिया—"हाँ, करो............लेकिन तुम्हारे सभी प्लाट फेल हो रहे हैं, बात क्या है ? ज़रा ख़याल से और जल्दी करो।........अच्छा तो फिर चलें !"

तीनों उठ खड़े हुये। बी० एम० पुल से सेन्ट्रल जेल की ओर चला गया। दादा और जीवन अपना धोती-तौलिया साइकल के पीछे बाँध जिस राह आये थे, उसी राह पैर-पैदल लौट चले। सहसा खड़े हो, दादा ने कहा—"जीवन ! यह तुमने बी० एम० की बात देखी ?.... यह सब क्या तमाशा है ?............हम मज़दूरों का साथ देंगे या मिल मालिकों का ?........यह रोज़ की नयी राजनीति साली कुछ समझ नहीं आती.......सोशलिज्म भी चलता है............देश-भक्ति भी चलती है। जो साला आता है, हमें गधा बनाने लगता है। एक नई थियोरी रोज़ निकल आती है........यह जापान की एक नई सुनी !........अपने ही साथियों के साथ बन कर बात करने में मेरा दिल कटकर रह जाता है, पर करूँ क्या ?........यहाँ किसी पर ज़ोर तो है नहीं। मानें तो डिसिप्लिन, नहीं तो यहाँ हरएक तीसमारखाँ है ही।........तुम क्या समझते हो ?....क्या समझते हो तुम ?....क्या करें ?"

जीवन ने कहा—"दादा, कल मैं अनारकली-बाज़ार से गुज़र रहा था, उस समय इन हड़तालियों के वालण्टियर और वे लड़कियाँ शैलबाला वग़ैरा हड़तालियों के लिये झोली में चन्दा माँग रही थीं। कुछ बदमाश उन पर कंकड़ फेंक रहे थे। कुछ उन्हें "जापानियों के एजेण्ट" कहकर तालियाँ बजा रहे थे, कोई रूसियों का एजेण्ट बताता था। एक बदमाश लड़के ने नाली से कपड़ा भिगोकर शैलबाला के सिर पर फेंक दिया। एक मज़दूर गाली देकर उस लड़के की तरफ़

लपका। वह कम्यूनिस्ट, रफ़ीक भी साथ था। मज़दूर को उसने गर्दन से पकड़ लिया। सचमुच भैया, स्वयं मेरी तबीयत में आया बद-माश को गोली मार दूँ। बड़ी मुश्किल से अपने आपको रोका।····और यह बी० एम० शैलबाला और कम्यूनिस्टों की बाबत क्या-क्या कहता था? और दादा, जानते हो कपड़ा मिल की हड़ताल का सेक्रेटरी वह सुल्तान कौन है?····वह हमारा अपना हरीश ही····पार्टी से निकाल देने के बाद उनमें जा मिला····।

"क्या बकते हो?····" दादा ने टोका।

"दादा तुम्हारी कसम! तुम जानते हो उसने किया क्या है?···· सामने, नीचे के दो दाँत निकलवा दिये हैं, इससे उसकी आवाज़ भी नहीं पहचानी जाती। चेहरे पर तमाम फोड़े के दाग जैसी खाल बन गई है। शायद तेजाब लगाकर खाल जला डाली है। चेहरा बहुत बदसूरत और घिनौना हो गया है और उस पर छटी हुई दाढ़ी-मूँछ रखाली है। बीमार सा जान पड़ता था। चेहरा ऐसा बदला है कि बिलकुल पहचाना नहीं जाता और न आवाज़ ही! वह तो मैं उधर से साइकल पर जा रहा था, मिल से लौटता हुआ वह साइकल पर राह में मिल गया। मुझे देख उसने मुस्करा दिया तो उससे दो बातें हुईं। कहने लगा— दादा तो नाराज़ होंगे, पर मेरी तरफ़ से याद करना। उसका ख़याल कर आँसू आने लगे········"

"तुझे हरदम आँसू ही आया करते हैं····मुझे बेहद शरम मालूम हो रही है। दिल्ली वाले लोग हमें क्या कहते होंगे? कौन हमारा एत-बार करेगा? खामुख़ाह दो हज़ार इन हथियारों में फूँका! क्या दूध दे रहे हैं यह? किसका एतबार किया जाय?········इन सब से तो हरी अच्छा रहा। हम उसे मारने को फिर रहे थे? कितने हैं, ऐसी हालत में जो पुलिस से नहीं जा मिलते?········और यहाँ बड़े राजनीतिज्ञ आये हैं, सलाह देते हैं, मज़दूरों का ख़ून बेचकर रुपया लाओ!"

दादा को चुप देख साइकल का ब्रेक खटखटाते हुये जीवन बोला—"दादा, एक काम क्यों न करें? उस आढ़त की दुकान पर जाकर मैं खुद क्यों न देखूँ? इन लोगों को छोड़ो·······अपना दिल्लीवाला तीसरा आदमी है ही। रुपया हमें दिल्ली भेजना है, नहीं तो हमारी बात का मोल नहीं रहेगा।"

"जीवन, सच कहता हूँ, शरम के मारे मरा जा रहा हूँ। और कुछ कर नहीं पाये; झूठे कहलाने का कलंक तो न आये! इसमें मेरी अपनी इज्ज़त का सवाल है। चाहे जो ख़तरा हो; मैं आज ही यह काम करूँगा।"—दादा ने दाँत से मूँछ काटते हुये कहा।

× × ×

अगले दिन प्रातःकाल अख़बारों के मुख पृष्ठ पर मोटे-मोटे अक्षरों में छपा :—

"लाहौर के बाज़ार में सशस्त्र डकैती। डाकू पिस्तौल के जोर २७ हज़ार छीन ले गये।"

नीचे महीन अक्षरों में डकैती का खुलासा यों था—

"जीवाराम-भोलाराम की आढ़त में डकैती हो गई। दुकान बन्द होने से कुछ समय पहले दो डाकू व्यापारियों के भेस में कपड़े की कुछ गाँठों का सौदा करने के लिये आये। दुकान के नौकर को नमूने के थान लेने के लिये गोदाम भेज दिये जाने पर डाकुओं ने अपने कपड़ों से छुरे और तमंचे निकाल मालिक दुकान और मुनीमों से तिजोरी की चाबी माँगी। इतने में दूसरे डाकू दुकान पर चढ़ आये। दुकान के मालिक को यातो कुछ सुँघा दिया गया या किसी बेधार के भारी हथियार से उनके सिर पर चोट कर बेहोश कर दिया गया। बदन पर चोट का कोई निशान नहीं मिला। डाक्टरी रिपोर्ट है कि उनकी मृत्यु यातो दिमाग़ पर सख्त चोट आने से या सहसा हृदय की गति रुक जाने से हुई है। दोनों मुनीमों के हाथ पीठ पीछे बाँध उनके मुख में

कपड़ा ठूँस दिया गया। टेलीफोन का तार काट दिया गया। तिजोरी से सत्ताइस हज़ार के नोट और कुछ नक़दी लेकर डाकू गायब हो गये।
"जिस समय नौकर थान लेकर लौटा, डाकू गायब हो चुके थे। मालिक गद्दी के सहारे बैठे थे परन्तु निश्प्राण। मुनीम मुँह में कपड़ा भरे हाथ पैर बँधे पड़े । नौकर के सहायता के लिये चिल्लाने पर पुलिस को ख़बर दी गई। डाकुओं की संख्या का ठीक पता नहीं चला परन्तु वे सशस्त्र थे। पुलिस मामले की खोज सरगर्मी से कर रही है।"

जो लोग हड़तालियों के उपद्रव से परेशान थे, उन्होंने चुपके-चुपके कहा—"यह इन्हीं लोगों की बदमाशी है। रफ़ीक, सुलतान और उनके साथियों को भी भय हुआ कि मिल-मालिक षड़यंत्र कर उन्हें पुलिस के चंगुल में न फँसा दें परन्तु उन्हें भरोसा था कि डकैती की रात जिस समय वे हड़तालियों की सभा कर रहे थे, पुलिस मौजूद थी। इसलिये उनके डकैती में सम्मिलित न होने का प्रमाण पुलिस के पास मौजूद था।

दो सप्ताह बीत गये। डकैती की बात लोग भूल गये। शहर में हड़ताल और उसके परिणाम का ही चर्चा चल रहा था, उसी के सम्बन्ध में समाचार-पत्रों में ख़बरें छपती थीं, उसी के सम्बन्ध में अनुमान लगाये जाते थे। शैलबाला दो-एक दूसरी लड़कियों और कुछ और लड़कों को ले हड़तालियों के लिये चन्दा उगाहने और सहानुभूति के प्रस्ताव पास कराने में लगी थी। उसकी प्रशंसा और निन्दा दोनों ही होतीं। कुछ लोग उसे उत्साही और त्यागी कार्यकर्ता बताते और कुछ कहते वह नये-नये लड़कों से मिलने की शौक़ीन है। अब उसने निन्दा और स्तुति की चिन्ता छोड़ दी थी। अब तक वह अपने पिता की राय की क़द्र करती थी, उनसे डरती थी, परन्तु अब उसने उनकी पर्वाह भी छोड़ दी। उसके पिता भी चुप थे। वे उसे स्वतंत्रता दिये थे परन्तु लड़की की निजी आवश्यकता के इलावा रुपया बिलकुल न

देते। कभी पैट्रोल के लिये जेब में पैसे न होने पर वह पैदल ही घूमती-फिरती। ऐसी ही हालत में संध्या के आठ बजे वह एक सभा से लौट रही थी। अपने मकान के अहाते के भीतर पैर रखते ही उसे पीछे से किसी ने पुकारा—"बहिन शैलबाला !"

लौटकर उसने देखा, एक दोहरे क़द का व्यक्ति बंद गले का कोट पायजामा, पगड़ी पहरे, चश्मा लगाये उसकी ओर देख रहा है। पुकारने वाले व्यक्ति को शैलबाला पहचान न सकी परन्तु उत्तर दिया—"कहिये ?"

आगन्तुक ने समीप आ आँखों से चश्मा उतार पूछा—"मुझे पहचाना नहीं ?·······मुझे तुम दादा कहती थीं !"

"दादा ?"····विस्मय से वह देखने लगी। पहचान कर वह दादा को भीतर लिवा ले गई। भीतर के कमरे में उन्हें कुर्सी पर बैठा शैलबाला ने कहा—"दादा आपने तो भुला ही दिया। हम लोग तो बड़ी मुसीबत में फँस गये···········कब आये आप ? बी० एम० मज़े में हैं·······?

"दो हफ़्ते से मैं यही हूँ !"—दादा ने कहा—"और बहुत कुछ जानता भी हूँ। हरीश तो सुलतान बन गया है·······किस तरह चेहरा बिगाड़ लिया है। उस रोज़ मालूम होने पर उसे दूर से देखने गया····"—दादा होंठ काटकर चुप हो गये। गले में अवरोध के कारण बोलने में कठिनाई अनुभव होने लगी।

उस ओर ध्यान न होने से ठोड़ी पर उगली रख शैलबाला कहती चली गई—"मुँह तमाम तेज़ाब से जला लिया है दादा, सामने के दो दाँत निकलवा दिये हैं। मैंने कहा, चेहरा ऐसे क्यों बिगाड़ रहे हो, तो कहते हैं ; चेहरे से क्या होता है ? चेहरा बदले बिना मैं जनता में काम नहीं कर सकता। जब बम-पिस्तौल लिये छिपे फिरने में मेरा विश्वास नहीं तो मुझे जनता में काम करना होगा।"

चश्मा हाथ में ले फर्श की ओर देखते हुए दादा बोले—"मुझे अफ़सोस है, उस रोज़ हरीश और तुम्हारी बाबत जो कुछ कहा उसका ख़याल न करना.......मुझे अपने आदमियों का एतबार करना था। तुम्हारी हड़ताल का क्या हाल है?"

"दादा, फ़ेल हो जायगी"—लम्बी साँस खींचकर शैल ने उत्तर दिया—"इतने दिन किसी तरह निभाया। कानपुर, बम्बई, अहमदाबाद से मदद मँगाई। यहाँ के लोगों को तो जाने क्या हो गया है? उल्टा हमें जापानियों का एजेण्ट बताते हैं। मिल-मालिक कई हज़ार रुपया रोज़ खर्च कर रहे हैं। हमारे ख़िलाफ़ अखबारों वाले उल्टी खबरें छापते हैं। जहाँ हम सभा करते हैं, उनके आदमी आकर हल्ला कर देते हैं। मालिक लोग इस समय भीतर ही भीतर घबरा गये हैं। इसी-लिये हड़ताल तुड़ाने की दम-तोड़ कोशिश कर रहे हैं। अगर इस समय हम सात दिन के लिये भी जम जायँ तो मज़दूर जीत जायँ और अगर मज़दूर इस समय हार गये, तो फिर कई साल के लिये दब जायँगे। हालत असल में इतनी बुरी है कि हड़ताल तो कभी की टूट चुकी होती। यह तो रफ़ीक और हरीश की बातें हैं जो मज़दूर अपने भविष्य का ख़याल कर डटे हुए हैं।"

"रुपया होने से ही आपकी हड़ताल सफल हो जायगी? कितना रुपया इस समय चाहिए आपको?"—दादा ने दोनों हाथों का पंजा बाँधते हुए पूछा।

"इस समय तो दादा अगर दस हज़ार मिल जायँ तो हम मज़दूरों को बीस दिन लड़ा सकते हैं। आप जानते हैं, मज़दूर मुट्ठी भर चने पर जी सकते हैं। यहाँ उन्हें तीन-तीन दिन अन्न बिना गुज़र रहे हैं।"

कोट के बटन खोल दादा ने कई जेबों से निकाल निकाल नोटों के छोटे बड़े बन्डल शैल की गोद में फेंकने शुरू किये और बोले—

"यह बीस हज़ार हैं। अब तो तुम लोगों का काम चल जायगा? हरीश की टेक्नीक और थियोरी की पेचीदा बातें मैं नहीं जानता। सिपाही आदमी हूँ, हरी को यह मेरी भेंट है क्योंकि वह सच्चा सिपाही है।.... अपनी समझ की बात है"—उलझन के भाव से हाथ हिलाते हुए उन्होंने कहा—"ख़ैर, मुझे रुपये से मतलब नहीं। जो देना था वह चुका दिया। बाकी यह जिन लोगों का है, उन्हीं के पास जाय....... समुन्दर का जल समुन्दर में। हाँ; हरीश से मेरा प्यार कहना....... कहना, झगड़े की उन बातों को भूल जाय! फिर कभी किसी काम आ सकूँगा तो देखूँगा.......अच्छा अब चलता हूँ।"

परन्तु दादा उठे नहीं। दोनों हाथों के पंजे मिला कुर्सी पर कुछ आगे झुक फर्श की ओर नज़र किये दाँतों से मूँछों को खोंटते हुए उन्होंने कहा—"समय बदल गया है कितनी जल्दी! ऐसा जान पड़ता है, नदी को पार करने के लिये हमने नाव ठेलनी शुरू की थी परन्तु नाव के नीचे से जल की धारा ही हट गई और हम आ टिके हैं सूखी रेती पर। जल की धारा दूसरी ओर घूम गई है।.......हरी ठीक कहता है, बजाय जल की धारा को घुमाकर नाव के नीचे लाने के नाव को ही उस ओर घसीटना चाहिए......." उसी ओर दृष्टि किये रहकर, जैसे वे फ़र्श से ही बात कर रहे, उन्होंने कहा—"मेरा मतलब है, जनता की जल धारा से।" और वे चुप हो गये।

शैल चुपचाप उनकी ओर देख मन में सोच रही थी, यह आदमी कितना सीधा है? अपनी बात को संकेत रूप में कहने से इसे संतोष न हुआ। स्पष्ट शब्दों में कहे बिना उससे रहा न गया।

सहसा दादा उठ खड़े हुए—"अब मैं चलता हूँ, नमस्कार!"

"न दादा, यह सब आप अपने ही हाथ से उन्हें दें तो वे बहुत प्रसन्न होंगे।"—प्रसन्नता से चमकती हुई आँखों से शैलबाला ने कहा।

"न, न, यह सब तमाशा मुझे नहीं चाहिए, तुम उसे दे देना,.... आया है बड़ा प्रसन्न होनेवाला।"

"दादा, इसमें कोई भय तो नहीं न ?" शैल ने पूछा और अपनी आशंका से स्वयं ही लज्जित हो गई।

"मेरे हाथ से भय की बात न होगी........पर काम समझदारी से करना होगा। हरीश तो समझदार है। कम्यूनिस्टों की बात मैं नहीं जानता........वे बकते बहुत हैं........बकनेवाला आदमी ....ठीक नहीं होता। अच्छा अब चलता हूँ।"

दादा के चले जाने के बाद शैल उन नोटों को हाथ में लिये बैठी रही। भोलानाथ-जीवाराम के यहाँ हुई डकैती का समाचार पत्रों में पढ़ा बयान उसे याद आने लगा और डकैती और हत्या के अपराध का परिणाम भी! दोनों हाथों में थमे डकैती के नोटों के बण्डल से शरीर में एक विचित्र आशंका का रोमांच-सा अनुभव होने लगा। उसने सोचा— "ग़रीबों पर अत्याचार कर यह रुपया छीना गया था। फिर जीवाराम भोलाराम की हत्याकर उनसे यह रुपया छीना गया और अब जिसके हाथों में यह रुपया जायेगा, उसकी हत्या किये बिना भी नहीं रहेगा। उसे अनुभव हुआ डकैती का यह रुपया हरीश के प्राण ले लेगा........।"

दादा डकैती के अपराध से रुपया लाकर बिना किसी लोभ, मोह और स्वार्थ के इस रुपये को दूसरों की ओर ठुकराकर स्वयम् तो पाप से मुक्त हो गये परन्तु अब जो इस रुपये का व्यवहार करेगा, वह बच न सकेगा। एक दफ़े मन में बिचार आया उन सब नोटों को जलादे। और तभी ख़याल आ गया, कितनी जोखिम से यह रुपया लाया गया है ?........उसी समय अन्न के दाने-दाने के लिये तरसते हुए हड़ताली मज़दूरों की कातर आँखें भीख माँगती हुई दिखाई देने लगीं। इसके बाद तेज़ाब से जले हरीश के मुख पर उसे मुस्कराहट दिखाई दी।

वह कह रहा था—"वाहरे तुम्हारा वहम ! रुपया है क्या ? वह एक साधन है, एक शक्ति है, उसे अच्छे या बुरे कामों में लगाया जा सकता है। हम तो किसी पर अत्याचार करने नहीं जा रहे ?"·······उसी समय अपने पिता की आँसू भरी आँखें दिखाई दीं। बचपन में अपनी गोद में बैठा दाँतों तले उँगली दबाकर वे उसे समझाते थे—"बेटा, झूठ और चोरी महापाप है, इससे मनुष्य को सदा दुख होता है।"

शैल को अनुभव हुआ सिर में चक्कर आने से वह फ़र्श पर गिर पड़ेगी। ऊँचे स्वर में उसने पुकारा—"ड्राइवर, गाड़ी निकालो।" उसे जान पड़ा वह भय से काँप रही है। बिना एक घूँट जल पिये ही उस रुपये को सौंप आने के लिये वह घर से बाहर निकल पड़ी।

× × ×

मनुष्य के साहस की एक सीमा होती है। परिस्थितियों से वह लड़ता है परन्तु कई दफ़े उनसे हार माननी पड़ती है। रफ़ीक़, सुल्तान और कृपाराम भी हार मानने के लिये विवश हो गये। निराश होकर वे हड़-ताल समाप्तकर देने के उपाय सोच रहे थे। चिन्ता यही थी कि यह काम किसी प्रकार सम्मान-पूर्वक हो जाय। उसी समय शैल की गाड़ी पहुँची। रफ़ीक़ और हरीश को बुलाकर शैल ने नोटों के बण्डल थमा दिये।

आधे घण्टे में क्वार्टरों और मालिकों के बँगलों तक ख़बर पहुँच गई कि बम्बई से हड़तालियों के लिये बहुत भारी मदद आ पहुँची है, वे महीनों लड़ सकते हैं।

११

न्याय !

हड़ताल में मज़दूरों की जीत होगई। उत्साहित हो दूसरी मिलों और कारख़ानों के मज़दूरों ने भी मज़दूर सभायें बनानी शुरू कर दीं। कई मिलों में और कारख़ानों के क्वार्टरों में रात्रि पाठशालायें जारी होगईं। रफ़ीक और सुलतान मज़दूरों के संगठन में लगे थे। शैल भी चुपचाप घर में अपने मकान में समय बिता रही थी। रॉबर्ट के यहाँ भी वह अब न जाती। हरीश से मिलना उतना आसान न था। सुलतान के भेस में उसका रूप, और रहन सहन का ढंग ऐसा बन गया था कि भद्र समाज में उसका आना जाना कठिन था।

शैल को शान्ति से दिन बिताते देख उसके पिता भी संतुष्ट थे। मज़दूर हारें या जीतें, पिता पुत्री के बीच का झगड़ा समाप्त होगया। झगड़ा समाप्त होने पर शैल को अपने शरीर में एक आलस्य और शिथिलता अनुभव होने लगी। इसका कारण भी वह समझगई। परिणाम की बात सोच भय भी कम न जान पड़ा परन्तु उसने निश्चय कर लिया, जो भी हो इस कठिनाई का प्रबन्ध वह करेगी।......एक दिन प्रकट हो वह उसकी गोद में आ जायगा, इस कल्पना से हृदय उमंग उठता।

........समाज, समाज क्या है? वह इस बात का प्रबन्ध कर लेगी कि समाज की व्यवस्था का नख़रा भी कायम रहे और वह अपने

जीवन का अधिकार भी पा सके।.......अब उसे चिन्ता थी तो केवल इसी बात की!

अचानक एक दिन समाचार मिला--हरीश, कृपाराम और अख़्तर को पुलिस ने दफ़ा ३९६ में अख़्तर के क्वार्टर से गिरफ्तार कर लिया। पूछने पर मालूम—दफ़ा ३९६ का अर्थ है, डकैती और कत्ल। शैल का माथा ठनका। अपने शरीर की शिथिलता और मन की अस्वस्थता को भुलाकर उसने वक़ीलों के यहाँ दौड़ धूप शुरू की। अभियुक्तों से मिलकर कुछ पता ले सकने का अवसर पुलिस ने न दिया।

मैजिस्ट्रेट के यहाँ मुक़दमा पेश होने पर पुलिस के बयान से मालूम हुआ कि जीवाराम—भोलानाथ के यहाँ से डकैती में जाने वाले बड़े-बड़े नोटों के नम्बर खाते से पुलिस ने नोट कर लिये थे। उनमें से एक नोट पकड़ा गया और नोट तुड़ाने वाले का पीछा कर पुलिस को कपड़ा मिल के ३८ नम्बर क्वार्टर के अड्डे का पता चला। क्वार्टर पर छापा मारने पर डेढ़ हज़ार के नोट और मिले जिनके नम्बर भोलानाथ जीवाराम के खाते में सही मिल गये। क्वार्टर में कृपाराम, सुलतान और अख़्तर गिरफ्तार कर लिये गये और उन पर डकैती और लाला जीवाराम की हत्या का मुकद्दमा चलाया गया। जनता को विश्वास हो गया कि हड़तालियों ने डकैती के रुपये से ही हड़ताल लड़कर सफलता प्राप्त की है।

शैल और रफ़ीक अभियुक्तों के मुक़दमे की सहायता के लिये शहर में दौड़ते फिरते परन्तु कातिलों और डाकुओं की सहायता के लिये कौन तैयार होता? शैल ने अपने पिता से सहायता के लिये गिड़गिड़ा कर प्रार्थना की। समय-समय पर कांग्रेस को उन्होंने हज़ारों रुपया चन्दा दिया था परन्तु जब उन्हें निश्चय था कि उन्हीं की श्रेणी के लोगों पर डकैती कर उन्हीं की श्रेणी को नुक़सान पहुँचाने के लिये कत्ल और डकैती के बल पर हड़ताल लड़ी गई है, वे इसमें किस प्रकार

सहायता देने के लिये तैयार होते ? डाकुओं के प्रति शैल की सहानुभूति देख उन्हें इतनी लज्जा और दुख हुआ कि उन्होंने घर से निकलना बंद कर दिया। उनके मिलनेवाले वयोवृद्ध सम्मानित लोग शैल के इस व्यवहार पर उनके सामने शोक प्रकट करते और उन्हें समझाते, लड़कियों की स्वतंत्रता उन्हें बिगाड़ देती है। लाला ध्यानचन्द ईश्वर-भक्त और धर्मात्मा व्यक्ति थे। वे सोचते, अवश्य पिछले जन्म के किसी महापाप के कारण उन्हें वृद्धावस्था में यह अपमान और निन्दा सहनी पड़ रही है निरंतर दुख और चिंता के कारण वे पलँग पर लेट गये।

शैल पिता के दुख और कष्ट का कारण समझती थी। पिता के प्रति उसका हृदय में अगाध श्रद्धा और प्रेम था। एक ओर हरीश के प्रति उसके प्रेम, उसके प्रति उसकी वफ़ादारी उसे खींचती दूसरी ओर पिता के प्रति कर्तव्य ! पिता के लिये लड़की का डाकुओं से सहानुभूति कर उनसे मिलने के लिये अदालत जाना असह्य था। कई दफ़े उन्होंने उसे पास बैठाकर समझाया कि उसका यह व्यवहार उसका भविष्य बिगाड़ देगा। परन्तु शैल के पास केवल एक उत्तर था—"पिताजी वे डाकू नहीं हैं। वे मनुष्य समाज के लिये एक नये युग का संदेश लेकर आये हैं। समाज के कल्याण के लिये ही वे समाज के अत्याचार को सहन कर रहे हैं।"

बुआ शैल को समझातीं—"बेटी तेरी यह ज़िद तेरे पिता के प्राण ले लेगी। शैल को बुआ की बात से रोमांच हो आता। जिस पिता ने उसे इस संसार में जन्म दिया, पाल-पोसकर बड़ा किया, उसका उस पर कितना अधिकार है। परन्तु वह क्या करे ? हरीश और रफ़ीक की बातें उसके सामने आ जातीं। मनुष्य समाज का कितना बड़ा भाग मौजूदा व्यवस्था के कारण अपनी गोद में सिसकते बच्चों का पेट न भर सकने के कारण अपनी आँखों के सामने उन्हें निश्प्राण होते देखता है ? कितने ग़रीब अपनी आँखों के सामने अपने वृद्ध माता-पिता को इसलिये

दम तोड़ते देखते हैं कि वे उनके लिये दवाई की दो खुराक मुहय्या नहीं कर सकते ; क्योंकि वे उनके लिये डाक्टर या वैद्य को अन्तिम समय पर भी नहीं ला सकते। हरीश का मज़ाक में उसे 'सभ्य डाकू की बेटी' पुकारना याद आ जाता। वह कहता था—तुम्हारे पिता का यह मकान जिसमें सैकड़ों ग़रीब आदमी गुज़ारा कर सकते हैं, उनकी यह लाखों की सम्पत्ति, क्या उनके हाथों की मेहनत है ? लाखों ग़रीबों की मेहनत का यह छीना हुआ अंश ही उनकी शक्ति है। आज यदि कोई व्यक्ति तुम्हारे मकान से मुट्ठी भर आटा उठा ले तो वह चोर है परन्तु तुम्हारे पिता कितनी मिलों में और बैंकों में अपनी पत्तियाँ लगा कर मुनाफ़ा लेते हैं। उन्हें मालूम भी नहीं कि उन मिलों में कितने मज़दूर किस प्रकार मेहनत करते हैं। उन्हीं मज़दूरों की मेहनत की तो यह कमाई है जो अपना तन भी ढाँप नहीं सकते, जो अपना पेट भी भर नहीं सकते ? क्या यह चोरी नहीं ? तुम्हारे पिता और उनके साथियों ने अपने लाभ और सहूलियत के मुताबिक़ क़ानून बना लिया है कि उनकी चोरी मुनासिब है और दूसरे की नहीं। यदि तुम्हारे पिता का हज़ारों मज़दूरों की मेहनत का हिस्सा अपने प्रबन्ध से छीन लेना न्याय है तो विदेशियों का इस देश को पराधीन रख इसका शोषण करना अन्याय कैसे है ? और आज अपने लाभ के लिये समाज की इस व्यवस्था को क़ायम रखने के लिये वे न्याय और धर्म की पुकार मचाते हैं ; दम भरते हैं, हज़ारों मज़दूरों को रोज़ी देने का। तुम्हारे पिता ठीक उसी तरह इन मज़दूरों को खाते हैं जैसे मुर्गी पालने वाला मुर्गियों को दाना डालकर उन्हें खाने के लिये पालता है। उस समय वह इन बातों से चिढ़ जाती थी। अब उसे यह सब सोचकर ग्लानि होने लगती, उसी प्रकार जैसे अपराधी को अपना अपराध सत्य मालूम होने पर लज्जा अनुभव होने लगती है।

वह इन विचारों को मस्तिष्क से हटा अपने बचपन की बात याद

करती जब अभी घुटनों-घुटनों तक फ्रॉक पहने वह खेला करती थी। जब अपनी लटें और कपड़ों में धूल भरे वह पिता के गले में बाँहें डाल पिता की गोद को अपने पैरों से रौंदा करती थी। शैशव की उस स्मृति से उसकी आँखों में आँसू आ जाते। आँसुओं से धुँदली उन आँखों के सामने उसे हरीश की मूर्ति दिखाई देने लगती। पुलिस के पहरे में पैरों मे बेड़ियाँ और हथकड़ियाँ पहने उसे अदालत में लाया जाता था केवल यह निश्चय करने के लिये कि किस दिन उसे फाँसी पर लटका देना है। अदालत में आते ही हरीश की आँखें उसे ढूँढ़ने लगतीं, उससे दृष्टि मिलने पर उसकी आँखें उत्साह से कैसे चमक उठतीं।

वह कल्पना में देखती—एक दिन किस प्रकार हरीश उसके अपने शरीर से उसकी अपनी गोद में प्रकट होकर किलोल करेगा। पड़ोस में या राह में खेलते छोटे-छोटे बच्चों को देख उसकी कल्पना में एक छोटा-सा रूप कूद पड़ता। अपना बचपन, अपने पिता का प्यार उसे भूतकाल की बात दिखाई देती और अपनी गोद में किलकते शिशु पर उसका उछलता हुआ स्नेह भविष्य की राह। अपने पिता के वात्सल्य की स्मृति से एक दीर्घ निश्वास ले वह कहती, जीवन की शृंखला को तो जारी रहना है। पीछे की ओर फिर कर देखने से ही काम नहीं चलेगा; उसके लिये आगे की ओर भी देखना होगा।

मुकद्दमा सुनने के लिये अदालत न जाना उसके लिये सम्भव न था। अपने व्यवहार के कारण पिता को चुपचाप पलँग पर पड़े छोड़कर जाते समय रोज़ ही उसकी आँखों में आँसू आ जाते परन्तु वह विवश थी। अभियुक्त अदालत में आते ही नारे लगाते—'संसार के मेहनत करनेवालो एक हो, पूँजीवाद का नाश हो, समाजवाद की जय हो!' वकीलों ने शैल से कहा, "वह हरीश को समझा दे कि वह बयान में केवल अपने आपको निर्दोष बतलाये और यह कहे कि डकैती की वार्दात के समय वह किस जगह था? परन्तु हरीश इस बात पर तुला था

कि अपने बयान में अपने उद्देश्य की बात ज़रूर कहेगा। पुलिस के बयान समाप्त हो जाने पर जज ने अभियुक्तों से अपना बयान देने के लिये कहा। अभियुक्तों की ओर से सुलतान ने बयान दिया—

"........हम लोगों के पास डकैती के नोट पकड़े गये हैं। अदालत हम पर डकैती का अपराध लगा रही है। जनता भी हमें डाकू समझ हमसे घृणा करेगी। बहुत सम्भव है, पुलिस द्वारा इकट्ठी की गई गवाही के आधार पर अदालत हमें कत्ल और डाके के अपराध का दोषी क़रार देकर फाँसी की सज़ा देदे। परन्तु यदि सचाई कोई चीज़ है तो हम दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि हमने डकैती नहीं की। डकैती में हमारा विश्वास नहीं। समाज में प्रतिष्ठित पूँजीवादी शोषण की निरन्तर डकैती का विरोध करने के लिये हमने अपना जीवन अर्पण कर दिया है। इस अदालत का उद्देश्य है न्याय करना परन्तु यह न्याय क्या है? कुछ आज्ञायें और व्यवस्थायें पूँजीपति श्रेणी की व्यवस्था ने पूँजीपति श्रेणी के अधिकारों और शासन को क़ायम रखने के लिये जारी की हैं। इस व्यवस्था का जारी रहना ही इस सरकार और इस अदालत की दृष्टि में न्याय है। इस अदालत का कर्तव्य है, यह देखना कि हम उस व्यवस्था और आज्ञा के अनुसार चलते हैं या नहीं। हमारा उद्देश्य उस प्रणाली को बदल देना है, इसलिये हम इस अदालत की दृष्टि में दोषी हैं परन्तु डकैती और कत्ल के अपराधी नहीं। यह अदालत हम पर इस बात का दोष लगा रही है कि हमारे पास डकैती में छीना गया रुपया पाया गया। हम अदालत का ध्यान इस बात की ओर दिलाना चाहते हैं कि प्रायः तीन मास की हड़ताल में इन चार कपड़ा मिलों ने साठ लाख रुपया हानि होने का दावा किया है। यह हानि मिलों को इसलिये हुई कि मज़दूरों की मेहनत से लाभ उठाने का अवसर उन्हें नहीं मिला। यह मिलें कई बरस से चलकर करोड़ों रुपया इन मज़दूरों की मेहनत से पैदा किया गया हज़म कर चुकी हैं। हम यह जानना

ऐसा ही क़ायदा है। और कुछ जिरह करनी हो तो सवाल पूछ सकते हो।"

सुलतान—"बहुत अच्छा जो हुकुम.......खाँ साहब, आपने कैसे समझा कि हमारे कब्ज़े में पाया गया रुपया डकैती का है?"

सुप०—"क्योंकि यह रुपया जीवाराम—भोलाराम का है, उन्होंने इन नोटों के नम्बर रिपोर्ट में दर्ज कराये हैं।"

सुलतान—"लेकिन यह आप बता सकते हैं, इतना रुपया जीवाराम भोलाराम के पास आया कहाँ से? हो सकता है यह रुपया उनका न हो? उन्हें किसी तरीके से मालूम होगया हो कि हमारे पास फलाने-फलाने नम्बर के नोट हैं, आपने कैसे मान लिया कि उनका इतना रुपया छीना गया है?"

सुप०—"यह तो हर शख़्स मान सकता है कि उनका इतना रुपया गया होगा। वे कपड़े का बहुत बड़ा रोज़गार करते हैं?"

सुलतान—"क्या वे कपड़ा बुनते हैं?"

सुप०—"नहीं बुनते नहीं, कपड़ा जुलाहे बुनते हैं।"

सुलतान—"तो फिर कपड़े के रोज़गार का रुपया जुलाहों के पास होना चाहिये, जीवाराम-भोलाराम के पास नहीं।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस सरकारी वकील की ओर देखने लगे। सुलतान ने कहा—"आप इधर देखिये, क्या वकील साहब से जवाब पूछ रहे हैं?"

सरकारी वकील ने खड़े होकर कहा—"मैं अदालत की तवज्जो इस बात की तरफ़ दिलाना चाहता हूँ कि मुलज़िम जिरह अपनी सफ़ाई देने के लिये नहीं बल्कि गवाहों को परेशान करने और अदालत का वक़्त ख़राब करने के लिये कर रहा है। इसका मतलब सिर्फ़ यह है कि उस पर लगाये गये इलज़ाम की उसके पास कोई सफ़ाई नहीं।

जज ने सुलतान की ओर देखकर कहा—"मुझे अफ़सोस है कि

तुम अपने ख़िलाफ़ संगीन इलज़ामात और उनके सुबूतों की पर्वाह न कर सिर्फ़ अपने ख़यालात का प्रचार करने की कोशिश कर रहे हो। उसके लिये मुनासिब जगह अदालत नहीं है और न इस बात की इजाज़त ही अदालत दे सकती है।"

अख़्तर ने अपनी जगह से बिगड़कर कहा—"हुज़ूर, हमें यों ही फाँसी पर लटका देना चाहते हैं। अपनी बात भी नहीं कहने देंगे? तो योंही ज़िबह क्यों नहीं कर देते?"

सुलतान ने उसे चुप रहने के लिये इशारा कर कहा—"हमें अफ़सोस है कि अदालत हमारी सफ़ाई सुनने के लिये तैयार नहीं। जब अदालत हमारे विचार नहीं जानना चाहती तो अदालत यह किस प्रकार समझ सकेगी कि डकैती जैसा घृणित काम, जिसका कि विरोध करने के लिये हम अपना जीवन बलिदान कर रहे हैं, हम कभी नहीं कर सकते थे और न हमने उसे किया है। हमारा विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने परिश्रम के फल पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए। एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य से, एक श्रेणी द्वारा दूसरी श्रेणी से, एक देश द्वारा दूसरे देश से उसके परिश्रम का फल छीन लेना अनुचित, है, अन्याय है, अपराध है। यह समाज में निरंतर होनेवाली भयंकर हिंसा और डकैती है। इस हिंसा और शोषण को समाप्त करना ही हमारे जीवन का उद्देश्य रहा है, उसी के लिये हमने प्रयत्न किया। हिंसा और डकैती का अपराध हम पर लगाना अन्याय है। परन्तु इस अदालत से हम न्याय की आशा भी नहीं कर सकते क्योंकि यह अदालत मनुष्यता और नैतिकता की दृष्टि से न्याय और अन्याय का विचार नहीं कर सकती। जिस व्यवस्था को अन्याय समझकर हम बदलने की चेष्टा कर रहे हैं, उसी व्यवस्था को क़ायम रखना इस अदालत का कर्तव्य और उद्देश्य है। इसलिये इस अदालत की दृष्टि में हम अपराधी होंगे परन्तु जो न्याय मनुष्य मात्र को एक समान समझता है और जो न्याय

प्रत्येक मनुष्य को उसके परिश्रम पर अधिकार देकर दूसरे के परिश्रम को छीनने का अधिकार नहीं देता, उस न्याय की दृष्टि में हम निर्दोष हैं। हमें पूर्ण विश्वास है, न्याय की यह धारणा जो कुछ व्यक्तियों के ऐशो आराम के अधिकारों की रक्षा के लिये ९९.९ फ़ीसदी जनता को जीवन के अधिकारों और उपायों से वंचित कर देती है, एक दिन बदलेगी और हमारा बलिदान इस प्रयत्न में सहायक होगा।"

जज ने अदालत बर्खास्त करते हुए फ़ैसला सुनाने के लिये तारीख़ निश्चित कर दी।

× × ×

सुलतान के बयानों से शहर में सनसनी फैल गई थी। इसलिये फ़ैसला सुनने के लिये अदालत में काफ़ी भीड़ जमा हो गई। शैल का चेहरा भय और आशंका से पीला पड़ गया था। यशोदा और अख़्तर की बीवी भी उस रोज़ अदालत में आई थी। शैल उन्हें साथ लिये एक ओर बैठी थी।

अदालत का निर्णय क्या होगा, इस विषय में सन्देह न था परन्तु फिर भी जज के मुख से फ़ैसला सुनने के लिये लोग उत्सुक थे।

जज ने पुलिस की गवाहियों का ज़िक्र कर उन्हें पूर्णतः विश्वास योग्य बताते हुए कहा—"अभियुक्तों के डकैती और क़त्ल का अपराधी होने में शंका की कोई गुञ्जाइश नहीं। विद्वान् सरकारी वकील के कथनानुसार अभियुक्तों ने गवाहियों के प्रबल सुबूतों को देखकर अपनी सफ़ाई देने की भी कोई चेष्टा नहीं की। बजाय इसके उन्होंने समाज की व्यवस्था के प्रति विद्रोह के विचारों का ही प्रचार करने की कोशिश की। बजाय यह साबित करने के कि उन्होंने अपराध नहीं किया; अभियुक्तों ने अदालत को यह समझाने की कोशिश की कि उनका डकैती करना समाज-हित का काम था। ऐसी अवस्था में यह आशा करने की भी कोई गुञ्जाइश नहीं रह जाती कि जवानी की बेसमझी या

विशेष परिस्थितियों के कारण अभियुक्तों से यह एक अपराध हो गया है और जीवन में अवसर मिलने पर वे शान्त नागरिकों का जीवन बिता सकेंगे। इसके विपरीत अभियुक्तों ने अपने घृणित कार्य को शहादत का रंग देने का प्रयत्न किया है जो उनके अपराध की गम्भीरता को घटाने की अपेक्षा बढ़ा देता है। ऐसी अवस्था में अभियुक्तों के विद्वान् वकील की इस प्रार्थना को कि अदालत अभियुक्तों की जवान उम्र और उनके पहले कभी ऐसे अपराध में भाग न लेने पर विचारकर उन्हें कम-से-कम दण्ड दे, स्वीकार करने में असमर्थ है। जब अपराध केवल परिस्थितियों और आकस्मिक घटना के कारण न होकर, विचार और मनन से किया जाता है, उसकी गम्भीरता बहुत बढ़ जाती है। इसलिये अदालत न्याय और व्यवस्था के प्रति अपने कर्तव्य को समझकर दफ़ा ३६६ डकैती और क़त्ल के अपराध में अभियुक्तों को निश्चितरूप से अपराधी पा उन्हें इस धारा के लिये पूर्णदण्ड, फाँसी की सज़ा देती है।"

अभियुक्त मानो इसी फैसले की प्रतीक्षा में थे। उन्होंने नारा लगाया:—"इनक़लाब ज़िन्दाबाद! दुनिया के मेहनत करनेवाले ज़िन्दाबाद! संसार से शोषण का नाश हो!"

जज के अन्तिम शब्द सुन शैल मानो पत्थर की मूर्ति की तरह बैठी रह गई। अख़्तर की बीवी के ज़ोर से रो उठने की आवाज़ से उसे चेतना हुई। यशोदा भगवान का नाम जपती हुई अपनी सहानुभूति और करुणा का हाथ उसकी पीठ पर रक्खे थी।

अदालत खाली हो चुकी थी। वकील अख़्तर की बीवी को बाँह से पकड़ एक बार अख़्तर से मिला देने के लिये ले जारहे थे। शैल और यशोदा भी उसके साथ-साथ गईं।

अभियुक्त पुलिस के घेरे में खड़े नारे लगा रहे थे। शैल ने देखा, सुलतान की आँखें उसी की प्रतीक्षा कर रही थीं। अख़्तर की बीवी अख़्तर के पांव पर गिर रो उठी। यशोदा सुलतान को पहचानने का

यत्न कर रही थी। वह केवल उसकी आँखों को पहचान सकी। उसकी आँखों में आँसू आ गये।

उसकी ओर देख हरीश ने मुस्कराकर कहा—"उस दिन तो आपने मृत्यु से बचा लिया था परन्तु कहिये आज भगवान् कहाँ है?"

यशोदा ने नेत्र पोंछ उत्तर दिया—"वे ही मालिक हैं।"

हरीश ने शैल की पथराई हुई आँखों की ओर देख मुस्कराकर कहा—"वाह शैल! तुम घबराओगी? तुम्हीं पर तो सब जिम्मेवारी छोड़कर जा रहे हैं। दादा को प्यार कहना और सहायता के लिये धन्यवाद!"

अख़्तर ने शैल को सम्बोधन कर कहा—"बहन, इस पागल को भी सँभालना!"

शैल अख़्तर की बीवी को सँभाल रही थी, उसी समय पुलिस ने अभियुक्तों को जेल की लारी में बन्द कर दिया और लारी अदालत के अहाते से बाहर निकल गई।

अख़्तर की बीवी अब भी अपने बाल नोचते हुए पुकार रही थी—"अल्लाह,.......मदद कर!"

यशोदा कह रही थी—"भगवान् की इच्छा प्रबल है, उनके आगे मनुष्य का प्रयत्न व्यर्थ है।" और शैल निस्सहाय क्रोध में बड़बड़ा रही थी—"भगवान् के दरबार में भी ज़बरदस्तों का ही बोलबाला है.......नहीं तो क्या इस तरह ज़बरदस्ती छीन ले जाते!"

पागलपन की सी अवस्था में यशोदा ने उसे किसी प्रकार घर पहुँचाया।

१२

दादा और कॉमरेड

अदालत से लौट शैल ज्वर में पलँग पर लेट गई। ज्वर मूर्छा में परिणत हो गया। उसे कुछ देर के लिये होश आता, वह अपने इधर-उधर देखती, कुछ सोचने लगती और फिर बेहोश हो जाती। बुआजी उसके सिरहाने बैठ बार-बार बरफ़ की टोपी उसके सिर पर रखतीं, आया उसके पैर मलती। यत्न करने पर भी उसकी बेहोशी रुक न पाती, बेहोशी में धीमे स्वर में वह बड़बड़ाने लगती जैसे किसी से बात कर रही हो। कभी वह पंजाबी में बोलती, कभी हिन्दोस्तानी में और कभी अंग्रेज़ी में। बुआजी और आया कुछ समझ न पाते। कभी वह सिर दर्द से चीख़ उठती, कभी उसे उल्टी होने लगती। इसी तरह दो सप्ताह बीत गये।

उसके पिता की अवस्था स्वयम भी बिस्तर से उठने लायक़ न थी परन्तु लड़की की चिन्ताजनक अवस्था सुन वे ऊपर गये। घर का पुराना डाक्टर सुबह शाम आकर देख जाता। उसी के निर्देश के अनुसार इलाज चल रहा था। बुआजी ने और बड़े डाक्टर को बुलाने के लिये लालाजी से कहा।

जिस समय डाक्टर शैल को देखने आया, वह होश में न थी। परन्तु जिस समय डाक्टर लौट रहा था, उसे होश आ गया। डाक्टर को देख उसने कहा—"डाक्टर साहब, मुझे तो कुछ भी नहीं, मैं तो बिलकुल ठीक हूँ।"

"यही तो मैं भी कहता हूँ बेटी,"—डाक्टर ने उत्तर दिया—"घबराओ नहीं। बहुत जल्द ठीक हो जाओगी।"

आया ने शैल को बताया, डाक्टर ने कान में रबड़ की नली लगा उसके शरीर को अच्छी तरह टटोल कर देखा और पिताजी को सब कुछ समझा गया है। डाक्टर के नुस्खे के अनुसार तीन-तीन घण्टे बाद शैल को दवाई का चम्मच पिलाया जाता और बेहोशी आने पर दवाई सुँघाई जाती थी। बुआजी को समीप पाने पर शैल चिंता से पूछती—"डाक्टर पिताजी से क्या कह गया है?"

बुआजी उत्तर देतीं—"कुछ नहीं बेटी। डाक्टर कह गया है कि तू जल्दी अच्छी होजायगी।"

"नहीं, पिताजी से डाक्टर क्या कह गया है बुआजी?"—शैल आग्रह करती।

बुआजी को स्वयम मालूम न था कि डाक्टर पिताजी से क्या कह गया है। वह जानती थीं कि डाक्टर कह गया है कि बीमार को अधिक नहीं बोलने देना चाहिये और चिन्ता और फ़िक्र की कोई बात उससे नहीं कहनी चाहिये। इसलिये वे शैल को बहलाने का यत्न करतीं परन्तु शैल अपने पीले चेहरे पर चिन्ता से फैली व्याकुल आँखों को झपक बार-बार पूछती—"पिताजी से डाक्टर जाने क्या कह गया है?"

डाक्टर कह गया था, जब तक बीमार को लगातार तीन दिन होश रहने के साथ-साथ नींद भी ठीक तरह न आजाय, उससे कोई खास बात न की जाय। लाला ध्यनचन्दजी नीचे की मंजिल में आँखों पर हाथ धरे पलँग पर पड़े रहते। शैल की बेहोशी आने-जाने के समाचार उन तक पहुँचते रहते। उनके मुख से केवल भगवान का ही नाम सुनाई देता।

चौथे दिन शनैः शनैः लाठी टेक लालाजी ऊपर पहुँचे। पिता का चेहरा देख शैल विस्मित रह गई। वह सोचने लगी, बीमार और

चिन्तित तो वे कई दिन से हैं परन्तु यह उन्हें क्या हो गया ? उनके होठ सूखे हुए और आँखें बिलकुल निस्तेज हो रही थीं। समीप की कुर्सी पर बैठ उन्होंने शैल से पूछा—"अच्छी हो ?" उन्होंने सबको बाहर चले जाने के लिये कह दिया।

सब लोगों के चले जाने के बाद उन्होंने फिर पूछा—"अब तबियत कैसी है ?"

"अच्छी है"—कहकर शैल ने आँख उठा पिता की ओर देखा। उनके स्वर के परिवर्तन से वह डर गई। जान पड़ता था, किसी गहरे गढ़े में से बोल रहे हों। पिताजी ने फिर प्रश्न किया—"रात नींद ठीक आई थी ?"

"जी हाँ"—आशंका से सिर झुका शैल ने उत्तर दिया। मुख के सामने रूमाल रख खाँसकर लाला ध्यानचन्द ने कहना शुरू किया—"तुम्हें यों स्वतंत्र रखने के कारण मित्रों ने अनेक बार मुझे भला-बुरा कहा। मैंने उनकी बात की परवाह न की। मैं जानता था, मेरे बाद तुम्हें संसार में अपनी देख-भाल स्वयम् करनी होगी। मैं चाहता था, तुम संसार की परिस्थितियों का सामना करने योग्य बनो। इसके अतिरिक्त मुझे तुम पर विश्वास था, अनन्त विश्वास........शायद अन्ध विश्वास था ! विचारों के भेद की मैंने परवाह न की। अपने आपको समझाया ; नये समय के साथ नये विचार आते हैं और अनुभव तुम्हारे विचारों को बदल देगा। यदि तुम्हारे विचार न बदलेंगे तो विचारों के लिये कष्ट उठाना मनुष्यत्व का अंग है, आत्मिक बल का प्रमाण है। इस सब के बावजूद मुझे विश्वास था कि तुम सदा सत्य पथ पर दृढ़ रहोगी। जिस प्रकार अपने विचारों के लिये कष्ट उठाने के लिये तुम तैयार थीं—सब कुछ बलिदान कर देना चाहती थीं उसी प्रकार—(अपने शिथल होते हुए स्वर को सम्भालकर उन्होंने कहा)—आचार पर भी दृढ़ रहोगी........।"

शैल की आँखें झुकगईं। लाला ध्यानचन्दजी का स्वर भी रुक गया। हृदय और मस्तिष्क पर विशेष ज़ोर देकर उन्होंने फिर कहा—"डॉक्टर जो कुछ कह गया है, उसके बाद.......अब मुझमें आगे सहने का सामर्थ्य नहीं....। शायद पिछले जन्म के कर्मों का फल अन्त में इसी रूप में मेरे सामने आना था परन्तु इसे प्राण रहते सह न सकूँगा....मेरे प्राण निकल जाने के बाद यह सब होने से मेरा आत्मा मृत्यु के बाद भी व्याकुल होता परन्तु लोगों को मेरे मुख पर थूकने का अवसर न मिलता। तुम्हारे मोह में यह भी सोचा कि आत्म-हत्या कर तुम्हें स्वतंत्र कर दूँ, परन्तु बुढ़ापे में यह भयंकर पाप न हो सकेगा।........अब एक ही उपाय है, जो कुछ इज्जत बची है, वह ढकी रहे।....यहाँ इस शहर और इस मकान में यह कलंक प्रकट न हो.... यही मुझे कहना है।"

जिस संकट की आशंका से शैल बार-बार डाक्टर की बात पूछ रही थी, वह सामने आगया। शैल की आँखों में आँसू नहीं आये। धीमे परन्तु दृढ़ स्वर में उसने कहा—"पिता जी, मेरी राह साधारण प्रथा की राह से अलग रही है। मैं आपके ऋण से जन्मभर उऋण नहीं हो सकूँगी और आपका सबसे बड़ा वरदान मुझे मिला है स्वतंत्रता के रूप में। जो कुछ भी मैंने किया, विचारों के भेद के कारण ही.... मैं अपने किसी भी काम के लिये अपनी विवेक बुद्धि के सामने लज्जित नहीं हूँ....मुझे पछतावा भी नहीं। यदि मैं अपने आपको कलंकिनी समझती तो अपना जीवित मुख संसार को कभी न दिखाती........एक ही दो दिन में मैं यहाँ से चली जाऊँगी, ऐसी किसी जगह जहाँ से मेरे कार्यों के कारण आपको लज्जित न होना पड़े........।"

कुछ देर चुप रह, दीर्घ निश्वास ले झुके हुए माथे पर हाथ रख लाला ध्यानचन्द ने कहा—"जो भी हो यह सब तुम्हारा ही है, जो कुछ [illegible] हो साथ ले जा सकती हो।'

"नहीं पिताजी, कुछ नहीं चाहिये"—खिड़की से बाहर देखते हुए शैल ने कहा—"....केवल आशीर्वाद चाहिये....और यदि वह भी नहीं दे सकते तो भी अपने विचार में आपके आशीर्वाद के योग्य हूँ.... स्त्री होने के नाते जो मेरा अधिकार है उससे कुछ अधिक मैंने नहीं लिया है, मैं मनुष्य हूँ, मनुष्य बनी रहना चाहती हूँ।"

पिता लाठी टेकते हुए नीचे चले गये। शैल ने एक गिलास जल मँगाकर पिया और चिन्ता में मग्न होगई। पर दूसरे प्रकार की चिन्ता में, क्या होगा इस चिन्ता में नहीं?....क्या करना है, इस चिन्ता में।

जाऊँगी, पर कहाँ जाऊँगी?—शैल सोच रही थी। वह लेटी थी उठ बैठी। मुझे जाना है—उसने सोचा—शायद बहुत चलना पड़ेगा, मैं चल सकूँगी?........नहीं; अब मैं कमज़ोर नहीं हूँ....हरीश! मैं घबराऊँगी नहीं, मैं तुम्हारी साथी हूँ, तुम्हारी कॉमरेड........तुम फाँसी का हुक्म सुनकर भी मुस्करा दिये और मैं चल नहीं सकूँगी?........ मूर्खों की छी-छी से डर जाऊँगी?

वह उठकर कमरे में टहलने लगी। उसके पैर कुछ लड़खड़ाये परन्तु वह टहलती रही—कोई भय नहीं हरी, मैं चल सकूँगी........वह कुर्सी पर बैठ गई। मुझे क्या चाहिये; कुछ नहीं........बस साहस। समाज मुझे डरा नहीं सकेगा, दबा नहीं सकेगा!

पर वह जायगी कहाँ? रॉबर्ट उसका मित्र था, अत्यन्त उदार। उसने मुँह फेर लिया—मुझे सहायता नहीं चाहिये........अपने पैरों पर चलूँगी—वह फिर टहलने लगी।

मैं कमज़ोर हूँ, कोई फ़िक्र नहीं, ठीक हो जाऊँगी। उसने आया को पुकारा। आया के आने पर उसने एक गिलास गरम दूध लाने के लिये कहा। दूध के प्रति उसे कभी रुचि न थी परन्तु कमज़ोरी दूर करने के निश्चय से वह उसे पी गई। आया से उसने पूछा—"आया, अब तो हम ठीक हैं न?........कमज़ोर तो नहीं?"

शैल के मस्तिष्क में उठते हुए तूफ़ान को कुछ भी न समझ आया ने उत्तर दिया—"हाँ बीबीजी, अब ठीक हो।"

"हूँ ! अच्छा, आया बहन, जाओ आराम करो। तीन घण्टे में फिर दूध दे जाना।"—आया के चले जाने पर वह सोचने लगी—जाऊँगी पर कहाँ·······कहीं चली जाऊँगी····कहीं भी चली जाऊँगी····यह संसार बहुत विस्तृत है·······हरीश को जीवित रखूँगी·······उसे बड़ा करूँगी·······वह हरीश का काम चलायगा·······हाँ, कमज़ोरी दूर करने के लिये सोना चाहिए। वह लेट गई और सचमुच सो गई। आया जब तीन घण्टे बाद दूध लाई, शैल सो रही थी।

नींद खुलने पर शैल ने देखा—संध्या का अँधेरा हो गया है, और घड़ी में आठ बज गया है। वह तुरन्त के देखे स्वप्न की बात सोच रही थी और सोच रही थी स्वप्न की बात पर तो बुआजी विश्वास किया करती हैं और वे भी कहती हैं दिन में देखा स्वप्न ठीक नहीं होता। उसी समय नौकर ने नीचे से आकर कहा—"नीचे दादाराम बहुत देर से मिलने को बैठे हैं।"

"दादाराम कौन ?"—विस्मय से शैल ने पूछा और ख़याल आने पर कहा—"हाँ, यहीं ले आओ !"

एक मिनट में दादा सामने खड़े थे।

"दादा, आप ? दादा आपही की बात तो मैं सोच रही थी।" शैल ने कहा।

"मैंने अखबार में सब कुछ देखा है"—दादा ने बहुत उदास और भीगे हुए स्वर में कहा—"शैल बहन, मुझे अफ़सोस है, किस दुर-घड़ी में वह रुपया तुम्हें दे गया था।"

"नहीं दादा"—शैल ने दृढ़ता से कहा—"उसीसे तो उस लड़ाई में शोषितों की जीत हुई, वह उनकी मुक्ति की इमारत की आधार शिला

होगी। दादा, अन्तिम बात उन्होंने कही थी,—दादा को मेरा प्यार और धन्यवाद कहना।"

दादा की आँखें भीग गईं। उन्हें पोंछते हुए साँस भर उन्होंने कहा—"हरीश चला गया..........क्रान्तिकारी का आदर्श क़ायम कर गया।"

"नहीं दादा, वे अभी जीवित रहेंगे।" शैल ने आँखें नीचे झुका लीं।

"क्या ?"—दादा ने आश्चर्य से पूछा। शैल के पीले मुख पर लज्जा की लाली फिर गई।

"दादा, आप मुझे लेने आये हैं न ?"

"क्या मतलब तुम्हारा ?"

"मेरी तबीयत ख़राब हो गई थी दादा"—बिस्तर की चादर के तारों को नाख़ून से खोंटते हुए शैल ने कहा—"पिताजी ने मुझे कह दिया है मैं चली जाऊँ........वे कलंक को सह नहीं सकते........मैं ऐसी जगह चली जाना चाहती हूँ, जहाँ मैं कलंकिनी न समझी जाऊ।"

"अच्छा........क्यों ?"—दादा ने शैल के मुख की ओर ध्यान से देख समझने का यत्न करते हुए पूछा।

"दादा, क्या आप भी मुझे कलंकिनी समझते हैं ?"

"तुम्हें ?........देखो, उस दिन की बात पर मुझे लज्जित न करो, खबरदार !....... यह तो तुम्हारे जीवन का स्वाभाविक मार्ग है। मैं तो........बल्कि बहुत खुश हूँ........यह तो बहुत अच्छी बात है बहिन, ...देखो मुझे बहुत बातें करना तो आता नहीं........।"

"दादा, मुझे ले चलो........मैं यदि किसी का सहारा ले सकती हूँ तो तुम्हारा।"

"पर शैल तुम्हें जिस तरह जीवन बिताने का अभ्यास है ?"

"नहीं दादा, उस बात को जाने दो; तुम्हारे साथ पेड़ के नीचे भी ज़िन्दगी बिता सकूँगी। दादा सचमुच, और तुम्हारे हरी को तुम्हारे हाथों में दे दूँगी।........तुमने कहा था न, मैंने तुम्हारे हरी को तुमसे छीन लिया ?"

दादा कुछ देर फ़र्श की ओर देखते दाँत से मूँछ खोंटते रहे फिर हाथों के पंजे बाँध शैल की आँखों में देख उन्होंने कहा—"मैं यह सोचता था मेरा जीवन निष्प्रयोजन हो गया। जिस कार्य का साधन अपने आपको मैंने बनाया था, उस कार्य की आवश्यकता न रहने से मैं बेकाम हो गया। पर तुमने मेरे लिये काम तैयार कर दिया है। मैं समझता था, दिये की जोत बुझती जा रही है, मैं अब किसके लिये जियूँगा........?"

"दादा जोत कभी नहीं बुझती,...........हम चलेंगे जोत को जारी रखेंगे........मुझे ले चलो।"

"उठो कॉमरेड !"—दादा उठ खड़े हुए शैल भी उठी। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। उसकी बाँह थामकर दादा ने कहा—"घबराती हो कॉमरेड ?"

"नहीं दादा; चलो........ऐसे ही चलेंगे !"

---

२ दिसम्बर १९४१ हेज़ल-ब्रे, मंसूरी